इकाई 1 योग का अर्थ,परिभाषा महत्व एवं उद्देश्य

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 योग का अर्थ एवं परिभाषाएं
1.3.1 योग शब्द का अर्थ
1.3.2 योग की परिभाषाएं
1.4 योग का महत्व
1.4.1 स्वास्थ्य के क्षेत्र में
1.4.2 रोगोपचार के क्षेत्र में
1.4.3 खेलकूद के क्षेत्र में
1.4.4 शिक्षा के क्षेत्र में
1.4.5 पारिवारिक महत्व
1.4.6 सामाजिक महत्व
1.4.7 आर्थिक दृष्टि से महत्व
1.4.8 आध्यात्मिक क्षेत्र में
1.5 योग का उद्देश्य
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

ज्ञान का मूल वेदों में निहित है। दार्शनिक चिन्तन तथा वैदिक ज्ञान का निचोड़ आत्म तत्व की प्राप्ति है। आत्मतत्व की प्राप्ति का साधन योग विद्या के रूप में इनमें (वेद) उपलब्ध है। योगसाधना का लक्ष्य कैवल्य प्राप्ति है। वैदिक ग्रन्थ, उपनिषद्, पुराण और दर्शन आदि में यत्र–तत्र योग का वर्णन मिलता है। जिससे यह पुष्टि होती है कि योग वैदिक काल से सृष्टि में उपलब्ध है। योग के अर्थ एवं परिभाषाओं का वर्णन प्रस्तुत इकाई में किया जा रहा है।

1.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप–

- योग शब्द का अर्थ तथा परिभाषाओं का स्वरूप जान सकेंगे।
- वैदिक काल, उपनिषद्काल, दर्शनकाल, टीकाकाल में योग का आधार समझ सकेंगें।
- भक्तिकाल के साथ योग के व्यावहारिक काल हठयोग काल का अध्ययन कर सकेंगे।
- विभिन्न ग्रन्थों के आधार पर योग के बाधक तत्वों को जान सकेंगें।
- विभिन्न ग्रन्थों के आधार पर योग के साधक तत्वों को जान सकेंगें।
- योग का सर्वागीण क्षेत्रों में महत्व जान सकेंगे।

1.3 योग का अर्थ एवं परिभाषाएं

1.3.1 योग शब्द का अर्थ– पाणिनी ने 'योग' शब्द की व्युत्पत्ति 'युजिर् योगे' ,'युज समाधो' तथा 'युज् संयमने' इन तीन धातुओ से मानी है। प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार 'योग' शब्द का अनेक अर्थो में प्रयोग किया गया है।, जैसे – जोड़ना, मिलाना, मेल आदि। इसी आधार पर जीवात्मा और परमात्मा का मिलन योग कहलाता है। इसी संयोग की अवस्था को "समाधि" की संज्ञा दी जाती है जो कि जीवात्मा और परमात्मा की समता होती है।

महर्षि पतंजलि ने योग शब्द को समाधि के अर्थ में प्रयुक्त किया है। व्यास जी ने 'योगः समाधिः' कहकर योग शब्द का अर्थ समाधि ही किया है। वाचस्पति का भी यही मत है।

संस्कृत व्याकरण के आधार पर 'योग' शब्द की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से की जा सकती है।

1. **"युज्यते एतद् इति योगः** –इस व्युत्पत्ति के अनुसार कर्मकारक में योग शब्द का अर्थ चित्त की वह अवस्था है जब चित्त की समस्त वृत्तियों में एकाग्रता आ जाती है। यहाँ पर 'योग' शब्द का उद्देश्य के अर्थ में प्रयोग हुआ है।
2. **"युज्यते अनेन अति योगः** –इस व्युत्पत्ति के अनुसार करण कारक में योग शब्द का अर्थ वह साधन है जिससे समस्त चित्तवृत्तियों में एकाग्रता लाई जाती है। यही 'योग'

शब्द साधनार्थ प्रयुक्त हुआ है। इसी आधार पर योग के विभिन्न साधनो को जैसे हठ, मंत्र, भक्ति, ज्ञान, कर्म आदि को हठयोग, मंत्रयोग, भत्ति योग, ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि के नाम से पुकारा जाता है।

3. **"युज्यतेऽस्मिन् इति योगः"** –इस व्युत्पत्ति के अनुसार योग शब्द का अर्थ वह स्थान है जहाँ चित्त की वृत्तियाँ की एकाग्रता उत्पन्न की जाती है। अतः यहाँ पर अधिकरण कारक की प्रधानता है।

1.3.2 योग की परिभाषाएं

भारतीय दर्शन में योग विद्या का स्थान सर्वोपरि एवं विशेष है। भारतीय ग्रन्थो में अनेक स्थानो पर योग विद्या से सम्बन्धित ज्ञान भरा पड़ा है। वेदो, उपनिषदो,गीता एंव पुराणों आदि प्राचीन ग्रन्थों में योग शब्द वर्णित है। दर्शन में योग शब्द एक अति महत्त्वपूर्ण शब्द है जिसे अलग–अलग रूप में परिभाषित किया गया है।

1. योग सूत्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि ने योग को परिभाषित करते हुए कहा है –

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' यो.सू.1/2

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है। चित्त का तात्पर्य, अन्तःकरण से है। बाह्मकरण ज्ञानेन्द्रियां जब विषयों का ग्रहण करती है, मन उस ज्ञान को आत्मा तक पहुँचाता है। आत्मा साक्षी भाव से देखता है। बुद्धि व अहंकार विषय का निश्चय करके उसमें कर्तव्य भाव लाते है। इस सम्पूर्ण क्रिया से चित्त में जो प्रतिबिम्ब बनता है, वही वृत्ति कहलाता है। यह चित्त का परिणाम है। चित्त दर्पण के समान है। अतः विषय उसमें आकर प्रतिबिम्बत होता है अर्थात् चित्त विषयाकार हो जाता है। इस चित्त को विषयाकार होने से रोकना ही योग है।

योग के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हुए महर्षि पतंजलि ने आगे कहा है–

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।। 1/3

अर्थात योग की स्थिति में साधक (पुरूष) की चित्तवृत्ति निरूद्धकाल में कैवल्य अवस्था की भाँति चेतनमात्र (परमात्म) स्वरूप रूप में स्थित होती है। इसीलिए यहाँ महर्षि पतंजलि ने योग को दो प्रकार से बताया है–

1. **सम्प्रज्ञात योग**
2. **असम्प्रज्ञात योग**

सम्प्रज्ञात योग में तमोगुण गौणतम रूप से नाम रहता है। तथा पुरूष के चित्त में विवेक–ख्याति का अभ्यास रहता है। असम्प्रज्ञात योग में सत्त्व चित्त में बाहर से तीनों गुणों का परिणाम होना बन्द हो जाता है तथा पुरूष शुद्ध कैवल्य परमात्मस्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

2. महर्षि याज्ञवल्क्य ने योग को परिभाषित करते हुए कहा है–

'संयोग योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनो।'

अर्थात जीवात्मा व परमात्मा के संयोग की अवस्था का नाम ही योग है।

कठोषनिषद् में योग के विषय में कहा गया है–

'यदा पंचावतिष्ठनते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।।

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।

अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभावाप्ययौ।। कठो.2/3/10–11

अर्थात् जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियां मन के साथ स्थिर हो जाती है और मन निश्चल बुद्धि के साथ आ मिलता है, उस अवस्था को 'परमगति' कहते है। इन्द्रियों की स्थिर धारणा ही योग है। जिसकी इन्द्रियाँ स्थिर हो जाती है, अर्थात् प्रमाद हीन हो जाता है। उसमें शुभ संस्कारो की उत्पत्ति और अशुभ संस्कारो का नाश होने लगता है। यही अवस्था योग है।

3. मैत्रायण्युपनिषद् में कहा गया है

एकत्वं प्राणमनसोरिन्द्रियाणां तथैव च.।

सर्वभाव परित्यागो योग इत्यभिधीयते।। 6/25

अर्थात प्राण, मन व इन्द्रियों का एक हो जाना, एकाग्रावस्था को प्राप्त कर लेना, बाह्म विषयों से विमुख होकर इन्द्रियों का मन में और मन आत्मा में लग जाना,प्राण का निश्चल हो जाना योग है।

4. योगशिखोपनिषद् में कहा गया है–

योऽपानप्राणयोरैक्यं स्वरजोरेतसोस्तथा।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः।
एवंतु. द्वन्द्व जालस्य संयोगो योग उच्यते।। 1/68–69

अर्थात् अपान और प्राण की एकता कर लेना, स्वरज रूपी महाशक्ति कुण्डलिनी को स्वरेत रूपी आत्मतत्त्व के साथ संयुक्त करना, सूर्य अर्थात् पिंगला और चन्द्र अर्थात् इड़ा स्वर का संयोग करना तथा परमात्मा से जीवात्मा का मिलन योग है।

5.श्रीमद्भगवद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कुछ इस प्रकार से परिभाषित किया है।

योगस्थः कुरू कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजयः।

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। 2/48

अर्थात् – हे धनंजय! तू आसक्ति त्यागकर समत्व भाव से कार्य कर।

सिद्धि और असिद्धि में समता–बुद्धि से कार्य करना ही योग हैं। सुख–दुःख, जय –पराजय, शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों में एकरस रहना योग है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृतें।

तस्माधोग युज्यस्व योगः कर्मसुकौशलम्।। 2/50

अर्थात् कर्मो में कुशलता में कुशलता ही योग है। कर्म इस कुशलता से किया जाए कि कर्म बन्धन न कर सके। अर्थात् अनासक्त भाव से कर्म करना ही योग है। क्योंकि अनासक्त भावं से किया गया कर्म संस्कार उत्पन्न न करने का कारण भावी जन्मादि का कारण नहीं बनता। कर्मो में कुशलता का अर्थ फल की इच्छा न रखते हुए कर्म का करना ही कर्मयोग है।

पुराणो में भी योग के सम्बन्ध में अलग–अलग स्थानों पर परिभाषाएं मिलती है–

ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं योगस्तत्रैक चित्तता।

चित्तवृत्तिनिरोधश्च जीवब्रह्मात्मनीः परः।। अग्निपुराण 183/1–2

अर्थात् ब्रह्म में चित्त की एकाग्रता ही योग है।

मदृयेकचित्तता योगो वृत्त्यन्तरनिरोधतः ।। कूर्म पु.11

अर्थात् वृत्तिनिरोध से प्राप्त एकाग्रता ही योग है।

6. रांगेय राघव ने कहा है–'शिव और शक्ति का मिलन योग है।'

7. लिंड्ग पुराण के अनुसार – लिंग पुराण में महर्षि व्यास ने योग का ल़क्षण किया है कि

सर्वार्थ विषय प्राप्तिरात्मनो योग उच्यते।

अर्थात् आत्मा को समस्त विषयो की प्राप्ति होना योग कहा जाता है। उक्त परिभाषा में भी पुराणकार का अभिप्राय योगसिद्धि का फल बताना ही है। समस्त विषयों को प्राप्त करने का सामर्थ्य योग की एक विभूति है। यह योग का लक्षण नही है। वृत्तिनिरोध के बिना यह सामर्थ्य प्राप्त नही हो सकता।

8. अग्नि पुराण के अनुसार – अग्नि पुराण में कहा गया है कि

आत्ममानसप्रत्यक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।

तस्या ब्रह्मणि संयोग योग इत्यभि धीयते।। अग्नि पुराण (379)25

अर्थात् योग मन की एक विशिष्ठ अवस्था है जब मन मे आत्मा को और स्वंय मन को प्रत्यक्ष करने की योग्यता आ जाती है, तब उसका ब्रह्म के साथ संयोग हो जाता है। संयोग का अर्थ है कि ब्रह्म की समरूपता उसमे आ जाती है। यह समरूपता की स्थिति ही योग

है। अग्निपुराण के इस योग लक्षण में पूवेक्ति याज्ञवल्क्य स्मृति के योग लक्षण से कोई भिन्नता नही है। मन का ब्रह्म के साथ संयोग वृत्तिनिरोध होने पर ही सम्भव है।

9. स्कन्द पुराण के अनुसार – स्कन्द पुराण भी उसी बात की पुष्टि कर रहा है जिसे अग्निपुराण और याज्ञवल्क्य स्मृति कह रहे है। स्कन्द पुराण में कहा गया है कि–

यत्समत्वं द्वयोरत्र जीवात्म परमात्मनोः।

सा नष्टसर्वसकल्पः समाधिरमिद्यीयते।।

परमात्मात्मनोयोडयम विभागः परन्तप।

स एव तु परो योगः समासात्क थितस्तव।।

यहां प्रथम श्लोक में जीवात्मा और परमात्मा की समता को समाधि कहा गया है तथा दूसरे श्लोक में परमात्मा और आत्मा की अभिन्नता को परम योग कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि–

समाधि ही योग है। वृत्तिनिरोध की 'अवस्था में ही जीवात्मा और परमात्मा की यह समता और दोनो का अविभाग हो सकता है। यह बात नष्टसर्वसंकल्पः पद के द्वारा कही गयी है।

10. हठयोग प्रदीपिका के अनुसार – योग के विषय में हठयोग की मान्यता का विशेष महत्व है, वहां कहा गया है कि–

सलिबे सैन्धवं यद्वत साम्यं भजति योगतः।

तयात्ममनसोरैक्यं समाधिरभी घीयते।। (4/5) ह0 प्र0

अर्थात् जिस प्रकार नमक जल में मिलकर जल की समानता को प्राप्त हो जाता है; उसी प्रकार जब मन वृत्तिशून्य होकर आत्मा के साथ एकत्व को प्राप्त कर लेता है तो मन की उस अवस्था का नाम समाधि है।

यदि हम विचार करे तो यहां भी पूर्वोक्त परिभाषा से कोई अन्तर दृष्टिगत नही होता। आत्मा और मन की एकता भी समाधि का फल है। उसका लक्षण नही है। इसी प्रकार मन और आत्मा की एकता योग नही अपितु योग का फल है।

अभ्यास प्रश्नः–

1.सत्य/असत्य बताइये

क. युजिर योगे शब्द हठयोग के अर्थ में प्रयोग हुआ है।

ख. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः पतंजली योगसूत्र का सूत्र है।

2.बहुविकल्पीय प्रश्न

क. तदादृष्टुस्वरूपेस्थानम् सूत्र है–

अ. हठप्रदीपिका ब. शिव संहिता

स. पांतजल योगसूत्र द. केशव संहिता

ख. संयोग योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनो कहा गया–

अ. याज्ञवल्क्य स्मृति ब. योगसूत्र

स. गीता द. नारद सहिंता

ग. चित्त की वृत्तियों का निरोध होना योग है किस महर्षि के अनुसार है–

अ. महर्षि कपिल के ब. महर्षि पतंजलि के

स. महर्षि याज्ञवल्क्य द. महर्षि रामानन्द सागर

घ. श्रीमद्भगवद् गीता उपदेश है

अ. हरिकृष्ण का स. बालकृष्ण का

स. श्रीकृष्ण का द. लालकृष्ण का

1.4 योग का महत्व

प्राचीन काल मे योग विद्या सन्यासियों या मोक्षमार्ग के साधको के लिए ही समझी जाती थी तथा योगाभ्यास के लिए साधक को घर को त्याग कर वन मे जाकर एकांत में वास करना होता था । इसी कारण योगसाधना को बहुत ही दुर्लभ माना जाता था। जिससे लोगो में यह धारणा बन गयी थी कि यह योग सामाजिक व्यक्तियों के लिए नही है। जिसके फलस्वरूप यह योगविद्या धीरे–धीरे लुप्त होती गयी। परन्तु पिछले कुछ वर्षो से समाज में बढते तनाव, चिन्ता, प्रतिस्पर्धा से ग्रस्त लोगों को इस गोपनीय योग से अनेको लाभ प्राप्त हुए और योग विद्या एकबार पुनः समाज मे लोकप्रिय होती गयी। आज भारत में ही नही बल्कि पूरे विश्वभर में योगविद्या पर अनेक शोध कार्य किये जा रहे है और इससे लाभ प्राप्त हो रहे है। योग के इस प्रचार–प्रसार में विशेष बात यह रही कि यहां यह योग जितना मोक्षमार्ग के पथिक के लिये उपयोगी था, उतना ही साधारण मनुष्य के लिए भी महत्व रखता है। आज के आधुनिक एंव विकास के इस युग में योग में अनेक क्षेत्रों में विशेष महत्व रखता है जिसका उल्लेख निम्नलिखित विवरण से किया जा रहा हैं–

1.4.1 स्वास्थ्य क्षेत्र में – वर्तमान समय में भारत ही नहीं अपितु विदेशो में भी योग का स्वास्थ्य के क्षेत्र में उपयोग किया जा रहा है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में योगाभ्यास पर हुए अनेक शोधो से आये सकारात्मक परिणामों से इस योग विद्या को पुनः एक नयी पहचान मिल

चुकी है आज विश्व स्वास्थ्य संगठन भी इस बात को मान चुका है कि वर्तमान में तेजी से फैल रहे मनोदैहिक रोगो में योगाभ्यास विशेष रूप से कारगर है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानना है कि योग एक सुव्यवस्थित व वैज्ञानिक जीवन शैली है। जिसे अपना कर अनेक प्रकार के प्राणघातक रोगों से बचा जा सकता है।

योगाभ्यास के अन्तर्गत आने वाले षट्कर्मो से व्यक्ति के शरीर में संचित विषैले पदार्थो का आसानी से निष्कासन हो जाता है। वहीं योगासन के अभ्यास से शरीर मे लचीलापन बढता है व नस– नाड़ियो में रक्त का संचार सुचारू होता है। प्राणायाम करने से व्यक्ति के शरीर में प्राण शक्ति की वृद्धि होती है, साथ –साथ शरीर से पूर्ण कार्बनडाई–ऑक्साईड का निष्कासन होता है। इसके अतिरिक्त प्राणायाम के अभ्यास से मन की स्थिरता प्राप्त होती है जिससे साधक को ध्यान करने मे सहायता प्राप्त होती है और साधक स्वस्थ मन व तन को प्राप्त कर सकता है।

1.4.2. रोगोपचार के क्षेत्र में– निःसंदेह आज के इस प्रतिस्पर्धा व विलासिता के युग में अनेक रोगो का जन्म हुआ है जिन पर योगाभ्यास से विशेष लाभ देखने को मिला है। सम्भवतः रोगो पर योग के इस सकारात्मक प्रभाव के कारण ही योग को पुनः प्रचार –प्रसार मिला। रोगों की चिकित्सा में इस योगदान में विशेष बात यह है कि जहाँ एक ओर रोगों की एलौपैथी चिकित्सा में कई प्रकार के दुष्प्रभाव व लाभ प्राप्त करता है वहीं योग हानि रहित पद्धति है।

आज देश ही नही बल्कि विदेशों में अनेको स्वास्थ्य से सम्बन्धित संस्थाएं योग चिकित्सा पर तरह – तरह के शोध कार्य कर रही है। आज योग द्वारा दमा, उच्च व निम्नरक्तचाप, हृदय रोग, संधिवात, मधुमेह, मोटापा, चिन्ता, अवसाद आदि रोगों का प्रभावी रूप से उपचार किया जा रहा है। तथा अनेकों लोग इससे लाभान्वित हो रहे है।

1.4.3.खेलकूद के क्षेत्र में – योग अभ्यास का खेल कूद के क्षेत्र में भी अपना एक विशेष महत्त्व है। विभिन्न प्रकार के खेलो में खिलाड़ी अपनी कुशलता, क्षमता व योग्यता आदि बढाने के लिए योग अभ्यास की सहायता लेते है। योगाभ्यास से जहाँ खिलाड़ी में तनाव के स्तर, में कमी आती है, वहीं दूसरी ओर इससे खिलाड़ियों की एकाग्रता व बुद्धि तथा शारीरिक क्षमता भी बढती है। क्रिकेट के खिलाड़ी बल्लेबाजी में एकाग्रता लाने, शरीर में लचीलापन बढाने तथा शरीर की क्षमता बढाने के लिए रोजाना योगाभ्यास को समय देते है। यहाँ तक कि अब तो खिलाड़ियों के लिए सरकारी व्यय पर खेल–कूद में योग के प्रभावो पर भी अनेको शोध हो चुके हैं जो कि खेल–कूद के क्षेत्र में योग के महत्त्व को सिद्ध करते है।

1.4.4. शिक्षा के क्षेत्र में – शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों पर बढ़ते तनाव को योगाभ्यास से कम किया जा रहा है। योगाभ्यास से बच्चों को शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक रूप से भी मजबूत बनाया जा रहा है। स्कूल व महाविद्यालयों में शारीरिक शिक्षा विषय में योग पढ़ाया

जा रहा है। वहीं योग–ध्यान के अभ्यास द्वारा विद्यार्थियों में बढ़ते मानसिक तनाव को कम किया जा रहा है। साथ ही साथ इस अभ्यास से विद्यार्थियों की एकाग्रता व स्मृति शक्ति पर भी विशेष सकारात्मक प्रभाव देखे जा रहे है। आज कम्प्यूटर, मनोविज्ञान, प्रबन्धन विज्ञान के छात्र भी योग द्वारा तनाव पर नियन्त्रण करते हुए देखे जा सकते है।

शिक्षा के क्षेत्र में योग के बढ़ते प्रचलन का अन्य कारण इसका नैतिक जीवन पर सकारात्मक प्रभाव है आजकल बच्चों में गिरते नैतिक मूल्यों को पुनः स्थापित करने के लिए योग का सहारा लिया जा रहा है। योग के अन्तर्गत आने वाले यम में दूसरों के साथ हमारे व्यवहार व कर्तव्य को सिखाया जाता है, वहीं नियम के अन्तर्गत बच्चों को स्वंय के अन्दर अनुशासन स्थापित करना सिखाया जा रहा है। विश्वभर के विद्वानो ने इस बात को माना है कि योग के अभ्यास से शारीरिक व मानसिक ही नहीं बल्कि नैतिक विकास होता है। इसी कारण आज सरकारी व गैरसरकारी स्तर पर स्कूलों में योग विषय को अनिवार्य कर दिया गया है।

1.4.5. पारिवारिक महत्त्व– व्यक्ति का परिवार समाज की एक महत्त्वपूर्ण इकाई होती है तथा पारिवारिक संस्था व्यक्ति के विकास की नींव होती है। योगाभ्यास से आये अनेकों सकारात्मक परिणामों से यह भी ज्ञात हुआ है कि यह विद्या व्यक्ति में पारिवारिक मुल्यों एंव मान्यताओ को भी जागृत करती है। योग के अभ्यास व इसके दर्शन से व्यक्ति में प्रेम, आत्मीयता, अपनत्व एंव सदाचार जैसे गुणों का विकास होता है और निःसंदेह ये गुण एक स्वस्थ परिवार की आधारशिला होते है।

वर्तमान में घटती संयुक्त परिवार प्रथा व बढ़ती एकल परिवार प्रथा ने अनेकों प्रकार की समस्याओं को जन्म दिया है आज परिवार का सदस्य संवेदनहीन, असहनशील, क्रोधी, स्वार्थी होता जा रहा है जिससे परिवार की धुरी धीरे–धीरे कमजोर होती जा रही है। लेकिन योगाभ्यास से इस प्रकार की दुष्प्रवृत्तियां स्वतः ही समाप्त हो जाती है। भारतीय शास्त्रों में तो गुहस्थ जीवन को भी गृहस्थयोग की संज्ञा देकर जीवन में इसका विशेष महत्त्व बतलाया है। योग विद्या में निर्देशित अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान पारिवारिक वातावरण को सुसंस्कारित और समृद्ध बनाते है।

1.4.6. सामाजिक महत्त्व– इस बात में किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि एक स्वस्थ नागरिक से स्वस्थ परिवार बनता है तथा एक स्वस्थ व संस्कारित परिवार से एक आदर्श समाज की स्थापना होती है। इसीलिए समाजोत्थान में योग अभ्यास का सीधा प्रभाव देखा जा सकता है। सामाजिक गतिविधयाँ व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक दोनों पक्षों को प्रभावित करती है। सामान्यतः आज प्रतिस्पर्धा के इस युग में व्यक्ति विशेष पर सामाजिक गतिविधियों का नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। व्यक्ति धन कमाने, व विलासिता के साधनों को संजोने के लिए हिंसक, आतंकी, अविश्वास व भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति को बिना किसी

हिचकिचाहट के अपना रहा है। ऐसे यौगिक अभ्यास जैसे– कर्मयोग, हठयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, अष्टांग योग आदि साधन समाज को नयी रचनात्मक व शान्तिदायक दिशा प्रदान कर रहे है। कर्मयोग का सिद्धान्त तो पूर्ण सामाजिकता का ही आधार है "सभी सुखी हो, सभी निरोगी हो" इसी उद्देश्य के साथ योग समाज को एक नयी दिशा प्रदान कर रहा है।

<u>1.4.7. आर्थिक दृष्टि से महत्त्व</u> – प्रत्यक्ष रूप से देखने पर योग का आर्थिक दृष्टि से महत्त्व गौण नजर आता हो लेकिन सूक्ष्म रूप से देखने पर ज्ञात होता है कि मानव जीवन में आर्थिक स्तर और योग विद्या का सीधा सम्बन्ध है। शास्त्रों में वर्णित "पहला सुख निरोगी काया, बाद में इसके धन और माया" के आधार पर योग विशेषज्ञों ने पहला धन निरोगी शरीर को माना है। एक स्वस्थ्य व्यक्ति जहाँ अपने आय के साधनों का विकास कर सकता है, वहीं अधिक परिश्रम से व्यक्ति अपनी प्रतिव्यक्ति आय को भी बढ़ा सकता है। जबकि दूसरी तरफ शरीर में किसी प्रकार का रोग न होने के कारण व्यक्ति का औषधियों व उपचार पर होने वाला व्यय भी नहीं होता है। योगाभ्यास से व्यक्ति में एकाग्रता की वृद्धि होने के साथ –साथ उसकी कार्यक्षमता का भी विकास होता है। आजकल तो योगाभ्यास के अन्तर्गत आने वाले साधन आसन, प्रणायाम, ध्यान द्वारा बड़े–बड़े उद्योगपति व फिल्म जगत के प्रसिद्ध लोग अपनी कार्य क्षमता को बढ़ाते हुए देखे जा सकते है। योग जहाँ एक ओर इस प्रकार से आर्थिक दृष्टि से अपना एक विशेष महत्त्व रखता है, वहीं दूसरी ओर योग क्षेत्र में काम करने वाले योग प्रशिक्षक भी योग विद्या से धन लाभ अर्जित कर रहे है। आज देश ही नहीं विदेशों में भी अनेको योगकेन्द्र चल रहे है जिनमे शुल्क लेकर योग सिखाया जा रहा है। साथ ही साथ प्रत्येक वर्ष विदेशो से सैकड़ों सैलानी भारत आकर योग प्रशिक्षण प्राप्त करते है जिससे आर्थिक जगत् को विशेष लाभ पहुँच रहा है।

<u>1.4.8. आध्यात्मिक क्षेत्र में</u> – प्राचीन काल से ही योग विद्या का प्रयोग आध्यात्मिक विकास के लिए किया जाता रहा है। योग का एकमात्र उद्देश्य आत्मा–परमात्मा के मिलन द्वारा समाधि की अवस्था को प्राप्त करना है। इसी अर्थ को जानकर कई साधक योगसाधना द्वारा मोक्ष, मुक्ति के मार्ग को प्राप्त करते है। योग के अन्तर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि को साधक चरणबद्ध तरीके से पार करता हुआ कैवल्य को प्राप्त कर जाता है।

योग के विभिन्न महत्तव देखने से स्पष्ट हो जाता है कि योग वास्तव में वैज्ञानिक जीवन शैली है, जिसका हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष पर गहराई से प्रभाव पड़ता है। इसी कारण से योग विद्या सीमित तौर पर संन्यासियों की या योगियों की विद्या न रह कर, पूरे समाज तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए आदर्श पद्धति बन चुकी है। आज योग एक सुव्यवस्थित व वैज्ञानिक जीवन शैली के रूप में प्रमाणित हो चुका है। प्रत्येक मनुष्य अपने स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए, रोगो के उपचार हेतु, अपनी कार्यक्षमता को बढ़ाने, तनाव – प्रबन्ध, मनोदैहिक रोगो के उपचार आदि में योग पद्धति को अपनाते हुए देखा जा रहा है। प्रतिदिन

टेलीविजन कार्यक्रमो में बढ़ती योग की मांग इस बात को प्रमाणित करती है कि योग वर्तमान जीवन में एक अभिन्न अंग बन चुका है। जिसका कोई दूसरा पर्याय नहीं हैं। योग की लोकप्रियता और महत्त्व के विषय में हजारो वर्ष पूर्व ही योगशिखोपनिषद् में कहा गया है–

योगात्परतंरपुण्यं यागात्परतरं शित्रम्।

योगात्परपरंशक्तिं योगात्परतरं न हि।।

अर्थात् योग के समान कोई पुण्य नहीं, योग के समान कोई कल्याणकारी नही, योग के समान कोई शक्ति नही और योग से बढ़कर कुछ भी नही है। वास्तव में योग ही जीवन का सबसे बड़ा आश्रम है।

1.5 योग का उद्देश्य

योग जीवन जीने की कला है, साधना विज्ञान है। मानव जीवन में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी साधना व सिद्धान्तो में ज्ञान का महत्व दिया है। इसके द्वारा आध्यात्मिक और भौतिक विकास सम्भव है। वेदो, पुराणो में भी योग की चर्चा की गयी है। यह सिद्ध है कि यह विद्या प्राचीन काल से ही विशेष समझी गयी है। उसे जानने के लिए सभी ने श्रेष्ठ स्तर पर प्रयास किये है और गुरूओ के शरण मे जाकर जिज्ञासा प्रकट की व गुरूओं ने शिष्य की पात्रता के अनुरूप योग विद्या उन्हे प्रदान की। अतः आज के विद्यार्थियो का यह कर्तव्य है, कि वह इन महात्माओ विद्वानो द्वारा प्रदत्त विद्या को जाने और चन्द सुख व भौतिक लाभ को ही प्रधानता न देते हुए यह समझे कि यह श्रेष्ठ विद्या इन योगियों ने किस उद्देश्य से प्रदान की। आज का मानव जीवन कितना जटिल है, उसमें कितनी उलझने और अशांति है, वह कितना तनावमुक्त और अवद्रुय हो चला है। यदि किसी को दिव्य दृष्टि मिल सकती होती तो वह देख पाता कि मनुष्य का हर कदम पीड़ा की कैसी अकुलाहट से भरा है,उसमे कितनी निराशा, भय, व्याकुलता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि हमारा हर पग प्रसन्नता का प्रतीक बन जाए, उसमे पीड़ा का अंश – अवशेष न बचे। इसके लिए हमे वह विद्या समझनी होगी कि अपने प्रत्येक कदम पर चिंतामुक्त और तनावरहित कैसे बनते चले और दिव्य शंति एंव समरसता को किस भांति प्राप्त करे। इसी रहस्य को उजागर करना ही योग अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।

योग अध्ययन का मुख्य उद्देश्य ऐसे व्यक्तियो का निर्माण करना है जिनका भावनात्मक स्तर दिव्य मान्यताओ से, आकांक्षाओ से दिव्य योजनाओ से जगमगाता रहे। जिससे उनका चिन्तन और क्रियाकलाप ऐसा हो जैसा कि ईश्वर भक्तों का, योगियों का होता है। क्योंकि ऐसे व्यक्तियो में क्षमता एवं विभूतियां भी उच्च स्तरीय होती है। वे सामान्य पुरुषो की तुलना में निस्थित ही समर्थ और उत्कृष्ट होते है, और उस बचे हुए प्राण–प्रवाह को अचेतन के विकास करने में नियोजित करना हैं। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान ,समाधि जैसी

साधनाओ के माध्यम से चेतन मास्तिष्क को शून्य स्थिति में जाने की सफलता प्राप्त होती है।

योग विद्या के यदि अलग–अलग विषयों पर दृष्टिपात करते है तो पाते है कि हठयोग साधना का उद्देश्य स्थूल शरीर द्वारा होने वाले विक्षेप को जो कि मन को क्षुब्ध करते है, पूर्णतया वश में करना है। स्नायुविक धाराओ एंव संवेगो को वश में करके एक स्वस्थ शरीर का गठन करना है। यदि हम अष्टांग योग के अन्तर्गत आते है तो पाते है कि राग द्वेष, काम, लोभ, मोहादि चिन्ता को विक्षिप्त करने वाले कारको को दूर करना यम, नियम का मूल उद्देश्य है।

स्थूल शरीर में होने वाले विकारो को दूर करना आसन, प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य है। चित्त को विषयो से हटाकर आत्म–दर्शन के प्रति उन्मुख करना प्रत्याहार का उद्देश्य है। धारणा का उद्देश्य चित्त को समस्त विषयों से हटाकर स्थान विशेष में उसके ध्यान को लगाना है। धारणा स्थिर होने पर क्रमशः वही ध्यान कही जाती है, और ध्यान की पराकाष्टा समाधि है। समाधि का उच्चतम अवस्था में ही परमात्मा के यथार्थ स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन होता है, जो कि पूर्व विद्वानो के अनुसार मनुष्य मात्र का परम लक्ष्य, परम उद्देश्य है।

कुछ ग्रन्थो मे भी योग अध्ययन के उद्देश्य को समझाते हुए मनीषियों ने कहा है, कि

द्विज सेतिल शारवस्य श्रुलि कल्पतरोः फलम्।
शमन भव तापस्य योगं भजत सत्तमाः।। गोरखसंहिता

अर्थात् वेद रूपी कल्प वृक्ष के फल इस योग शास्त्र का सेवन करो, जिसकी शाख मुनिजनो से सेवित है, और यह संसार के तीन प्रकार के ताप को शमन करता है।

यस्मिन् ज्ञाते सर्वभिंद ज्ञातं भवति निश्यितम्।
तस्मिन् परिप्रमः कार्यः किमन्यच्छास प्रस्य माषितम्।।(शिव संहिता)

जिसके जानने से सब संसार जाना जाता है ऐसे योग शास्त्र को जानने के लिए परिश्रम करना अवश्य उचित है, फिर जो अन्य शास्त्र है, उनका क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नही है।

योगात्सम्प्राप्यते ज्ञाने योगाद्धर्मस्य लक्षणम् ।
योगः परं तपोज्ञेयसमाधुक्तः समभ्यसेत्।।

योग साधना से ही वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है, योग ही धर्म का लक्षण है, योग ही परमतप है। इसलिए योग का सदा अभ्यास करना चाहिए संक्षेप में कहा जाए तो जीवात्मा का विराट चेतन से सम्पर्क जोड़कर दिव्य आदान प्रदान का मार्ग खोल देना ही योग अध्ययन का मुख्य उद्देश्य हैं।

1.6 सारांश

योग शब्द संस्कृत व्याकरण के युज धातु से बना है जिसका अर्थ है जुड़ना। समाधि की प्राप्ति के लिए जो भी विद्याये भारतीय चिन्तन में बताई गई हैं उन साधनाओं के ओर साधक का अग्रसरित होना ही योग है। योग को जहॉ महर्षि पतंजलि ने चित्त वृत्ति निरोध

के रूप में परिभाषित किया है तो वही दूसरी ओर भगवत गीता में योग को कर्मो की कुशलता के रूप में स्वमं भगवान श्रीकृष्ण ने योग की महिमा का ज्ञान किया है। वेदों, उपनिषदों व पुराणों में भी योग को एक महत्वपूर्ण अंग माना है। जैन तथा बौद्ध दर्शन में भी क्रमशः मुक्ति व निर्वाण प्राप्ति के लिए इस परम्परागत विद्या की उपयोगिता को स्वी्कार किया है। योग वास्तव में जीवन के अभीष्ठ (समाधि) की प्राप्ति का एक महत्वहपूर्ण सौपान है।

1.7 शब्दावली

साधनार्थ– साधना के लिए

कैवल्य–योग की एक उच्च अवस्था

आसक्ति–मोह

अनासक्ति– मोहरहित

जिज्ञासा– जानने की इच्छा

पात्रता– योग्यता

विक्षेप– बाधा

क्षुब्ध– कुंठित

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. **क**. असत्य **ख.** सत्य
2. **क**. स **ख.** अ

   ग. ब **ध.** स

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पातंजल योगसूत्र– गीताप्रेस गोरखपुर
2. अग्निपुराण– गीताप्रेस गोरखपुर
3. श्रीमद्भगवद्गीता– गीताप्रेस गोरखपुर

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. योग शब्द का अर्थ बताते हुए योग की विभिन्न परिभाषाएं दीजिए।
2. योग के उद्देश्य तथा महत्व पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालिए।
3. योग के आधुनिक युग में योग की भूमिका की विस्तृत चर्चा कीजिए।

इकाई–2 योग का उद्भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 योग का उद्भव

2.4 योग का विकास क्रम

- 2.4.1 वेदो में योग का विकास क्रम
- 2.4.2 उपनिषदों में योग का विकास क्रम
- 2.4.3 स्मृतियों मे योग का विकास क्रम
- 2.4.4 दर्शनों मे योग का विकास क्रम
- 2.4.5 हठ प्रदीपिका एवं घेरण्ड सेहिता में योग
- 2.4.6 गीता मे योग का विकास क्रम
- 2.4.7 आधुनिक युग में योग का विकास क्रम

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना –

योग भारतीय संस्कृति का एक आधार स्तम्भ हैं । जो प्राचीन काल से आधुनिक काल तक हमारे काल से जुडा हुआ है । इस योग का महत्व प्राचीन काल से भी था तथा आधुनिक काल में भी इसका महत्व और अधिक बडा है। प्रिय पाठको योग एक ऐसी विद्या है जिसके द्वारा मन को अविद्या, अस्मिता आदि द्वेषो से बचाकर वृत्तियों से रहित कर परमात्मा में लीन करने का ज्ञान प्राप्त होता है एक सामान्य ज्ञान से लेकर उच्च कोटि के साधको के लिए योग के अलग–अलग मार्गो का निर्देष अलग–अलग भागो में किया गया है इन सभी मार्गो में साधना एवं साधन की विधि अलग–अलग हो सकती है किन्तु इन सभी का अन्तिम उद्देश्य परम तत्व को प्राप्त करना होता है।

प्रस्तुत इकाई में योग के उद्देश्य एंव विकास को समझाया गया है योग का उद्भव वेदों से होता है तथा इसके विकास की एक कमबद्ध श्रृखंला प्रारम्भ होती है वेद के उपरान्त उपनिषदो तथा भिन्न–भिन्न स्मृतियो में स्मृतियों के उपरान्त विभिन्न दर्शनो एंव यौगिक ग्रन्थों में तत्पश्चात गीता में तथा वर्तमान में आधुनिक काल तक इसके विकास की एक कमबद्व श्रृखंला हैं।

2.2 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

- आप योग के उद्भव को समझा सकेगें।
- ` योग के विकास कम का अध्ययन करेगें।
- वेदों में योग के स्वरूप का विश्लेषण कर सकेगे।
- बता सकेगे विभिन्न ग्रन्थों में योग के स्वरूप कैसा है।

2.3 योग का उद्भव

योग के उद्भव का अर्थ योग के प्रारम्भ अथवा उत्पन्न होने से लिया जा सकता है योग का प्रारम्भ आदि काल से ही है सृष्टि के आदि ग्रन्थ के रूप मे वेदो का वर्णन आता है। वेद वह ईश्वरी ज्ञान है। जिसमे मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष पर प्रकाश डाला गया है तथा जीवन को सुखमय बनाते हुए जीवन के चरम लक्ष्य मुक्ति के मार्ग को समझाया गया है। इस मुक्ति के मार्ग के साधन के रूप मे योग मार्ग का उल्लेख किया जाता हो सर्वप्रथम ऋग्वेद में कहा गया है–

यत्रजते मन उत यूत्रजते धियों विप्रा विप्रस्थ बृहतो विपश्रिचतः।।

अर्थात जीव (मनुष्य) को परमेश्वर की उपासना नित्य करनी उचित है वह मनुष्य अपने मन को सब विद्याओं से युक्त परमेश्वर में स्थित करें। यहॉ पर मन को परमेश्वर में स्थिर करने का साधन योगाभ्यास का निर्देश दिया गया है

अन्यत्र यजुर्वेद में पुनःकहा गया–

योगे योगें तवस्तंर वाजे वाजे हवामहे।

सखाय इन्द्रमूतये।।

अर्थात बार–बार योगाभ्यास करते और बार–बार शारीरिक एंव मानसिक बल बढाते समय हम सब परस्पर मित्रभाव से युक्त होकर अपनी रक्षा के लिए अनन्त बलवान, ऐश्वर्यशाली ईश्वर का ध्यान करते है तथा उसका आवाहन करते है ।

योग के उद्भव अथवा प्रथम वक्ता के याजवल्वय स्मृति में कहा गया है–

हिरण्यगर्यो योगास्थ वक्ता नास्यःपुरातनः।

अर्थात हिरण्यगर्भ ही योग के सबसे पुरातन अथवा आदि प्रवक्ता है।

महाभारत में भी हिरण्यगर्भ को ही योग के आदि के रूप मे स्वीकार करते हुए कहा गया–

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिःस उच्यते।

हिरण्यगर्यो योगस्य वक्ता नास्यःपुरातनः।

अर्थात सांख्य के वक्ता परम ऋषि मुनिवर कपिल है योग के आदि प्रवक्ता हिरण्य गर्भ है। हिरण्यगर्भ को वेदो में स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि हिरण्यगर्भ परमात्मा का ही एक विश्लेषण है अर्थात परमात्मा को ही हिरण्यगर्भ के नाम से पुकारा जाता है।

इससे स्पष्ट होता है कि योग के आदि वक्ता परमात्मा (हिरण्यगर्भ) है जहॉ से इस बात का ज्ञान का उद्भव हुआ तथा वेदो के माध्यम से इस विद्या का प्रादुर्भाव संसार में हुआ।

योग के प्रसिद्व ग्रन्थ हठ प्रदीपिका के प्रारम्भ में आदिनाथ शिव को योग के प्रर्वतक के रूप में नमन करते हुये कहा गया है–

श्री आदिनाथ नमोस्तु तस्मै येनोपदिष्य

अर्थात उन भगवान आदिनाथ को नमस्कार है जिन्होने हठयोग विद्या की शिक्षा दी । कुछ विद्वान योग के उद्भव को सिन्धु घाटी सभ्यता के साथ भी जोडते है तथा इस सभ्यता के अवशेषो मे प्राप्त विभिन्न आसनों के चित्रों एंव ध्यान के चित्रों से यह अनुमान करते है कि योग का उद्गम इसी सभ्यता के साथ हुआ है।

2.4 योग का विकास क्रम

जिज्ञासु पाठको पूर्व का अध्ययन इस तथ्य को स्पष्ट करते है कि योग विद्या का उद्देश्य हिरण्यगर्भ (परमात्मा) द्वारा किया गया तथा वेदो मे इसका वर्णन प्राप्त हुआ वेदो के उपरान्त इस विद्या का प्रचार प्रसार संसार मे हुआ तथा यह विकास अभी तक चलता आ रहा है अब हम इसी विकास क्रम पर दृष्टिगत करते है

2.4.1 वेदो में योग का विकास क्रम–

वेद संसार के आदि ग्रन्थ है सृष्टि के आरम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य, एवं अंगीरा नामक ऋषियों ने परमात्मा से प्राप्त प्रेरणा के आधार पर वेदों की रचना की इसी कारण वेद को परमात्मा की वाणी की संज्ञा दी जाती है वेदो में योग विद्या का वर्णन भिन्न–भिन्न स्थानों पर किया गया जिनमें से कुछ का वर्णन इस प्रकार है।

योगे –योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे

सखाय इन्द्र भूतयें।।

अर्थात हम योग में तथा हर मुसीबत के परम ऐश्वर्यवान इन्द्र का आवाहन करते है ।

यजुर्वेद में कहा है –

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियम्।

अग्नेर्ज्योतिर्निचास्य अध्याभरत्।। यजु 0 11/1

अर्थात योग को करने वाले मनुष्य ब्रह्मज्ञान के लिए जब अपने मन को परमेश्वर में युक्त करते है तब परमेश्वर उनकी बुद्वि को अपनी कृपा से अपने में युक्त कर लेते है फिर वे परमात्मा के प्रकाश को धारण करते है।

अथर्ववेद मे शरीरस्थ चक्रों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया–

अष्टचक्र नवद्वारा देवातां पूरयोधया

तस्या हिरण्यभयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।। अथर्ववेद 10/1/31

अर्थात आठ चक्रो एवं नौ द्वारों से युक्त यह शरीर एक अपराजेय देव नगरी है इसमें हिरण्यभय कोश है जो ज्योति एंव आनन्द से परिपूर्ण है ।

2.4.2 उपनिषदों में योग का विकास क्रम–

उपनिषदो का शब्दिक अर्थ उप षद के रूप में किया जा सकता है उप का अर्थ समीप (ब्रहम अथवा परमात्मा के समीप) जबकि षद का अर्थ है निश्चित ज्ञान से आता है अर्थात परमात्मा के समीप बैठकर निश्चित ज्ञान की प्राप्ति ही उपनिषद है।

उपनिषद साहित्य पर वेदों की विचारधारा का पूर्ण रूप से प्रभाव परिलक्षित होता है तथा उपनिषद को वैदिक ज्ञान काण्ड की संज्ञा भी दी जाती है इन्हे ही वेदान्त भी कहा जाता है।

योग विद्या का उपनिषद साहित्य में भिन्न–भिन्न स्थानों पर वर्णन प्राप्त होता है उपनिषद में कुछ उपनिषद तो योग विषय पर ही वर्णन करते है जबकि कुछ उपनिषद में स्थान के विषय मे समझाया गया है। योग के संदर्भ में उपनिषद में इस प्रकार वर्णन आता है।

योगशिखोउपनिषद में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है –

योगपान प्राणियोंऐंक्यं स्थरजो रेतसोस्तथा।

सूर्य चन्द्रमसों यौं गादृ जीवात्म परमात्मनो।।

एंव तु इन्द्र जलास्य संयोगों योग उच्यतें।।

अथार्त प्राण वायु का अपान वायु में मिलन स्वरज रूपी कुण्डलिनी शक्ति का रेत रूपी आत्मतत्व से मिलन, सूर्य स्वर का चन्द्रस्वर से मिलन तथा जीवात्मा का परमात्मा से मिलन होता है ।

अमृतनादोपनिषद में योग के अंगो पर प्रकाश डालते हुए कहा गया –

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायार्मोश्थ धारणा तर्कश्चैव समाधिश्च षडंगोयोग उच्यते।

त्रिशिखबाह्मणोंपनिषद में कहा गया है

ध्यानस्य विस्मृतिः सम्यक् समाधिरभिधीयते।।

अर्थात ध्यान का पूर्ण रूपेण विस्मरण अर्थात ध्यान में पूर्ण रूप से डूब जाना ही समाधि की अवस्था है।

श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा गया है

न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु

प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्

अर्थात वह शरीर जो योग की अग्नि में तप जाता है उसें कोई रोग नही होता, बुढापा नही आता तथा वह शरीर मृत्यु को भी प्राप्त नही होता हैं इस प्रकार उपनिषद साहित्य में योग के स्वरूप को अलग–अलग ढग से समझाया गया है इस सदर्भ में अमृतादोपनिषद में योग के छहः अंगों का उल्लेख किया गया तो त्रिशिखबाह्मणोंपनिषद में यम और नियम की

संख्या दस–दस बतलाई परन्तु इन सभी योग का मूल उदृदेश्य आत्मतत्व को शुद्व कर परमात्मा के साथ इसका संयोग करना ही रहा है।

2.4.3 स्मृतियों में योग का विकास कम–

स्मृतियों का वैदिक साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है मनु द्वारा रचित याजवल्लभ स्मृति का महत्व वर्तमान समय में भी है इन सभी स्मृतियों में योग के स्वरूप को इस प्रकार स्पष्ट किया गया –

सुक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः।

देहेषु च समुत्पन्तिमुन्तश्वधमेशु च।।

अर्थात योगाभ्यास से परमात्मा की समूक्ष्मता को जाना जाता है। मनुस्मृति में प्राणायाम द्वारा इन्द्रियों की शुद्वि का निर्देश भी इस प्रकार किया गया

दहयन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।

तथेन्द्रियाणां दहायन्ते दोषाः प्राणास्य निग्रहातृ

अर्थात जिस प्रकार अग्नि में तपने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते है उसी प्रकार प्राणायाम रूपी अग्नि में तपाने से इन्द्रियों के दोष समाप्त हो जाते है। अर्थात यहां पर प्राणायाम के महत्व को दर्शाया गया है।

याजवल्वक्य स्मृति में **''संयागों योग इत्यक्तो जीवोत्मनो''** कहकर जीवात्मा का परमात्मा से संयोग को योग कहा गया है।

2.4.4 दर्शन मे योग का विकास कम–

वैदिक दर्शन में छः दर्शनों का वर्णन आता है इन छः दर्शनों में योगदर्शन, साख्यदर्शन, न्याय दर्शन, वैशेशिक दर्शन, मीमांसा दर्शन, एवं वेदान्त दर्शन आते है इन ***षड्*** दर्शनों को आस्तिक दर्शनों की सझां दी जाती है इनके अतिरिक्त बौद्व दर्शन, जैन दर्शन एंव चार्वाक दर्शन इन तीनो दर्शनो को नास्तिक दर्शन के अन्तर्गत रखा गया है इन सभी दर्शनों में योग को अलग–अलग रूपो में प्रस्तुत किया गया है इन सभी दर्शनों में पतंजलि कृत योग दर्शन में योग के स्वरूप की स्पष्ट एंव सुन्दर व्याख्ंया की गयी है। यह दर्शन समाधिपाद, साधनपाद विभूति पाद तथा कैवल्य पाद के नाम से चार अध्यायों में विभक्त है इन अध्यायों में कमशः 51, 55, 55, 34, =195 सूत्र हैं। इस दर्शन में प्रश्नोंत्तरात्मक शैली में योग के स्वरूप की व्यांख्या की गयी है यहॉ पर योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है–

योगश्चित्त वृत्ति निरोधः पा0 योग सू0 1/2

अर्थात चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग है

चित्त वृत्तियों का निरोध के साधन के साथ–साथ अष्टांग योग का वर्णन करते हूए योग दर्शन में कहा गया है– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि ये योग के आठ अंग है।

सांख्य दर्शन में मुनिवर कपिल ने 25 तत्वों की संख्या की गणना की। तथा इन तत्वों का ज्ञान कर परमात्मा को प्राप्त करने का उपदेश दिया।इन दर्शन में कार्य कारण सिद्वान्त तथा सत्कार्यवाद को भी समझाया गया है। न्याय दर्शन में गौतम ऋषि द्वारा किसी भी वस्तु का सही ज्ञान प्राप्त कर उसके ज्ञान का उपदेश दिया गया है। वैशेषिक दर्शन में कर्णाद मुनि द्वारा प्रकृति का विवेचन कर परमात्म को प्राप्त करने का उपदेश दिया गया है

मीमासां दर्शन में महर्षि जैमिनी ने गहन चिन्तन अथवा अनुसंधान द्वारा परमात्मा तत्व को प्राप्त करने का उपदेश किया गया वेदान्त दर्शन में आचार्य शंकर आत्मा के स्वरूप को प्रतिपादित करते है तथा इसकी मुक्ति के साधनों का उल्लेख करते है इस प्रकार इन षडदर्शनों में भिन्न–भिन्न मार्गो से आत्मा को परमात्मा से जोडने के मार्गो का उल्लेख किया गया है।

जैन दर्शन में वर्धमान महावीर ने सम्यक दर्शन सम्यक ज्ञान एंव सम्यक चरित्र के रूप में आत्म विकास का उपदेश दिया गया जबकि बौद्व दर्शन में महात्मा बुद्व द्वारा अष्टांग योंग के समान साधना के आठमार्गों का वर्णन किया गया इन मार्गो में सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाक, सम्यक कर्म, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति एवं सम्यक समाधि का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार दर्शन काल में योग को अलग–अलग रूपों में प्रकाशित किया गया।

2.4.5 हठ प्रदीपिका एवं घेरण्ड सेहिता में योग–

हठप्रदीपिका एंव घेरण्ड संहिता में योग के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा गया–

प्रणम्य श्रीगुरू नाथ स्वात्मारामेण योगिना।
केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यतें।।

अर्थात श्रीनाथ गुरू को प्रणाम करके योगी स्वात्माराम केवल राजयोग की प्राप्ति की प्राप्ति के लिए हठविद्या का उपदेश करते है। घेरण्ड संहिता में हठयोग के सप्त साधनों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया–

शोधनं दृढता चैवं स्थैर्य धैर्य च लाधवम्।
प्रत्यक्षं च निर्लिप्तं च घटस्य सप्तसाधनम्।

अर्थात शोधन, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष, और निलिप्ता ये सात शरीर शुद्वि के साधन है जिन्हें सामान्यतः सप्तसाधन की संज्ञा दी जाती है इन सप्तसाधनों के लाभों पर प्रकाश डालते हुए घेरण्ड ऋषि कहते है–

षट्कर्मणा शोधंन च आसनेन भवेद्दृढम्।

मुद्रेया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता।

प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनः।

समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः।।

अर्थात षट्रकर्म से शरीर का शोधन आसनों से दृढता, मुद्राओं से स्थिरता प्रत्याहार से धैर्य, प्राणायाम से हल्कापन, ध्यान से आत्म साक्षात्कार एव समाधि से निर्लिप्तता के भाव उत्पन्न होते है इन साधनों का अभ्यास करने वाले साधन की मुक्ति में कोई संशय नही रहता है।

इस प्रकार घेरण्ड संहिता एंव हठयोग प्रदीपिका में योग के स्वरूप को हठयोग के रूप में वर्णित किया गया।

2.4.6 गीता में योग का विकास क्रम–

गीता में अर्जुन को समझाते हुए योग के सदंर्भ में भगवान श्रीकृष्ण कहते है –

योगस्थः कुरू कर्माणि संगत्यक्त्वा धन्नजय ।

सिद्वसिद्वयोःसमो भूत्वा समत्वं योग उच्चते।। (गीता 2/48)

अर्थात अर्जुन तुम कर्म फलों की आसक्ति को त्यागकर, सिद्धि और असिद्धि, जय और पराजय, मान और अपमान में समभाव रखते हुए कार्य कर क्योकि यह समत्वं की भावना ही योग है।

पुनःभगवान श्रीकृष्ण कर्मयोग पर प्रकाश डालते हुए कहते है–

बुद्वियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदृष्कृते।

तस्माघोगाय युजस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। (गीता 2/50)

अर्थात हे अर्जुन बुद्धिमान पुरूष अच्छे एंव बुरे दोनो ही कर्मो को इसी लोक में त्याग देते है तथा आसक्तिरहित होकर कर्म करते है क्योकि कर्मो में कुशलता ही योग है।

यद्यपि गीता को कर्मयोग का सर्वोतम शास्त्र माना गया है किन्तु कर्मयोग के साथ–साथ इस ग्रन्थ में भक्तियोग, ज्ञानयोग, सन्यासयोग, मंत्रयोग एवं ध्यानयोग आदि योग के अन्यमार्गो का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

2.4.7 आधुनिक युग में योग का विकास क्रम–

आधुनिक युग के योगी महर्षि योग को सांसारिक जीवन एंव आध्यात्मिक जीवन के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का साधन मानते है आधुनिक युग में योग को एक नई दिशा देने वाले स्वामी रामदेव ने योग को स्वास्थ जोडते हुए शारीरिक,मानसिक एंव आध्यात्मिक स्वास्थ प्राप्त करने का साधन बताया है। शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों पर बढ़ते तनाव को योगाभ्यास से कम किया जा रहा है। योगाभ्यास से बच्चों को शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक रूप से भी मजबूत बनाया जा रहा है। स्कूल व महाविद्यालयों में शारीरिक शिक्षा विषय में योग पढ़ाया जा रहा है। वहीं योग–ध्यान के अभ्यास द्वारा विद्यार्थियों में बढ़ते

मानसिक तनाव को कम किया जा रहा है। साथ ही साथ इस अभ्यास से विद्यार्थियों की एकाग्रता व स्मृति शक्ति पर भी विशेष सकारात्मक प्रभाव देखे जा रहे हैं। आज कम्प्यूटर, मनोविज्ञान, प्रबन्धन विज्ञान के छात्र भी योग द्वारा तनाव पर नियन्त्रण करते हुए देखे जा सकते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में योग के बढ़ते प्रचलन का अन्य कारण इसका नैतिक जीवन पर सकारात्मक प्रभाव है आजकल बच्चों में गिरते नैतिक मूल्यों को पुनः स्थापित करने के लिए योग का सहारा लिया जा रहा है। योग के अन्तर्गत आने वाले यम में दूसरों के साथ हमारे व्यवहार व कर्तव्य को सिखाया जाता है, वहीं नियम के अन्तर्गत बच्चों को स्वयं के अन्दर अनुशासन स्थापित करना सिखाया जा रहा है। विश्वभर के विद्वानों ने इस बात को माना है कि योग के अभ्यास से शारीरिक व मानसिक ही नहीं बल्कि नैतिक विकास होता है। इसी कारण आज सरकारी व गैरसरकारी स्तर पर स्कूलों में योग विषय को अनिवार्य कर दिया गया है।

अभ्यास प्रश्न–

(1) योग के पुरातन प्रवक्ता है ।

(A) महर्षि पंतजलि (B)महर्षि व्यास

(C) भगवान श्रीकृष्ण (D) हिरण्यगर्भ

(2) निम्न में से आस्तिक दर्शन वैदिक नही है–

(A) बौद्ध दर्शन (B) योग दर्शन

(C) न्याय दर्शन (D) सांख्य दर्शन

(3) किस ग्रन्थ में चित्त वृत्तियों के निरोध को योग कहा जाता है–

(A) ऋग्वेद में (B) योग दर्शन में

(C) गीता में (D) उपनिषद में

(4) सांख्य दर्शन में मुनिवर कपिल ने कितने तत्वों की कल्पना की–

(A) 5 (B) 10

(C) 25 (D) अनंत

(5) घेरण्ड संहिता में किसका वर्णन किया गया है

(A) अष्टांग योग (B) सप्त साधन

(C) पंच तत्व (D) त्रिदोष

2.5 सारांश

प्रिय छात्रों उपरोक्त अध्ययन इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि योग का उद्भव परमात्मा के श्रीमुख से ही हुआ जो आगे चलकर उपनिषद साहित्य में तथा स्मृतियों एंव दर्शनो से होता हुआ वर्तमान समय तक अपने विकास के क्रम में आगे बढा।

इस विद्या का उद्देश्य प्राणी को दुःख से मुक्त कर मुक्ति के मार्ग की ओर प्रशस्त करना है। भिन्न–भिन्न व्यक्ति अपनी क्षमता, रूचि से अपना सकते है यहॉ पर यह स्पष्ट करता भी अनिवार्य होगा कि इसके लिए मार्ग अलग–अलग हो सकते है किन्तु लक्ष्य एक ही है उदाहरण–के लिए जिस प्रकार संसार की अनेको नदियॉ भिन्न–भिन्न मार्गो से होती हुई अन्त में एक ही सागर में ही विलीन हो जाती है ठीक उसी प्रकार योग के ये भिन्न–भिन्न अन्त में आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ देते हैं।

2.6 शब्दावली

उच्च कोटि – सर्वोच्च श्रेणी

साधक – साधना करने वाला मनुष्य

आदिकाल –सृष्टि का प्रारम्भिक समय

सृष्टि – संसार

पुरातन – प्राचीन

उद्भव – उत्पत्ति

लाधवम – हल्कापन

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) D

(2) A

(3) B

(4) C

(5) B

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) जगदीश चन्द्र मिश्रा – भारतीय दर्शन – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।

(2) चन्द्रधर शर्मा – भारतीय दर्शन – मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन दिल्ली।

(3) स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती –घेरण्ड संहिता योग पब्लिकेशन ट्रस्ट मुंगेर बिहार ।

(4) प्रो0 ईश्वर भारद्वाज – मानव चेतना सत्यम पब्लिकेशन दिल्ली।

2.9 निबंधात्मक प्रश्न –

(1) योग के उद्‍भव को समझाते हुए इसका विकास क्रम लिखिए।

(2) योग के विकास क्रम पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।

इकाई–3 योग में साधक एवं बाधक तत्व

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 योग साधना में बाधक तत्व

3.3.1 हठप्रदीपिका के अनुसार

3.3.2 योगसूत्र के अनुसार

3.4 योग साधना में साधक तत्व

3.4.1 हठप्रदीपिका के अनुसार

3.4.2 योगसूत्र के अनुसार

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में योग शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा के युज् धातु से निष्पन्न होने के साथ विभिन्न ग्रन्थों के अनुसार योग की परिभाषाओं का अध्ययन किया गया। प्रस्तुत इकाई में योग साधना के मार्ग में साधक के लिए साधना में सफलता हेतु सहायक तत्वों तथा साधना में बाधक तत्वों की चर्चा विभिन्न ग्रन्थों के अनुसार की गई है। वास्तविकता में योग साधना चाहे आध्यात्मिक लक्ष्य के लिए की जाए अथवा भौतिक सम्पन्नता हेतु दोनों ही स्थितियों में बाधाओं का आना स्वाभाविक ही है अतः यदि साधक इन बाधाओं को जानकर साधक तत्वों पर नियन्त्रण प्राप्त कर सके तो वह साधना में अवश्य सफल रहता है इसी तथ्य को प्रस्तुत इकाई में अध्ययन करेगें।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को अध्ययन के पश्चात आप–

- योग साधना के साधक तत्वों को जान पायेगें।
- योग साधना के बाधक तत्वों को समझ पायेगें।
- हठयोगप्रदीपिका के अनुसार साधक तत्वों का अध्ययन करेगें।
- योगसूत्र के अनुसार साधक एवं बाधक तत्वों का अध्ययन कर सकेगें।
- विभिन्न ग्रन्थों के अनुसार योग के साधक एवं बाधक तत्वों का अध्ययन कर इनका औचित्य समझ सकेगें।

3.3 योग साधना मे बाधक तत्व

जो योग साधक सच्चाई पूर्वक आध्यात्मिक मार्ग का अवलम्बन करता है, वह कुछ ऐसी कठिनाईयों एंव अनोखे अनुभव को प्राप्त करता है, जो उसमें प्रथमतः साहसहीनता तथा निरूत्साह उत्पन्न करके बाधा उत्पन्न करते है। इसके विपरीत ऋषियो–मुनियो के प्रायोगात्मक अनुभव के आधार पर योग साधना को सुगमता से प्रशस्त करने हेतू ऐसे उपाय है, जो साधना की बाधाओं को प्रभावशाली ढंग से दूर कर देते है। अतः योग साधना हेतू बाधक एंव साधक तत्वों का ज्ञान आवश्यक होता है, जिसका विवरण शास्त्रों के अनुसार निम्न प्रकार है–

3.3.1 हठप्रदीपिका के अनुसार

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।

जनसंएरच लौल्य च षड्भिर्योगो विनश्चति।। (ह0प्र0)

अर्थात् अधिक भोजन, अधिक श्रम, अधिक बोलना, नियम–पालन में आग्रह, अधिक लोक सम्पर्क तथा मन की चंचलता, यह छः योग को नष्ट करने वाले तत्व है अर्थात् योग मार्ग में प्रगति के लिए बाधक है–

उपर्युक्त श्लोकानुसार जो विघ्न बताये गये हैं, उनकी व्याख्या अधोवर्णित है–

अत्याहारः– आहार के अत्यधिक मात्रा में ग्रहण से शरीर की जठराग्नि अधिक मात्रा में खर्च होती है तथा विभिन्न प्रकार के पाचन–संबधी रोग जैसे अपच, कब्ज, अम्लता, अग्निमांघ आदि उत्पन्न होते है। यदि साधक अपनी ऊर्जा साधना में लगााने के स्थान पर पाचन क्रिया हेतू खर्च करता है या पाचन रोगों से निराकरण हेतू षट्कर्म, आसन आदि क्रियाओं के अभ्यास में समय नष्ट करता है तो योगसाधना प्राकृतिक रुप से बाधित होती है।

अतः शास्त्रों में कहा गया है कि–

सुस्निग्धमधुराहारश्चर्तुयांश विवर्जितः

भुज्यते शिवसंप्रीत्यै मिताहारः स उच्यते

अर्थात (जो आहार स्निग्ध व मधुर हो और जो परमेश्वर को सादर समर्पित कर आमाशय के 3/4 भाग को पूर्ण करने के लिए ग्रहण किया जाए, जिससे कि आमाशय का 1/4 भाग वायु संचरण व सुचारु रुप से पाचन क्रियार्थ छोडा जाए, ऐसे मात्रा आधारित रुचिकर भोजन को स्वात्माराम जी मिताहार की संज्ञा देते है। इसी प्रकार केशव गीता में कहा गया है–कि–

अति खावे अति थोडा खावे अति सोवे अति जागर पाये

यह स्वभाव राखे यदि कोय उसका योग सिद्ध नहीं होय

अर्थात अत्यधिक भोजन एवं थोडा भोजन, अत्यधिक सोना एवं अत्यधिक जागना। इस प्रकार का स्वभाव यदि कोई साधक रखता है, तो उसका योग कभी सिद्ध नहीं हो सकता। इसी प्रकार घेरण्ड ऋषि ने कहा है, कि– मिताहारी न होने के स्थान पर यदि साधक तो नाना प्रकार के रोगों से ग्रसित होकर योग मे सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। अतः साधक को अत्याहार की प्रवृत्ति को त्यागना चाहिए। शरीर को धारण करने में समर्थ होने के कारण धातु नाम को प्राप्त हुए वात, पित्त और कफ की न्यूनाधिकता खाये तथा पिये हुए आहार पदार्थों के परिणामस्वरुप रस की न्यूनाधिकता को व्याधि अथवा रोग कहते है। व्याधि होने पर चित्त वृत्ति उसमें अथवा उसे दूर करने के उपायों में लगी रहती है। इससे वह योग में प्रवृत्त नहीं हो सकती। इसी कारण व्याधि की गणना योग के विघ्नों में होती है। अजीर्ण, नींद की खुमारी, अति परिश्रम प्रवृत्ति से वाह्यकारवृत्ति का अभाव हो जाता है। अजीर्ण आदि लय के कारणरुप विघ्नों के निवारण करने के लिए पथ्य और लघु भोजन

करने से और प्रत्येक व्यवहार में नियमानुसार चलने से एवं उत्थान के प्रयत्न द्वारा चित्त को जागृत करने से विघ्न दूर होते है। इस विषय में श्री कृष्ण भगवान् ने भी अर्जुन के प्रति कहा है–

नात्यश्रतस्तु योगासित न चैकान्तमनश्रतः।

न चाति स्वप्नशील जाग्रतो नैव चार्जुन ।। गीता

अर्थात (जो अधिक भोजन करता है, जो बिल्कुल बिना खाये रहता है, जो बहुत सोता है तथा जो बहुत जागता है, उसके लिए हे अर्जुन योग नहीं है बल्कि–

युक्ताहारविहारस्य युत्कचेष्टस्य कर्मसु।

युत्कासवपनाववोधस्य योगो भवति दुःखहा।। गीता

जो नियमपूर्वक भोजन करता है नियमित आहार–विहार करता है। उसके लिए योग दुःख का नाश करने वाला होता है।

प्रयास– योग साधक को अत्यधिक शारीरिक व मानसिक श्रम से बचना चाहिए। अत्यधिक शारीरिक व मानसिक श्रम राजसिक व तामसिक गुणों की वृद्धि के साथ–साथ शरीरस्थ शारीरिक व मानसिक ऊर्जाओं में असंतुलन पैदा करते हैं अतः योग साधक को अतिप्रयास त्यागना चाहिए।

प्रजल्पः– अधिक बोलने की व्यावहारिकता से शारीरिक समय भी नष्ट होता है। गप–शप लडाने में समय व्यतीत करने से लोकसम्पर्क में वृद्धि होती है, और यही वृद्धि नकारात्मक वृत्तियों जैसे ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह आदि उत्पन्न कर योग मार्ग में बाधक बनती है।

नियमाग्रह – योग साधक के लिए शास्त्रोक्त या सामाजिक धार्मिक मान्यताओं के अनुसार नियमों का सख्त पालन आवश्यक नही है– जैसे यदि प्रातः काल ठंडे पानी से स्नान योग साधना के लिए आवश्यक माना गया है, तो रोगावस्था या अत्यन्त सर्दी के मौसम में इस नियम का पालन आवश्यक नहीं है। इन हालातों में थोडे ठण्डा जल का प्रयोग भी हो सकता है। अत्यधिक नियमाग्रह योगसाधना मार्ग में बाधक है।

जनसंग– अत्यधिक लोकसम्पर्क भी शारीरिक व मानसिक ऊर्जा का ह्रास कर नष्ट करता है।जितने लोगों के साथ सम्पर्क होगा, उतनी ही आपकी योगसाधना मार्ग में बधा बनेगा। यह त्याज्य है।

चंचलता– यह वृत्ति भी योगसाधना मार्ग में बाधक है। शरीर की अस्थिरता दीर्घ समयावधि की साधना हेतु बाधक बनती है। नकारात्मक वृत्तियां जैसे ईर्ष्या, द्वेष आदि मन की चंचलता बढ़ाकर योग मार्ग में विघ्न उत्पन्न करती है। साधना की अनियमितता जैसे– एक

दिन तो सुबह चार बजे से साधना की दूसरे दिन आलस्यवश सुबह 7 बजे उठकर की। इस तरह की अस्थिनता भी योगसाधना में बाधक बनती है। चित्तविक्षेपों को ही योगान्तराय कहते हैं जो चित्त को विक्षिप्त करके उसे एकाग्रता को नष्ट देते है उन्हें योगान्तराय अथवा योगविघ्न कहा है। 'योगस्य अन्तः मध्ये आयान्ति ते अन्तरायाः'। ये योग के मध्य में आते है।, इसलिये इन्हें योगान्तराय कहा जाता है। विघ्नों से व्यथित होकर योगसाधक साधना को बीच में ही छोडकर चल देते है। या तो विघ्न आयें ही नहीं अथवा यदि आ जायें तो उनको सहने की शक्ति चित्त में आ जाये, ऐसी कृपा ईश्वर ही कर सकता है। यह तो सम्भव नहीं कि विघ्न न आयें। 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' शुभकार्यो में विघ्न आया ही करते है। उनसे टकराने का साहस योगसाधक में होना चाहिए।

3.3.2 योगसूत्र के अनुसार– चित्त के विक्षेपक नौ अन्तराय हैं– व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व। उक्त नौ अन्तराय ही चित्त को विक्षिप्त करते है। अतः ये योगविरोधी है। चित्तवृत्तियों के साथ इनका विरोधाभाष है अर्थात् इन विक्षेपों के होने पर प्रमाणादि वृत्तियॉ होती है। वृत्तियों के अभाव में चित्त स्थिर हो जाता है। इस प्रकार चित्तविक्षेप के प्रति ये उक्त नौ अन्तराय ही कारण है।

1 **व्याधि–** 'धातुरसकरणवैषम्यं व्याधिः' धातुवैषम्य, रसवैषम्य तथा करणवैषम्य को व्याधि कहते है। वात, पित्त और कफ ये तीन धातुएं है। इनमें से यदि एक भी कुपित होकर न्यून या अधिक हो जाये तो यह धातुवैषम्य अर्थात धातु की विषमता कहलाता है। जब तक देह में वात, पित्त और कफ समान मात्रा में हैं तो तब इन्हें धातु कहा जाता है। जब इनमें विषमता आ जाती है तब इन्हें दोष कहा जाता है। धातुओं की समता में शरीर स्वस्थ रहता है। विषमता में रूग्ण हो जाता है। आहार का अच्छी तरह पाचन न होना रसवैषम्य कहलाता है। यही शरीर में व्याधि बनाता है। ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों की शक्ति का मन्द हो जाना करणवैषम्य है। योगसाधना के लिए सशक्त और दृढ इन्द्रियों की आवश्यकता होती है। धातु, रस तथा करण इन तीनों के वैषम्य को व्याधि कहते हैं। रोगी शरीर से समाधि का अभ्यास सम्भव नहीं। अतः व्याधि समाधि के लिए अन्तराय है। खॉशी,श्वास आदि दैहिक रोगों को व्याधि कहते हैं तथा मानसिक रोग को आधि कहते है जैसे– स्मरण शक्ति का अभाव, उन्माद, अरुचि, घृणा, काम, क्रोध आदि। आधि शब्द के 'वि' उपसर्ग के योग से व्याधि शब्द बनता है– 'विशेषेण अधीयते अनुभूयते मनसा इति व्याधिः। चूँकि शारीरिक रोग मन को आधि की तुलना में अधिक कष्टकारक अनुभूत होता है, इसलिए शारीरिक रोग का व्याधि नाम सार्थक सिद्ध होता है।

2 **स्त्यान–** 'स्त्यानं अकर्मण्यता चित्तस्य' अर्थात् चित्त की अकर्मण्यता को स्त्यान कहते हैं। समाधि का अभ्यास करने की इच्छा तो चित्त में होती है किन्तु वैसा सामर्थ्य उसमें नहीं होता। केवल इच्छा से योग सिद्ध नहीं होता, अपितु उसमें योगाभ्यास की शक्ति होनी

चाहिए। पुत्रों की आसक्ति, विषयभोग की लालसाएं तथा जीविकोपार्जन के व्यापार चित्त को उलझाये रखते हैं इसलिए चित्त अकर्मण्यता अनुभव करता है। अकर्मण्यता समाधि में अन्तराय है।

3 **संशय–** 'उभयकोटिस्पृग् विज्ञानं संशयः' अर्थात् यह भी हो सकता है और वह भी हो सकता है। इस प्रकार के ज्ञान को संशय कहते हैं। योग साधना के विषय में जब साधक को कभी–कभी संशय होता है कि मैं योग का अभ्यास कर सकूंगा या नहीं? क्या मुझे सफलता मिलेगी? क्या समाधि से कैवल्य प्राप्त हो सकेगा? हो सकता है मेरा परिश्रम व्यर्थ चला जाये? तब यह संशयात्मक ज्ञान योग का विघ्न बन जाता है।

4 **प्रमाद–** 'समाधिसाधनानामभावनम्' – समाधि के साधनों में उत्साह पूर्वक प्रवृत्ति न होना प्रमाद कहलाता है। समाधि का अभ्यास प्रारम्भ कर देने पर उसमें वैसा ही उत्साह और दृढता निरन्तर बनी रहनी चाहिए जैसाा उत्साह प्रारम्भ में था। प्रायः युवावस्था का जोश, धन और प्रभुत्व का अभिमान तथा शारीरिक सामर्थ्य का पद साधक के उत्साह को शिथिल कर देता है। अतः प्रमाद समाधि में अन्तराय है।

5 **आलस्य–** 'आलस्यं कायस्य चित्तस्य च गुरुत्वादप्रवृत्तिः' काम की अधिकता से शरीर तथा तमोगुण की अधिकता से चित्त भारीपन का अनुभव करता है। शरीर और चित्त के भारी होने से समाधि के साधनों में प्रवृत्ति नहीं होती, इसी का नाम आलस्य है। प्रमाद और आलस्य में बहुत अन्तर है। प्रमाद प्रायः अविवेक से उत्पन्न होता है। आलस्य में अविवेक तो नहीं होता किन्तु गरिष्ठ भोजन के सेवन से शरीर और चित्त भारी हो जाता है। यह भी योग साधना मार्ग में अन्तराय कहलाता है।

6 **अविरति–** 'चित्तस्य विषयसम्प्रयोगात्मा गर्धः अविरतिः'– शब्दादि विषयों के भोग से तृष्णा उत्पन्न होती है। तृष्णा वैराग्य का शत्रु है। समाधि के लिये वैराग्य प्रमुखतम साधन है। अतः वैराग्याभाव योग का अन्तराय है। कोमलकान्त वचन, उनके अंगो को मोहक स्पर्श, पुष्पादि की गन्ध तथा स्वादिष्ट भोज्य पेय आदि व्यंजनों का रस कभी–कभी तत्वज्ञान को बाधित करके साधक को संसार में आसक्त बना देता है। विषयों के प्रति यह आसक्ति ही अविरति हैं। यह अविरति योग का महान् विघ्न कहा गया है।

7 **भ्रान्तिदर्शन–** 'भ्रान्तिदर्शन विपर्ययज्ञानम्'– अर्थात् मिथ्याज्ञान को भ्रान्तिदर्शन कहते है। अन्य वस्तु में अन्य वस्तु का ज्ञान ही मिथ्या ज्ञान है। जब साधक योग के साधनों को असाधन और असाधनों को साधन समझने लगता है तो यह भ्रान्तिदर्शन योग का विघ्न बन जाता है।

8 **अलब्धभूमिकत्व–** 'अलब्धभूमिकत्वं समाधिभूमेरलाभ':– अर्थात् समाधि की किसी भी भूमि की प्राप्ति न होना भी योग में विघ्न है। समाधि की चार भूमियॉ है– सवितर्क, निर्वितक,

सविचार तथा निर्विचार। जब प्रथम भूमि की प्राप्ति हो जाती है तो योगी का उत्साह बढ़ जाता है। वह सोचता है कि जब प्रथम भूमि प्राप्त हो गयी है तो अन्य भूमियॉ भी अवश्य ही प्राप्त होगी। परन्तु किसी कारण से उनकी प्राप्ति न होना अलब्धभूमिकत्व कहा गया है। यह भी योग में अन्तराय है।

9 **अनवस्थित्व–** 'लब्धायां भूमौ चित्तस्याप्रतिष्ठा अनवस्थितत्वम्' यदि किसी प्रकार मधुमती आदि भूमियॉ, इनमें से किसी एक की प्राप्ति हो जाये किन्तु उसमें निरन्तर चित्त की स्थिति न हो तो यह अनवस्थितत्व कहलाता है।

इस प्रकार नौ चित्तविक्षेप योग के अन्तराय कहलाते है। इन्ही को चित्त का मल तथा योग प्रतिपक्ष भी कहा गया है। इन चित्तविक्षेपों के पॉच साथी भी है। जो इन अन्तरायों के होने पर स्वतः हो जाते है।

क. दुख– दुख के बारे में व्यास जी कहते है।

'येनाभिहताः प्राणिनस्तदुपघाताय प्रयतन्ते तद्दुःखम्' योगसूत्र व्यासभाष्य 1/31

जिसके साथ सम्बन्ध होने से पीड़ित हुए प्राणी उस प्रतिकूल वेदनीय हेय दुःख तीन प्रकार के है– आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। आध्यात्मिक दुख भी दो प्रकार के होते है शारीरिक और मानसिक। आधिभौमिक शब्द की रचना का विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि यह शब्द भूत शब्द से बना है। भूत शब्द का अर्थ है प्राणी अर्थात् प्राणियों के द्वारा दिये गए दुःखों को आधिभौतिक कहा जाता है। प्राणी योनिज, स्वेदज, अण्डज तथा उद्भिज से चार प्रकार के होते है। दुःखों के तृतीय प्रकार का नाम आधिदैविक है जिसका अर्थ है दैविक शक्तियों के द्वारा दिये गए दुःख। दैविक शक्तियों के रूप में अग्नि, जल और वायु की गणना की जाती है। ये तीनों प्रत्येक के लिए अति आवश्यक है परन्तु आवश्यकता से अधिक या कम होने पर ये दुःखों के उत्पादक होते है। जैसे–अग्नि यदि हमारे उदर अथवा रसोई घर में पर्याप्त मात्रा में रहे तो सुखद परन्तु यदि कम या अधिक हो तो असहनीय होकर दुःखो का कारण बन कर नाशवान् हो जाती है। इसी प्रकार से वायु और जल को समझना चाहिए।

ख.दौर्मनस्य– अभिलाषित पदार्थ विषयक इच्छा की पूर्ति न होने से चित्त में जो क्षोभ होता है। उसे दौर्मनस्य कहा जाता है जब प्रयास करने पर भी इच्छा की पूर्ति नहीं होती तो चित्त व्याकुल होता है। यह दौर्मनस्य भी दुःख का साथी है। कहा गया है–

इच्छाव्याघातात् चेतसः क्षोभः दौर्मनस्यम्। योगसूत्र व्यासभाष्य 1/31

ग.अंगमेजयत्व– जो शरीर के हाथ, पैर, सिर आदि अंगो की कम्पित अवस्था है, वह अंगमेजयत्व कहलाती है–

यत् अंगानि एजयति कम्पयति तद् अंगमेजयत्वम्'

व्याधि आदि अन्तराय शरीर को दुर्बल बना देती हैं जिससे अंगो में कम्पन होने लगता है। यह अंगमेजयत्व आसन, प्राणायाम आदि में व्यवधान उपस्थित करता है। अतः विक्षेप का साथी होने से समाधि का प्रतिपक्षी है।

ध. श्वास– जो बाह्म वायु का नासिकाग्र के द्वारा आचमन करता है, वह श्वास कहलाता है अर्थात् भीतर की ओर जाने वाला प्राणवायु श्वास है। यह प्राणक्रिया यदि निरन्तर चलती रहे, कुछ समय के लिए भी न रूके तो चित्त समाहित नहीं रह सकता। अतः यह श्वास रेचक प्राणायाम का विरोधी है। अतः यह समाधि का अन्तराय है–

प्राणो यद् बाह्मं वायुमाचमति स श्वासः।

ङ.प्रश्वास– जो प्राण भीतर की वायु को बाहर निकालता है, वह प्रश्वास कहलाता है। यह श्वास क्रिया भी निरन्तर चलती रहती है। यह भी समाधि के अंगभूत पूरक प्राणायाम का विरोधी होने से समाधि का विरोधी है। अतः विक्षेप का साथी होने के कारण योगान्तराय कहा जाता है।

3.4 योग साधना में साधक तत्व–

3.4.1 हठप्रदीपिका के अनुसार

उत्साहात् साहसाद् धैर्यात् तत्वज्ञानाच्च निश्चयात्।

जनसंगपरित्यागात् षडभिर्योगः प्रसिद्वयतिः।। ह0 प्र0 1/16

अर्थात उत्साह, साहस, धैर्य, यथार्थज्ञान, संकल्प तथा लोकसंग का परित्याग इन छः तत्वों से योग की सिद्वि होती है, अतः ये योग के साधक तत्व है।

उत्साह– योग साधना में प्रवृत्त होने के लिए उत्साह रूपी मनोस्थिति का होना आवश्यक है। उत्साह भरे मन से कार्य प्रारम्भ करने से शरीर, मन व इन्द्रियों में प्राण संचार होकर सभी अंग साधना में कार्यरत होने को प्रेरित हो जाते है। अतः उत्साहरूपी मनोस्थिति की कुजी है।

साहस– योगसाधना मार्ग मे साहस का भी गुण होना चाहिए। साहसी साधक योग की कठिन क्रियांए जैसे– वस्त्रधौति, खेचरी आदि की साधना कर सकता है। पहले से ही भयभीत साधक क्रियाओ के मार्ग की ओर नही बढ़ सकता।

धैर्य– योगसाधक में धीरता का गुण होना अत्यावश्यक हैं। यदि साधक रातो–रात साधना में सफलता चाहता है तो ऐसा अधीर साधक बाधाओं से घिरकर पथभ्रष्ट हो जाता है। साधक को गुरूपदेश से संसार की बाधाओं या आन्तरिक स्तर की विपदाओ का धैर्य पूर्वक निराकरण करना चाहिए।

तत्वज्ञान– योगमार्ग पर चलने से पहले आवश्यक है कि साधक साधना मार्ग का उचित ज्ञान शास्त्रों व गुरूपदेशों द्वारा ग्रहण करे। भली–भाति ज्ञान न होने पर साधना मे समय नष्ट होगा व नाना प्रकार की बाधाएं उत्पन्न होकर मन भी विचलित होगा।

दृढ़–निश्चय– किसी सांसरिक कार्य को प्रारम्भ करने से पहले दृढ़–निश्चय की भावना आवश्यक है। जहा निश्चय में ढील हुई वहीं मार्ग बाधित हो जायेगा। अतः योगसाधना मार्ग में प्रवृत्त होने से पहले दृढ़–निश्चय की भावना अत्यन्त आवश्यक है।

जनसंग परित्याग– सामाजिक व धार्मिक स्तर पर उत्पन्न बाधाओ से बचाव हेतू अधिक जनसम्पर्क त्यागना चाहिए। अधिक जनसम्पर्क से शारीरिक व मानसिक ऊर्जा का ह्रास होता है। योग–साधना हेतु अधिक जनसम्पर्क त्याज्य है।

हठप्रदीपिका में ही अन्यत्र कहा गया है कि–

हठविद्या पर गोप्या योगिनां सिद्धिमिच्छताम्

योग में सिद्धि की इच्छा रखने वाले साधको को यह हठविद्या नितान्त गुप्त रखनी चाहिए। गुप्त रखने से यह शक्तिशालिनी होती है, तथा प्रकट करने पर यह शक्तिविहीन हो जाती है।

इसी प्रकार अन्यत्र कहा गया हैं कि–

ब्रहमचारी मिताहारी त्यागी योगपरायणः।

अब्दादूर्ध्व भवेत् सिद्धो नात्र कार्यविचारणा।।

जिसने ब्रहमचर्य का पालन किया हो, ऐसा साधक एक वर्ष या उससे कुछ अधिक समय में सिद्वि प्राप्त कर लेता है, इसमे कोई संदेह नहीं। निष्कर्ष यह है कि ब्रहमचर्य, मिताहार, त्याग व योग के प्रति सत्कार भाव योग साधना में साधक तत्व है।

3.4.2 योगसूत्र के अनुसार–

मैत्री, करूणा, मुदिता और उपेक्षा– इन चार प्रकार की भावनाओं से भी चित्त शुद्व होता है। और वृत्तिनिरोध मे समर्थ होता है–

'मैत्रीकरूणामुदितोपेक्षाणांसुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्'

यो.सू.1/33

सुसम्पन्न पुरुषों में मित्रता की भावना करनी चाहिए, दुखी जनों पर दया की भावना करें। पुण्यात्मा पुरुषों में प्रसन्नता की भावना करे तथा पाप कर्म करने के स्वभाव वाले पुरूषों में उदासीनता का भाव रखे। इन भावनाओं से चित्त शुद्व होता है। शुद्व चित्त शीघ्र ही एकाग्रता को प्राप्त होता है।

संसार में सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा और पापी आदि सभी प्रकार के व्यक्ति होते है। ऐसे व्यक्तियों के प्रति साधारणजन का अपने विचारों के अनुसार राग, द्वेष आदि उत्पन्न होना स्वाभाविक है। किसी व्यक्ति को सुखी देखकर दूसरे अनुकूल व्यक्ति को उसमें राग उत्पन्न हो जाता है, प्रतिकूल व्यक्ति को द्वेष व ईर्ष्या आदि। किसी पुण्यात्मा के प्रतिष्ठित जीवन को देखकर अन्य जन के चित्त में ईर्ष्या आदि का भाव उत्पन्न हो जाता है। उसकी प्रतिष्ठा व आदर को देखकर दूसरे अनेक जन मन में जलते है, हमारा इतना आदर क्यों नही होता ? यह ईर्ष्या का भाव है। इसमें प्रेरित होकर ऐसे व्यक्ति पुण्यात्मा में अनेक मिथ्यादोषों का उद्भावन कर उसे कलंकित करने का प्रयास करते देखे जाते है। इस प्रकार परनिन्दा की भावना गलत है। दुःखी को देखकर प्रायः साधारण जन उससे घृणा करते है, ऐसी भावना व्यक्ति के चित्त को व्यथित एवं मलिन बनाये रखती है। यह समाज की साधारण व्यावहारिक स्थिति है।

योगमार्ग पर चलने वाले साधक ऐसी परिस्थिति से अपने आपको सदा बचाये रखने का प्रयास करें। साधक के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसका चित्त ईर्ष्या तथा असूया आदि मलों से सर्वथा रहित हो, यह स्थिति योग में प्रवृत्ति के लिये अनुकुल होती है। निर्मल–चित्त साधक ही योग में सफलता प्राप्त करने का अधिकारी होता है। सुखी जनों को देखकर साधक उनके प्रति मित्रता की भावना बनाये। मित्र के प्रति कभी ईर्ष्या का भाव उत्पन्न नहीं होता। दुःखी जनों के प्रति सदा करूणा–दया का भाव, उनका दुःख किस प्रकार दूर किया जा सकता है इसके लिए उन्हें सन्मार्ग दिखाने का प्रयास करे। इससे साधक के चित्त में उनके प्रति कभी धृणा का भाव उत्पन्न नही होने पायेगा। इससे दोनों के चित्त में शान्ति और सांत्वना बनी रहेगी। इसी प्रकार पुण्यात्मा के प्रति साधक हर्ष का अनुभव करे। योग स्वयं परम पुण्य का मार्ग है। जब दोनों एक ही पथ के पथिक है तो हर्ष का होना स्वाभाविक है। संसार में सन्मार्ग और सदविचार के साथी सदा मिलते रहें, तो इससे अधिक हर्ष का और क्या विषय होगा। पापात्मा के प्रति साधक का उपेक्षाभाव सर्वथा उपयुक्त है। ऐस व्यक्तियों को सन्मार्ग पर लाने के प्रयास प्रायः विपरीत फल ला देते है।

पापी पुरुष अपने हितेषियों को भी उनकी वास्तविकता को न समझते हुए हानि पहुँचाने और उनके कार्यो में बाधा डालने के लिये प्रयत्नशील बने रहते है। इसलिए ऐसे व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा अर्थात् उदासीनता का भाव श्रेयस्कर होता है। साधक इस प्रकार विभिन्न व्यक्तियों के प्रति अपनी उक्त भावना को जाग्रत रखकर चित्त को निर्मल स्वच्छ और प्रसन्न बनाये रखने में सफल रहता है, जो सम्प्रज्ञात योग की स्थिति को प्राप्त करने के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

वृत्ति निरोध के उपायों के अन्तर्गत महर्षि पतंजलि ने नौ उपायों को उल्लेख किया हैं। जिनमें प्रथम एवं मुख्य उपाय का वर्णन करते हुए पंतजलि कहते है–

'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः' योगसूत्र 1/12

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इन वृत्तियों का निरोध होता है। अभ्यास और वैराग्य पक्षी के दो पंखों की भांति है। जैसे पक्षी दोनों पंखों के द्वारा ही उड़ सकता है, एक पंख से उड़ पाना सम्भव नहीं है। वैसे ही अभ्यास और वैराग्य इन दोनों के एक साथ पालन करने से वृत्तियों का निरोध हो जाता है। कहा गया है–

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः। योगसूत्र 1/13

अर्थात् स्थिति में प्रयत्न का नाम अभ्यास कहलाता है। स्थिति का अर्थ है– वृत्तिहीन चित्त की एकाग्रता और यत्न का अर्थ है– उस एकाग्रता के लिये मानसिक उत्साह तथा दृढ़तापूर्वक यमादि योगांगो का अनुष्ठान।

वैराग्य दो प्रकार का है– पर और अपर। सभी प्रकार के विषयों में चित्त का तृष्णा रहित हो जाना वैराग्य कहलाता है–

दृष्टवदानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञावैराग्यम्। योगसूत्र 1/15

चन्दन, वनिता, अन्न आदि देखे गये लौकिक विषय है तथा वेदबोधित सुने हुए पारलौकिक स्वर्गादि के अमृतपान, अप्सरागमन आदि आनुश्रविक विषय है। इन दोनों से चित्त का तृष्णारहित हो जाना वैराग्य है। परवैराग्य के विषय में कहा गया है–

तत्परं पुरूषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्। योगसूत्र 1/16

प्रकृति और पुरुष विषयक भेद का ज्ञान उदित हो जाने सत्वगुण के कार्यरूप विवेक ज्ञान की तृष्णा का अभाव ही परवैराग्य है। अपरवैराग्य सम्प्रज्ञातसमाधि का हेतु है और परवैराग्य असम्प्रज्ञातसमाधि का हेतु है।

इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य उत्तम कोटि के योगसाधकों के लिये चित्तवृत्तिनिरोध का सर्वोत्कृष्ट उपाय है। उनमें भी जिस साधक के मन में जितना तीव्रसंवेग होगा, उतना ही वृत्तिनिरोध शीघ्र होगा–

तीव्रसंवेगानामासन्नः। योगसूत्र 1/21

द्वितीय उपाय के रूप में ईश्वरप्रणिधान को माना है। यह एक प्रकार की भक्ति है। पतंजलि ने यह साधन उत्तमकोटि के साधकों के लिए बताया है। इस स्थिति के साधकों के लिए एक अन्य सुगम उपाय बताते हुए पंतजलि कहते है– **'ईश्वरप्रणिधानाद्वा'** अर्थात् ईश्वर प्रणिधान के पालन से भी वृत्तियों का निरोध हो जाता है। एक स्थान पर पतंजलि कहते है–

'समाधिसिद्विरीश्वरप्रणिधानात्' योगसूत्र 2/45

अर्थात् ईश्वर प्रणिधान के पालन से समाधि की स्थिति शीघ्र प्राप्त होती है और समाधि की स्थिति में ही वृत्तियों का निरोध सम्भव है।

तृतीय उपाय के रूप में ऐसे ही योगियों के लिए भावनाचतुष्टय (मैत्री, करूणा, मुद्रिता और उपेक्षा) का पालन भी वृत्ति निरोध में सहायक माना है। भावनाचतुष्टय का उल्लेख कर दिया गया है। चतुर्थ उपाय के रूप में प्राणायाम को महत्व देते हुए कहा है–

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य। योगसूत्र 1/35

अर्थात् उदरस्थ वायु को नासिकापुट से बाहर निकालना प्रच्छर्दन और भीतर ही रोके रखने को विधारण कहा है। इसी का नाम रेचक एवं कुम्भक प्राणायाम है। इस प्रकार के प्राणायाम से भी चित्त स्थिर होता है। और समाधि की प्राप्ति होती है।

पॉचवे उपाय के रूप में विषयवती प्रवृत्ति को माना जाता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश – ये पॉच महाभूत है। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द ये पॉच इनके विषय है। दिव्य और अदिव्य भेद से ये विषय दस प्रकार के हो जाते है। इनसे पॉच दिव्य विषयों का योगशास्त्र प्रतिपादित उपाय द्वारा योगियों को साक्षात्कार होता है।

छठे उपाय के अन्तर्गत ज्योतिष्मती प्रवृत्ति को ग्रहण किया जाता है। कहा गया है–

विशोका वा ज्योतिष्मती। योगसूत्र 1/36

चित्तविषयक साक्षात्कार तथा अहंकारविषयक साक्षात्कार विशोका ज्योतिष्मती कहे जाते है। हृदय कमल में संयम करने पर जो चित्त का साक्षात्कार होता है वह चित्तविषयक ज्योतिष्मती प्रवृत्ति कहलाती है। उस प्रवृत्ति के द्वारा भी चित्त प्रसन्न होता है।

वृत्तिविषयक के एक अन्य उपाय के रूप में मध्यम कोटि के साधकों के लिए पंतजलि क्रियायोग का वर्णन करते है। अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान के पालन

से वृत्तियों का निरोध होता है। सबसे सुगम व सरल उपाय के रूप में पतंजलि यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इस अष्टांगिक मार्ग का उपदेश करते है। अर्थात् अष्टांग योग की पूर्णता होने पर वृत्तियों का निरोध हो जाता है।

सांतवा उपाय वीतरागविषयक चित्त है। पूर्वोक्त गन्ध आदि विषयों में संयम करने से चित्त स्थिरता को प्राप्त करता है। वैसे ही सनकादि, दत्ताश्रेय, व्यास, शुक्रदेव आदि वीतराग योंगियो के चित्त को आलम्बन करने से भी चित्त शीघ्र ही स्थिरता को प्राप्त करता है।

आठवें उपाय के रूप में स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बन है। निद्रा सुख में ध्यान लगाने से भी चित्त का शीध्र ही स्थैर्य हो जाता है।

नवम उपाय यथाभिमत ध्यान कहा गया है। जिस साधक को जो स्वरूप अभीष्ट हो उसमें ध्यान करने से चित्त शीध्र स्थिरता को प्राप्त करता है। अनभिमत विषय में चित्त कठिनता से स्थिर होता है। इसलिए शिव, शक्ति, गणपति, विष्णु तथा सूर्य आदि देवताओं में से किसी एक में यदि विशेष रूचि हो तो उसी का ध्यान करने से उसमें स्थिर हुआ चित्त निर्गुण निराकार परमेश्वर में भी स्थिरता को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार चित्त प्रसादन के नौ उपायो का स्पष्ट उल्लेख महर्षि पतंजलि ने किया है।

अभ्यास प्रश्न

प्र0.1– **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

क. अत्याहार योग में............तत्व है।

ख. अभ्यास वैराग्याभ्याम् सूत्र...............में है।

ग. मैत्री तथा करुणा योग ....तत्व है।

प्र0.2– **सत्य/असत्य बताइये।**

क. अभ्यास तथा वैराग्य से चित्त वृत्तियों को निरुद्ध किया जा सकता है।

ख. मैत्री, करुणा योग साधना में बाधक तत्व हैं।

ग. संशय योग साधना का आधारभूत तत्व है।

घ. अत्याहार योग साधना में साधक तत्व है।

प्र.3– **बहुविकल्पीय प्रश्न।**

क. **हठविद्या परं गोप्या योगिना सिद्धियाम् श्लोक है**

क. भक्ति सूत्र **ख.** केशव संहिता

ग. हठप्रदीपिका **घ.** घेरण्ड सहिंता

ख. अत्याहार योग साधना में –

क. साधक तत्व **ख.** बाधक तत्व

ग. आधारभूत तत्व **घ.** श्रेष्ठ तत्व

ग. विशोका वा ज्योतिष्मति सूत्र है–

क. पतंजली योगदर्शन **ख.** नारद संहिता

ग. रामायण **घ.** महाभारत

घ. करुणा योग साधना में–

क. साधक तत्व **ख.** एकाग्र तत्व

ग. बाधक तत्व **घ.** प्रमुख तत्व

3.5 सारांश

विश्व को योग भारतीय संस्कृति की देन है जिससे समस्त संसार लाभान्वित हो रहा है। यद्यपि जिस स्वरूप में योग विद्या का पुरातन स्वरूप है वह आज विलुप्त सा हो चला है तथा चिकित्सा एवं आजीविका के दृष्टिकोण से यह अधिक लोकप्रिय जनसामान्य में हो गया है। भले ही योग विद्या किसी भी स्वरूप किसी भी स्वरूप में क्यों न अपनाई जाये तथापि भारतीय सभ्यता के लिए यह सम्मान एवं आदरणीय स्थिति है। भारत की इस शस्य श्यामला धरती पर अनेको योगियो का अवतरण हुआ है। इन योगियों ने योग साधना द्वारा अपने अभीष्ट की प्राप्ति की है। योग साधना में कुछ साधक तो कुछ बाधक तत्व होते है। प्रस्तुत इकाई में आपने योग में साधक एवं बाधक तत्वों की अध्ययन किया।

3.6 शब्दावली

मिताहारी	सीमित आहार लेने वाला
अत्याहारी	अधिक आहार लेने वाला
प्रजल्पता	अधिक बोलना
व्याधि	शारीरिक रोग

स्त्यान	साधनों की अर्कमण्यता
प्रमाद	लापरवाही
अविरति	भोग की लालसा
अलब्धभूमिकत्व	समाधि की भूमि प्राप्त न होना
अनवस्थितत्व	चित्त की अस्थिरता
दौर्मनस्य	चित्त का क्षोभ
अगंमेजयत्व	अगों का कांपना
मुदिता	आनंन्द
उपेक्षा	उदासीनता

3.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1. हठयोगप्रदीपिका– कैवल्यधान लोनावाला
2. घेरण्डसहिंता– विहार स्कूल ऑफ योग विहार
3. योगदर्शन– गीताप्रेस,गोरखपुर
4 श्रीमद्भगवद्गीता–गीताप्रेस,गोरखपुर

निबंधात्मक प्रश्न

1. साधक तत्व का अर्थ बताते हुए हठयोगप्रदीपिका के साधक तत्वों को समझाइये
2. बाधक तत्व क्या है? योगसूत्र के अनुसार विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. गीता के अनुसार योग साधना के साधक तत्वों का वर्णन कीजिए।
4. साधक एवं बाधक तत्वों की शास्त्रीय विवेचना कीजिए।

इकाई 4–वेद एवं उपनिषद

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 वेदों में योग विद्या

4.4 वेदों में योगांगों का स्वरूप

4.4.1 वेदों में यमों का स्वरुप 4.4.2 वेदों में नियमों का स्वरुप

4.4.3 वेदों में आसनों का स्वरुप 4.4.4 वेदों में प्राणायाम का स्वरुप

4.4.5 वेदों में प्रत्याहार का स्वरुप 4.4.6 वेदों में धारणा का स्वरुप

4.4.7 वेदों में ध्यान का स्वरुप 4.4.8 वेदों में समाधि का स्वरुप

4.5 उपनिषदों में योगांगों का स्वरूप

4.5.1 उपनिषदों में यम व नियम 4.5.2 उपनिषदों में प्राणायाम

4.5.3 उपनिषदों में प्रत्याहार 4.5.4 उपनिषदों में धारणा

4.5.5 उपनिषदों में ध्यान 4.5.6 उपनिषदों में समाधि

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

वेद ज्ञान व विज्ञान की एक अविचल एवं अविरल धारा है। 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है'। इसमें मानवीय जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान सन्निहित है, यह मान्यता सर्वविदित है। इसलिए परमपिता परमेश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही मानव मात्र के कल्याणार्थ चार तत्त्ववेत्ता ऋषियों (अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा) के हृदय में क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान प्रकाशित कर दिया था। यही वेद ज्ञान अनादि काल से गुरु–शिष्य के माध्यम से चला आ रहा है। वेद को मूल प्रमाण मानकर मनुष्य–जाति के लिए आचार–विचार एवं धर्म–कर्म की व्यवस्था की गई है। **'वेदोऽखिलोधर्ममूलम्'** अर्थात् सभी धर्मों का मूल वेद ही है। वेद चार हैं– ऋग्वेद में ज्ञान काण्ड, यजुर्वेद में कर्मकाण्ड, सामवेद में उपासना काण्ड और अथर्ववेद में विज्ञान काण्ड है। वेदों में मूल रूप से सभी विद्याओं का वर्णन मिलता है। इस प्रकार 'उपनिषद्' शब्द की परिभाषा देते हुए कह सकते हैं कि जो ज्ञान साधक के चित्त के दोषों को दूर करता हुआ उसके चित्त की गति को ब्रह्म की ओर करता है और ब्रह्म के पास स्थिर करता है अर्थात् ब्रह्म के सानिध्य में बैठाता है, वह उपनिषद् है। प्रस्तुत इकाई में आप वेदो तथा उपनिषदो में योग विद्या का अध्ययन करेगें।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप

- वेदों में यमों का स्वरुप का अध्ययन करेगें।
- वेदों में नियमों का स्वरुप का अध्ययन करेगें।
- वेदों में आसनों का स्वरुप का अध्ययन करेगें।
- वेदों में प्राणायाम का स्वरुप का अध्ययन करेगें।
- वेदों में प्रत्याहार का स्वरुप का अध्ययन करेगें।
- वेदों में धारणा का स्वरुप का अध्ययन करेगें।
- वेदों में ध्यान का स्वरुप का अध्ययन करेगें।
- वेदों में समाधि का स्वरुप का अध्ययन करेगें।
- उपनिषदों में योग विद्या के विविध पक्षों का विश्लेषण करेगें।

4.3 वेदों में योग विद्या

वैदिक संहिताओं में योग का विस्तृत वर्णन किया गया है। वेदों में मानवीय जीवन के सर्वांगीण विकास के साथ–साथ निःश्रेयस की प्राप्ति कराने वाली योग विद्या का उपदेश

पदे–पदे उपलब्ध है। योग–परम्परा की मान्यता है कि "हिरण्यगर्भः" ही योग के आदि प्रवक्ता हैं, अन्य कोई नहीं।

हिरण्य गर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः। या0 स्मृति

ऋग्वेद में इसकी पुष्टि करते हुए कहा गया है कि हे मनुष्यों! इस प्रसिद्ध सृष्टि के रचने से प्रथम परमेश्वर ही विद्यमान था, जीव गाढ़ निद्रा सुषुप्ति में लीन और जगत का कारण अत्यन्त सूक्ष्मावस्था में आकाश के समान एकरस स्थिर था। जिसने सब जगत को रच के धारण किया और जो अन्त्य–समय में प्रलय करता है। उसी परमात्मा को उपासना के योग्य मानो।

हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत। (ऋग्वेद 10/121/1)

इस प्रकार 'हिरण्यगर्भ' की स्मृति वेदों में अन्यत्र भी की गयी है। यह हिरण्यगर्भ परमपिता परमात्मा ही है, क्योंकि वही उत्पन्न हुए सब प्राणियों का स्वामी हो सकता है जिसको अन्य गन्थों में भी स्वीकार किया गया है। वह हिरण्यगर्भ परमात्मा गुरुओं का भी गुरु है, वही सबसे पुरातन और आदि प्रवक्ता है। महाभारत में सांख्य के प्रवक्ता महर्षि कपिल तथा योग के आदि प्रवक्ता हिरण्यगर्भ को बतलाया है।

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षि स उच्यते।

हिरण्य गभों योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।। महाभारत–12/349/65

योग रहस्य का वर्णन करते हुए आगे कहा है कि यह अद्वितीय हिरण्यगर्भ वही है जिसकी वेद में स्तुति की गई है एवं जिसकी योगी लोग नित्य पूजा किया करते हैं, जिसे समस्त संसार का विभु कहा गया है।

हिरण्यगर्भों द्युतिमान् य एष छन्दसि स्तुतः।

योगैः सम्पूज्यते नित्यं स च लोके विभुः स्मृतः।। महाभारत – 12/342/96

इस हिरण्यगर्भ भगवान को समष्टि बुद्धि कहा है। 'अद्भुत रामायण' (5/6) में तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वह हिरण्यगर्भ सम्पूर्ण जगत् का अंतरात्मा है।

'हिरण्यगर्भो जगदन्तरात्मा'

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि 'हे योगेश्वर! यह वही योग विद्या है जिसे भगवान् हिरण्यगर्भ ने कहा था।

इदं हि योगेश्वर योगनेपुणं हिरण्यगर्भो भगवान् जगाद यत्।

श्रीमद्भागवत– 5/19/13

अतः योग का आदि प्रवक्ता हिरण्यगर्भ परमात्मा को ही कहा जा सकता है।

4.4 वेदों में योगांगों का स्वरूप

वेदों के अध्ययन से यह तथ्य प्रकट होता है कि पातंजल योगदर्शन की भांति अष्टांग योग का संकलित रूप वेदों में प्रतिपादित नहीं किया गया है। परन्तु अथर्ववेद मन्त्र में प्रयुक्त 'अष्टायोगैः' पद का अर्थ भाष्यकार क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने पातंजल योग में वर्णित यम–नियम–आसन–प्राणायाम आदि आठ अंगों को ग्रहण किया है।

इमं यवमष्ययोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः।

तेना ते तन्वोइरपोऽपाचीनमपत्यये।। अथर्ववेद – 6/91/1

अन्यत्र संहिताओं में योग के अंगों के निश्चित संख्यावाची पदों का प्रयोग नहीं मिलता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि इस संयोग वियोग करने वाले परमेश्वर को आठ प्रकार के (यम–नियमादि) योगों से और छः प्रकार के ब्राह्मणों के कर्मों से उन महात्माओं ने परिश्रम से प्राप्त किया है। उसी से तेरे शरीर के पाप को विपरीत गति करके मैं हटाता हूँ।

परवर्तीकाल में महर्षि पतंजलि ने वेदों में निहित योगांगों को संकलित कर योगशास्त्र में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन आठ अंगों को सम्मिलित किया। योगतत्त्वोपनिषद् ने अष्ट योगांगो का ही परिगणन किया है, परन्तु ध्यानबिन्दूपनिषद् तथा अमृतनादोपनिषद् में यम–नियम को छोड़कर शेष छह अंगों को स्वीकार किया गया है।

4.4.1 वेदों में यमों का स्वरुप–

वेदों में यमों का उल्लेख किसी एक मन्त्र या सूक्त में एकत्रित नहीं मिलता है, वरन् प्रकरण के अनुसार यमों के स्वरूप का ज्ञान होता है। महर्षि पतंजलि ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांचों को यम कहा है।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। यो0सू0 2/30

अब यहाँ यमों की चर्चा वेदों में वर्णित पतंजलि प्रोक्त अष्टांगों का किया जा रहा है।

(क) अहिंसा

अहिंसा के सम्बन्ध में ऋग्वेद में कहा गया है कि जो अन्याय से किसी की हिंसा नहीं करते और धर्मात्माओं की वृद्धि करते हैं वे विद्वान् जन सर्वदा जीतते, धर्म में निवास करते और पुष्ट होते हैं। **"मा स्रेधन्तं सोमिनः।"** (ऋग्वेद – 7/32/9) इसी प्रकार ऋग्वेद में ही अन्यत्र कहा गया है कि जो अधर्माचरण से युक्त दुष्ट, हिंसक मनुष्य है उनको धन, राज्य, श्री और उत्तम पदार्थ प्राप्त नहीं होता है, इससे सबको न्याय के आचरण से ही धन खोजना चाहिए। **"न स्रेधन्तं रयिर्नशत्।"** (ऋग्वेद – 7/32/21) इस प्रकार जब साधक आसुरी वृत्तियों जैसे– काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या–द्वेष, अहंकार आदि विविध कष्टों से दुःखित

रहता है तब इनके वशीभूत होकर मनुष्य अन्य प्राणियों को कष्ट देने के लिए सन्नद्ध होता है तो उस वृत्ति का ही नाम हिंसा है। परन्तु जब साधक आसुरी वृत्तियों को प्रबल विरोधिनी सेनाओं के द्वारा दैवी वृत्तियों को जीत लेता है तो दैवी वृत्तियों के विशाल साम्राज्य में सात्त्विकता, शान्ति, श्रद्धा, प्रेम, उत्साह आदि आध्यात्मिक सुख की स्वतः स्थापना हो जाती है। इन्हीं दैवी वृत्तियों को अहिंसा कहते हैं।

यजुर्वेद कहता है – योगाभिलासी उपासक अहिंसा का पालन करें, अन्य राजपुरुष आदि उनकी रक्षा करते हुए अहिंसा वृत्ति का आचरण करें।

मा हिंसीः पुरुषं जगत्। यजु0 16/3

वेदों में मन, वाणी एवं शरीर तीनों से ही अहिंसा–पालन के निर्देश मिलते हैं। अथर्ववेद में कहा है कि जो व्यक्ति कठोर भाषण के द्वारा दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं या वाणी द्वारा द्रोह प्रकट करते हैं, वेद में उन्हें 'द्रोघवाचः' कहा गया है। इसे हम वाचिक हिंसा कह सकते हैं।

अहिंसा का फल के बारे में सामवेदीय ऋचा में कहा गया है कि 'अहिंसनीय योगयज्ञ के द्वारा भक्ति रस का पान करता हुआ साधक, विश्व–बन्धुत्त्व की भावना को प्राप्त कर लेता है। उसे संसार में किसी से भय नहीं रहता। साधक वेद के शब्दों में प्रार्थना करता है कि हमें अन्तरिक्ष से, द्युलोक से, पृथिवी लोक से, आगे–पीछे से, ऊपर–नीचे से अभय प्राप्त हो।

अभयं न करत्यन्तरिक्षमभयम्। अथर्ववेद 19/15/5

अहिंसा सिद्ध साधक के लिए लोक–परलोक दोनों ही कल्याणकारी होते हैं।

(ख) सत्य

वैदिक वाङ्मय में सत्य का क्षेत्र अतिगहन एवं व्यापक है। अहिंसा के सदृश सत्य का पालन भी मन, वचन तथा कर्म से करनीय है। वेद में सत्य के लिए 'ऋत' शब्द का प्रयोग बहुत बार किया गया है। सत्य व्रत का अनुष्ठान करने के लिए साधक प्रतिज्ञा करता है कि 'हे सत्य भाषण आदि धर्मों के पालन करने और सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर! मैं जो झूठ से अलग वेद विद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित तत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश करने वाले सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया, सत्य बोलना, सत्य मानना तथा सत्य व्यवहार करना है उसका अनुष्ठान करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूँ। मेरे उस सत्य व्रत को आप अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिए जिससे कि मैं उक्त सत्य व्रत के नियम करने को समर्थ होऊँ और इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम करूँगा।

सत्य के साथ प्रिय तथा मधुर वाणी का प्रयोग भी वेद में निहित है। उपासक वाणी से मधु व्यवहार के लिए कामना करता है कि 'मेरी वाणी के अग्रभाग पर, जिह्वा मूल में तथा

मन–बुद्धि में मधुरता विराजमान हो। मेरा घर से बाहर जाने तथा आने की क्रिया के साथ–साथ वाणी से सदैव मधुर, प्रिय ही बोलूँ, मेरे जीवन में मधुरता का साम्राज्य हो।

जिह्वया अग्रे मधुमे जिह्वा मूले मधूलकम्। अथर्ववेद 1/34/2

जो साधक सत्य व्रत का अनुष्ठान मन, वचन और कर्म से कर लेता है, वह ब्रह्मवेत्ता के समान शान्ति प्राप्त करता है, उसके काम–क्रोध आदि दोष नष्ट हो जाते हैं।

(ग) अस्तेय

वेदमन्त्रों में 'अस्तेय' शब्द के स्थान पर स्तेन, दस्यु, वंचक आदि चौरकर्म वाचक शब्दों का प्रयोग बार–बार किया गया है। वेदों में चौरकर्म की निन्दा की गई है। इस कर्म को नीच कर्म बताते हुए अपराधी को कारागार मे डालने तथा शारीरिक दण्ड देने का आदेश किया गया है। वेदों में चौर–कर्म को घृणित बताकर उससे बचने के लिए जन साधारण को उपदेश दिये हैं। ऋषि ने मनुष्य के लिए पालनीय सात मर्यादाओं (स्तेय, परस्त्रीगमन, विद्वानों की हत्या, गर्भ–हत्या, सुरापान, दुष्कर्म का पुनः–पुनः सेवन तथा पाप कर्म करके झूठ बोलना) का उपदेश किया है। जो इन मार्यादाओं का पालन नहीं करता वह जीवन में सब प्रकार से पतित हो जाता है।

(घ) ब्रह्मचर्य

वेदों में ब्रह्मचर्य का विस्तार रूप से वर्णन मिलता है। ब्रह्मचर्य शब्द का व्यापक अर्थ है। भ्वादिगण की 'बृहि वृद्धौ' धातु से निष्पन्न 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ है– जो बढ़ा हुआ है वह ब्रह्म, ईश्वर, वेद, तप आदि। 'चर' धातु जिससे 'चर्य' शब्द बना है जो गति एवं भक्षण अर्थवाली है। अतः 'ब्रह्मचर्य' शब्द का अर्थ हुआ – परमात्मा तथा वेद में विचरण करना और वीर्य का भक्षण अर्थात् उसे अपने अन्दर धारण करना।

ऋग्वेदीय मन्त्रों में आयु के प्रथम 24 वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करने के लिए साधकों को निर्देश किया है कि वह नित्य प्रति अग्नि विद्या (अग्निहोत्र) को प्रदीप्त करे।

आदंगिराः प्रथमं दधिरे वयं इद्धाग्नयः शम्या ये शुकृत्यया। ऋग्वेद – 1/83/4

इसी वेद में अन्यत्र कहा गया है कि जो विद्वान् नित्यप्रति निष्पक्षता से आत्मनिरीक्षण करके, दोषों का परिहार कर सद्गुणकर्मों को धारण करते हैं वही वीर्य की पूर्ण रक्षा करने में समर्थ हो सकते हैं।"

सम्पश्यमाना अदन्नमि स्वयं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुधानाः। ऋग्वेद – 3/31/10

ब्रह्मचर्य व्रत पालन के लाभ का वर्णन करते हुए यजुर्वेद में कहा गया है कि "जो आयु के प्रथम चरण में ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वे ही बल–पराक्रम को प्राप्त करते हैं तथा विद्या–प्राप्ति में समर्थ होते हैं। ब्रह्मचर्य पालन से साधारण मनुष्य हो या विद्वान् सभी दीर्घायु को प्राप्त कर लेते हैं।

यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्य स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः।

यजु0 34/51

ब्रह्मचर्य सेवन से परमात्म उपासना में तत्पर साधक के चेहरे पर ओज, कान्ति = ब्रह्मतेज प्राप्त होता है। अथर्ववेदीय मन्त्रानुसार– "योगी ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन और इन्द्रिय–दमन रूप तप से मृत्यु के कारणों को दूर कर देते हैं। परमात्मा ब्रह्मचर्यव्रती–विद्वानों को ही मुक्ति रूपी परमसुख प्रदान करता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाध्नत।

इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्।। अथर्ववेद – 11/5/19

इस प्रकार बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य का पालन स्त्री–पुरुष सभी के लिए उपयोगी है।

(ड.) अपरिग्रह

वैदिक संहिताओं में अपरिग्रह का विशद रूप में वर्णन मिलता है। यजुर्वेद के मन्त्रानुसार, हे मनुष्य! तू जो प्रकृति से लेकर पृथिवीपर्यन्त सब प्राप्त होने योग्य सृष्टि में चरप्राणीमात्र सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त सर्वशक्तिमान् परमात्मा से आच्छादन करने योग्य हैं उस त्याग किये हुए जगत् से पदार्थों के भोगने का अनुभव कर, किन्तु किसी के भी वस्तुमात्र की मत अभिलाषा कर। **"तेन त्यक्तेन भुंजिथा।"** (यजुर्वेद – 40/1) यहाँ पदार्थों का त्यागपूर्वक भोग अपरिग्रह को प्रदर्शित करता है।

अथर्ववेद में कहा गया है कि मनुष्य सैकड़ों हाथों से कर्मकुशल होकर धन धान्य एकत्र करे और हजारों हाथों से धन को उत्तम कर्मों में व्यय करके सदैव उन्नति करता रहे। **"शतहस्त समाहर सहस्त्र हस्त संकिर।"** (अथ0 3/24/5) अर्थात् यहाँ पर धन का दान करने का निर्देश है। जिसके पास विद्या है वह विद्या का दान करे और कहे कि हे सोम स्वरूप अखण्डनीय परमेश्वर! हम उत्तम बल–पराक्रम से युक्त विद्या–धन के देने वाले होवें।

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्य्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम। यजु0 7/14

इस प्रकार वेदों में दान की महिमा विशेष रूप से प्रदर्शित है। दान की महिमा को जानकर साधक कहता है कि 'हे इन्द्र! मेरे अन्दर कभी अदानशीलता का भाव न ठहरे, न हमारे बीच में कोई अदानी कृपण निवास करे। अदानियों को मैं समाप्त कर दूँ।'

4.4.2 वेदो में नियमों का स्वरूप–

(क) शौच

वेदों में शौच शब्द का अर्थ भिन्न–भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यथा– पूताः, पावन, पवित्र, पवमान, शुचिः, शुन्धामि आदि। साधना के क्षेत्र में पवित्रता की अधिक आवश्यकता है। सामवेद में साधकों को शुद्धि हेतु प्रेरित किया गया है और कहा गया है कि– 'हे

उपासको! तुम अपने–आपको पवित्र करो, जिससे तुम बल की प्राप्ति तथा प्रगति के लिए, प्रगति एवं बलों के दाता परम पिता परमेश्वर की सर्वभूत–मैत्री के लिए और अपने पापों का स्वयं निवारण करने के लिए शान्तिदायक, आनन्दस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त कर सको।'

पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय गीतये।

यथा मित्राय वरूणाय शान्तमम्। सामवेद – 1159

ऋग्वेद में शुद्धि का वर्णन करते हुए कहा गया है– 'हे योगयज्ञ के लिए तत्पर साधकों! आप लोग मृत्यु के साधारण पद को हटाते हुए, लम्बी आयु को धारण करते हुए, सन्तान और धन से शुद्ध और पवित्र होओ।

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।

आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः।।

ऋग्वेद 10/18/2

शुद्धि को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– एक बाह्य शुद्धि और आन्तरिक शुद्धि। शारीरादि की शुद्धि, बाह्य शुद्धि है तथा वाचनिक एवं मानसिक शुद्धि को आन्तरिक शुद्धि कह सकते हैं।

शारीरिक शुद्धि के बारे में यजुर्वेदीय मंत्र में कहा गया है कि 'हे मनुष्यो! शरीर के सब सुखों को प्राप्त करने, प्राणों को धारण कराने तथा माता के समान पालन के हेतु जल है उनसे सब प्रकार पवित्र होके इन को शोधकर मनुष्यों को नित्य सेवन करना चाहिए जिससे सुन्दर वर्ण, रोगरहित शरीर को सम्पादन कर निरन्तर प्रयत्न के साथ धर्म का अनुष्ठान कर पुरुषार्थ से आनन्द भोगना चाहिए।

आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु धृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ......। यजुर्वेद 4/2

यजुर्वेद के ही अन्य मन्त्र में उपदेश है कि 'गुरु और गुरुपत्नियों को चाहिये कि वेद और उपवेद तथा वेद के अंग और उपांगों की शिक्षा से देह इन्द्रिय, अन्तःकरण और मन की शुद्धि शरीर की पुष्टि तथा प्राण की संतुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे–अच्छे गुणों में प्रवृत्त करावें।

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोतं ते शुन्धामि .... चरित्राँस्ते शुन्धामि। **यजु0 6/14**

(ख) संतोष

वेदों में सन्तोष पद प्राप्त नहीं होता है परन्तु सन्तोषवाची तोशमानाः, तुषयन्ती, तोशतमाः आदि पद प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद के चालिसवाँ अध्याय का पहला मन्त्र इसी पद को उद्घोषित करता है और कहा गया है कि 'सन्तोष बुद्धि उत्पन्न करने के लिए

त्यागपूर्वक भोग करो, किसी पराये धन की लालसा मत करो' वेद का यह आदेश पालन के योग्य है।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्। यजु0 40/1

ऋग्वेद में कहा है कि हे मनुष्य! तू जुआ मत खेल, कृषि आदि परिश्रमसाध्य कर्मों को कर। इस प्रकार जो धन–अन्न मिलता है उसको बहुत मानता हुआ, इसी में सन्तोष कर और प्रसन्न रह।

अक्षैर्मा दिव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः। ऋग्वेद – 10/34/13

संतोष का फल के बारे मनुस्मृति में कहा है कि तृष्णा, लोभ और लालच का त्याग कर संतोष से प्रसन्नतापूर्वक जीवन–निर्वाह करना ही सुख है तथा इससे विपरीत आचरण करना दुःख है।

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।

सन्तोष मूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः।। मनु0 4/12

महर्षि पतंजलि ने संतोष का फल उत्तम सुख की प्राप्ति बतलाया है।

सन्तोषादनुत्तम सुखलाभः

(ग) तप

वैदिक संहिताओं में 'तप' का वर्णन विस्तृत रूप में किया गया है। ऋग्वेद में कहा है कि– 'हे तपस्वी! दुष्ट जनों के लिए अग्नि के सदृश दाहकर्त्ता आप,भेद को प्राप्त शत्रुओं के सन्तापयुक्त तथा अहिंसायुक्त श्रेष्ठजन की प्रशंसा कीजिए। हे दुष्ट पुरुषों के दाहकारी उत्तम गुणों में निवासी ज्ञानवान व बोधकारक आप दरिद्र दशायुक्त पुरुषों को सचेत कीजिए।

तपोष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररूषः परस्य। ऋग्0 – 3/18/2

अन्तःकरण तथा आत्मा को तप से तपाने की शिक्षा देते हुए ऋग्वेद में कहा गया है कि 'हे विद्वान् तपस्वी! देह का जो भाग अज अर्थात् नित्य आत्मा है, उसको ज्ञान और विवेक रूप तप से तपा। तेरा तेज उसे तपावे, तेरा कल्याणमय रूप उसे तपाकर, सुकृतवाले लोकों को प्राप्त कराये।

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः।

यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम्।। ऋग्वेद – 10/16/4

अथर्ववेद में कहा है कि– 'हे विद्वान् योगी! तुझे पूजायोग्य विवेक ज्ञान ने ऊँचा चढ़ाया है। शुद्धाचरण तथा अतिशय तप रूप ब्रह्मचर्यादि पालन से इस ज्ञान को सर्वत्र फैला।

उत्तम ऋषिजन भी इसी प्रकार मिलकर इस योग यज्ञ को ऋतुओं के साथ उपकार में लाए। इस प्रकार मानसिक तथा बौद्धिक तप के लिए संहिताओं में विशेष प्रेरणाएँ उपलब्ध है। गीता में मानसिक तप का वर्णन करते हुए कहा है कि मन और बुद्धि को शान्त–स्वच्छ–पवित्र रखना, प्रसन्न रहना, मौन रहना, अन्तःकरण को वश में रखना तथा भाव संशुद्धि करने को मानस तप कहते हैं।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।

भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।। गीता 17/16

सामवेदानुसार 'सब प्रकार के तपों से तृप्त तपस्वी ही परमात्मा को प्राप्त करने का सामर्थ्य रखता है एवं तप से आत्मा प्रसन्न होती है। परमात्मा तपस्वी एवं पुरुषार्थी जनों की रक्षा तथा प्रेरणा करता है।

कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः।

ध्नता वामश्मया क्षपमाणोशुनेत्थमु आद्वन्यथा।। सामवेद 305

इस प्रकार तप का महत्व वेदों में विविध स्वरूपों में वर्णित है। अतः उपासकों के लिए तप का अनुष्ठान अपरिहार्य है।

(घ) स्वाध्याय

व्यास ने मोक्षशास्त्रों का अध्ययन तथा प्रणव–जप को स्वाध्याय कहा है।

स्वाध्यायो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं प्रणवजपो वा। व्यास भाष्य – 2/32; 2/1

स्वाध्याय का प्रथम साधन दैवीय वाणी 'वेद' है। वेदवाणी को पढ़कर धीर पुरुष अपनी वाणी को बड़ी कठिनता से चलनी से छाने हुए सत्तुओं के समान पवित्र करते हैं और मन से पवित्र की गयी शुद्ध वाणी को बोलते हैं। मित्रभाव से शब्दार्थ सम्बन्ध को जानने वाले योगीजनों की वाणी में कल्याणमयी लक्ष्मी निहित होती है।

वेदों में 'ओ3म्' पद का पवित्र जाप करने का निर्देश दिया गया है और कहा है कि 'हे कर्मशील मानव! तू अन्य कर्म करते हुए भी परमात्मा के प्रमुख नाम 'ओ3म्' का स्मरण किया कर।

'ओ3म्' क्रतो स्मर। यजु0 40/15

स्वाध्याय के फल के बारे में सामवेद मंत्र में कहा है कि 'अहिंसामय उपासना–यज्ञ में वैदिक सूक्तों के उच्चारण करने पर प्रकाशस्वरूप जगन्नेता प्रत्यक्षवत् सम्मुख उपस्थित हो जाता है। स्वाध्याय से युक्त योगज ज्ञान से दूर–दूर के सूक्ष्म तथा व्यवहित पदार्थों का भी प्रत्यक्ष दर्शन होने लगता है। पतंजलि ने स्वाध्याय से इष्टदेव परमात्मा का दर्शन बतलाया है।

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः। योगसूत्र – 2/44

(ड.) ईश्वर–प्रणिधान

व्यास भाष्य में ईश्वर–प्रणिधान की परिभाषा इस प्रकार किया गया है– 'उस परमगुरु परमेश्वर में सब कर्मों को अर्पण करना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।'

ऋग्वेद मंत्रों में कहा है कि– 'तेजस्वी परमेश्वर प्रत्येक कार्य में शान्ति सुख देने वाला तथा सत्य नियमों का पालन करता है इसलिए प्रत्येक का पूज्य है। साधक के अन्दर जिस समय वह दैवीभाव जाग्रत करता है, उस समय उपासक प्रभु को जान पाता है और मन से उसका संगीतकरण करता है।'

यजूर्वेद के 16वें अध्याय में प्रकृति के विविध पदार्थों का सदुपयोग, यथायोग्य सत्कार तथा विनम्रता से नमस्कार करना और परमात्मा की अनेक शक्तियों का स्मरण कर उनका धारण तथा स्तुति आदि का परिशीलन किया गया है।

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि। यजु0 16/4

इस प्रकार नियमों का वैदिक स्वरूप संक्षेप में वर्णन किया गया है, अब आसन का निरूपण किया जाता है।

4.4.3 वेदो में आसनो का स्वरूप–

वैदिक संहिताओं में विभिन्न अवसरों पर बैठने का प्रकार वर्णित है, जैसे– अध्यापन के लिए 'निषीदत' तथा 'संसीदत्व' (ऋग्वेद – 2/41/13, यजु0 – 11/37) आदि पदों का प्रयोग हुआ है जो अच्छी प्रकार सुखपूर्वक बैठने का वाचक है तथा 'तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धिनः' मन्त्रांश मौनावलम्बन करके बैठे हुए, योगाभ्यास करने का परिचायक है। इन पदों के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि योगाभ्यासी को स्थिारता से किसी एक स्थिति में बैठना चाहिए।

ऋग्वेद में आसन सिद्ध होने पर साधक के मनःस्थिति को अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि– "आसन पर बैठे हुए मुझ पर ऋत–सत्य साक्षात्कार की कामनाएँ आरोहण करने लगी है, तब हृदय के प्रति उन कामनाओं को ऐसे कहता हूँ जैसे बालक को उसके अन्तरंग मित्र बुलाते हैं।

आ यन्मा वेना अरूहन्नृतस्यँ एकमासीन र्ध्यतस्य पृष्ठे।

मनश्चिम्में हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदछिंशुमन्तः सखायः।। ऋग्वेद – 8/100/5

4.4.4 वेदो में प्राणायाम का स्वरूप–

अष्टांग योग में 'प्राणायाम' का विशेष स्थान है। इसकी उपयोगिता वैदिक संहिताओं एवं अन्य आध्यात्मिक शास्त्रों में प्रतिपादित की गई है। प्राणों का सृष्टिगत निर्माण कार्य,

कार्य विभाजन तथा प्राणों को संयत करने के साधन प्राणमयकोश के प्रसंग में विस्तृत रूप से व्याख्यात है।

शारीरिक पुष्टि के अतिरिक्त शारीरिक रोग विनाश हेतु प्राणायाम की उपयोगिता अथर्ववेद के प्राण–सूक्त में निरूपित है। यहाँ मन्त्रों में प्राण को 'ओषधयः' तथा 'भेषजं' (अथर्ववेद 11/4/6) आदि कहा है। अथर्ववेदीय प्राणविद्या से ही सम्भवतः 'हठयोग' के अन्तर्गत विभिन्न प्रयोजनों को लक्ष्य बनाकर प्राणायाम के प्रकारों का आविष्कार किया गया।

सामवेद में कहा है कि– 'वेदो द्वारा श्रवण–मनन करने वाले तथा प्राणायाम के अभ्यासियों में और द्युलोक के नक्षत्र–समूह में वह परमात्मा विशेष रूप से चमकता है।

अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमाग्निमानवम्।

यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते।। सामवेद – 89

प्राण–संयमी योगी शरीर–रथ द्वारा भवसागर तैरने का ज्ञान प्राप्त करता है। प्राणायाम के अनवरत अभ्यास एवं 'ओ3म्' जप से परमात्म–प्रत्यक्ष करने में समर्थ होता है।

इस प्रकार वैदिक संहिताओं में प्राणायाम का लाभ आध्यात्मिक विकास के लिए विशेष रूप से वर्णित है।

4.4.5 वेदों में प्रत्याहार का स्वरुप–

इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर अन्तर्मुख करना ही 'प्रत्याहार' कहलाता है। योगशास्त्र के अनुसार– अपने–अपने विषय के साथ सम्बन्ध न होने के कारण इन्द्रियों की चित्तस्थिति के समान स्थिति का नाम प्रत्याहार है।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। योग सूत्र 2/54

प्रत्याहार का मुख्य लक्ष्य इन्द्रियों को वश में करना है। इन्द्रियाँ करण है जो आन्तरिक तथा बाह्य दो भागों में विभक्त है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, अन्तःकरण हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ बाह्यकरण हैं। बाह्यकरण यदि अश्व है तो मन लगाम है और बुद्धि सारथी है एवं शरीर रथ है।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेभशुभिर्वाजिन इव। यजुर्वेद– 34/6

यजुर्वेद के मन्त्र में यह रूपक बांधा गया है।

इन्द्रियों की सत्कर्म तथा सदाचार में प्रवृत्ति के लिए प्रार्थना की है कि 'हे यजनीय प्रभु! हम कानों से भद्र भावों को सुनें और आँखों से मंगलमय दृश्य को देखें।

भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।।

ऋग्0 – 1/89/8 तथा यजुर्वेद 25/21

इसी प्रकार हम सौ वर्ष तक देखते रहें, सुनते रहें, बोलते रहें, जीवित रहें एवं अदीन होकर रहें। हम सौ वर्ष से ऊपर की आयु प्राप्त कर प्रत्येक इन्द्रिय से सदाचार करनेवाले हों।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।

यजु0 – 36/24 तथा अथ0 19/67/1–2

योग साधना से सम्पन्न उपासक इस परमेश्वरीय दीप्ति द्वारा अपने को पवित्र करता हुआ, सब प्रकार की द्वेषभावनाओं से तर जाता है। तदन्तर यह उपासक सूर्य के समान अन्यों को भी प्रकाश देने लग जाता है। जब उपासक की पृष्ठवंश की सुषुम्णा में प्रकाशधारा चमकने लगती है तब वह अधिक पवित्र होकर रोष आदि दुर्गुनों से अलग होकर प्रत्याहार–साधना पर विजय पा लेता है। यही प्रत्याहार की सिद्धि का फल है।

4.4.6 वेदों में धारणा का स्वरुप–

यजुर्वेद में कहा है कि– 'ध्यान करने वाले विद्वान् लोग यथायोग्य विभाग से नाड़ियों में अपने आत्मा से परमेश्वर की धारणा करते हैं, जो योगयुक्त कर्मों में तत्पर रहते हुए ज्ञान एवं आनन्द को फैलाते हुए विद्वानों के मध्य प्रशंसा को पाकर परमानन्द के भागी होते हैं।

सीरा युंजन्ति कवयो युगो वितन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया।। यजुर्वेद – 12/67

यजुर्वेदीय अन्य मन्त्र में संकेत मिलता है कि उत्साह से, हृदय, प्राण, मन एवं बुद्धि सें, इन्द्रियों के द्वारा परमेश्वर का सम्यक् धारण किया जाता है अर्थात् परमात्मा की धारणा की जाती है। इस धारणा शक्ति को बढ़ाकर साधक प्राचीन ऋषियों के समान मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं।

गायत्री मन्त्र का अर्थ प्रकाशित करते हुए महर्षि दयानन्द ने 'धीमहि' पद का 'दधीमहि' अर्थ किया है जिसके आधार पर मन्त्र में वर्णित– 'सब जगत् के उत्पतिकर्त्ता, प्रकाशमय, शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर का जो अतिश्रेष्ठ दुःखमूलक पापों को भस्म करने वाला स्वरूप है, उसी का धारण करना अर्थात् आन्तरिक धारणा द्वारा परमात्मा के गुण–कर्म–स्वभावों का चिंतन अपेक्षित है।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। यजुर्वेद– 3/35

4.4.7 वेदों में ध्यान का स्वरुप–

धारणा किये गये स्थान पर प्रत्ययों की एकतानता या वृत्तियों के प्रवाह का एकरस हो जाना ही 'ध्यान' है। **"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।"** (योगसूत्र – 3/2) वेदों में ध्यान की कई पद्धतियाँ हैं। ऋग्वेदीय मन्त्र के अनुसार ध्यान की एक पद्धति बताई गयी है कि

'नदी–नद आदि जल जैसे समुन्द्र में ही समा जाते हैं वैसे ही परमेश्वर में ध्यान करने वाले अपनी इन्द्रियों को समेट कर परमात्मा के आनन्द में निमग्न हो जाते हैं।

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।

न त्वामिन्द्रातिरिच्यते।। ऋग्वेद – 8/92/22

वेद में निर्देश है कि नाड़ियों में ध्यान करके परमानन्द की वृद्धि करो। इस प्रकार साधना करने से अन्तःकरण शुद्ध होकर प्रज्ञाविवेक उत्पन्न होने लगता है। इस उपासना का फल क्लेशों का नाश, शान्ति की प्राप्ति तथा मोक्षानन्द से परितृप्ति है।

तेजोमय परमात्मा का ध्यान करने का भी निर्देश वेद में किया गया है। ध्यान के फल के बारे में कहा गया है कि 'ऊषा के समान ज्ञान प्रकाश करने वाले, उत्तम दिनोंवाले, निर्दोश, निरन्तर ध्यान करने वाले योगी विशाल प्रकाश को प्राप्त करते हैं।

4.4.8 वेदों में समाधि का स्वरुप–

समाधि की परिभाषा करते हुए पतंजलि कहते हैं कि 'अपने ध्यानात्मक रूप से रहित केवल ध्येय रूप से प्रतीत होने वाले ध्यान का नाम समाधि है।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः। योगसूत्र – 3/3

ऋग्वेद के मन्त्र में उपासक द्वारा समाधि अवस्था की अभिलाषा व्यक्त की है कि– 'हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! जब मैं तू हो जाऊँ और तू भी मैं हो जाए, तो मेरी आशीर्भावनाएँ = कल्याण भावनाएँ एवं शिक्षाएँ सत्य हो जाएँ।

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा धा स्या अहम्।

स्युष्टे सत्या इहाशिषः।। ऋग्वेद – 8/44/23

यजुर्वेद के मन्त्र में प्रेरणा दी गयी है कि हे योग के जिज्ञासु मनुष्यों! जैसे मैं सत्यभाषण युक्त योगी स्तुति, प्रार्थना, उपासना रूप सत्कार से पूर्व योगिजनों से प्रत्यक्ष किये हुए जिस सर्वव्यापक ब्रह्म को आत्मा में साक्षात् करता हूँ उनसे आप लोग भी इस योग विद्या का श्रवण करो'। इसी प्रकार दिव्य सुखों की प्राप्ति तथा मोक्षानन्द की उपलब्धि हेतु वेदों में समाधि–योग के लिए अनेक बार उद्बोधन दिए गये हैं।

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु

वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु।। यजुर्वेद – 11/7

अभ्यास प्रश्न

1– बहुविकल्पीय प्रश्न

क– वेदों की संख्या कितनी है।

(अ) 4 (ब) 5, (स) 18, (द) 108

ख– सबसे प्राचीन वेद माना जाता है।

(अ) सामवेद, (ब) यजुर्वेद, (स) ऋग्वेद, (द) अथर्ववेद

ग– कर्मकाण्ड का सम्बन्ध है ।

(अ) ऋग्वेद, (ब)यजुर्वेद, (स) सामवेद, (द) अथर्ववेद

घ– योग के आदिवक्ता माने जाते है।

(अ) हिरण्यगर्भ (ब) महर्षि पतंजलि (स) भगवान कृष्ण, (द) महर्षि घेरण्ड

ड.– इन्द्रियों का संयम कहलाता है ।

(अ) यम (ब) नियम (स) प्रत्याहार (द) दम

4.5 उपनिषदों में योगांगों का स्वरूप

उपनिषदों में योग का स्वरूप जानने से पूर्व 'उपनिषद्' शब्द पर विचार किया जाता है। उपनिषद् शब्द 'उप' और 'नि' उपसर्गपूर्वक 'सद्' धातु में 'क्विप्' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। यहाँ 'उप' शब्द का अर्थ समीप या निकट है और नि+सद् का अर्थ बैठना। इस प्रकार जिसमें गुरू और शिष्य समीप बैठकर आत्मज्ञान की चर्चा करते हैं, उस ज्ञान की चर्चा को उपनिषद् कहते हैं। इसे उपनिषद् इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि इनके ज्ञान से शिष्य ब्रह्म के समीप बैठने का अधिकारी हो जाता है।

इस प्रकार 'उपनिषद्' शब्द की परिभाषा देते हुए कह सकते हैं कि जो ज्ञान साधक के चित्त के दोषों को दूर करता हुआ उसके चित्त की गति को ब्रह्म की ओर करता है और ब्रह्म के पास स्थिर करता है अर्थात् ब्रह्म के सानिध्य में बैठाता है, वह उपनिषद् है।

उपनिषदों की संख्या वैसे तो दो सौ से अधिक है, किन्तु यहाँ पर सभी उपनिषदों को न लेकर ईशादि प्रधान एकादश उपनिषदों को लिया गया है, जो निम्नलिखित है– (1) ईश, (2) केन, (3) कठ, (4) प्रश्न, (5) मुण्डक, (6) माण्डूक्य, (7) ऐतरेय, (8) तैत्तिरीय, (9) छान्दोग्य, (10) बृहदारण्यक और (11) श्वेताश्वतर। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है–

(1) **ईशोपनिषद्–** इस उपनिषद् में सर्वव्यापक परमात्मा का स्मरण करते हुए लोगों को निष्काम कर्म करने का उपदेश दिया गया है।

(2) **केनोपनिषद्–** इसमें मन, प्राण, वाणी, चक्षु और श्रोत्र आदि के प्रेरक देव परमात्मा को जानने का प्रयास किया गया है।

(3) **कठोपनिषद्–**इस उपनिषद् में नचिकेता और यम के संवाद रूप में ईश्वर के स्वरूप का विशद् वर्णन किया गया है।

(4) **प्रश्नोपनिषद्–** इसमें विभिन्न ऋषियों (सुकेशा, सत्यकाम, सौर्यायणी, आश्वलायन, भार्गव और कबन्धी) के छः प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।

(5) **मुण्डकोपनिषद्–** इस उपनिषद् में ब्रह्मविद्या का उपदेश किया गया है। इसमें तीन मुण्डक है तथा प्रत्येक मुण्डक के दो–दो खण्ड हैं।

(6) **माण्डूक्योपनिषद्–**इस उपनिषद् में ओंकार की व्याख्या और उसके उपासना के फल का वर्णन किया गया है।

(7) **तैत्तिरीयोपनिषद्–**इसमें तीन वल्लियाँ है– शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली तथा भृगुवल्ली। शिक्षावल्ली में मन्त्रों के वर्ण, स्वर, मात्रा और बल की व्याख्या की गयी है, ब्रह्मानन्दवल्ली में हृदयगुहा प्रतिष्ठित परमेश्वर को जानने का फल बताया है तथा भृगुवल्ली में ब्रह्मा के विभिन्न स्वरूपों और उसकी उपासना का फल बताया गया है।

(8)**ऐतरेयोपनिषद्–**इस उपनिषद् में तीन अध्याय हैं। इसमें इन्द्रियों की उत्पत्ति और उनके निवास स्थान, मनुष्य के तीन जन्मों की तथा ईश्वर के उपास्य का प्रतिपादन किया गया है।

(9)**श्वेताश्वरोपनिषद–** इसमें ब्रह्मज्ञान का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसमें छह अध्याय हैं।

(10)**छान्दोग्योपनिषद्–** इस उपनिषद् में आठ–प्रपाठक हैं। इस आठो अध्यायों में ब्रह्मविद्या एवं उपासना का विस्तृत विवेचन किया गया है।

(11) **बृहदारण्यकोपनिषद्–**इन सभी उपनिषदों में, यह सबसे बृहत्काय उपनिषद् है। यह छः अध्यायों में निबद्ध है, जिसमें ब्रह्मविद्या के अनेक तत्त्वों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है।

4.5.1 उपनिषदों में यम व नियम –

उपनिषदों में यम–नियम की चर्चा महर्षि पतंजलि के योगदर्शन के समान ही की गई है। इनमें अन्तर इतना अवश्य है कि इनमें से किसी–किसी उपनिषद् में यम–नियमों की संख्या पतंजलि के समान पाँच–पाँच न मानकर दस–दस मानी गयी है।

योगदर्शन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं। इन्हीं यम–नियमों में संसार के समस्त कर्त्तव्य, सम्पूर्ण पवित्राचरण, समस्त धर्म एवं सम्पूर्ण आदर्श तथा उपदेश सन्निहित है। न्यायदर्शन का आर्षोपदेश, सांख्य योग का विवेकज्ञान, योग का तत्त्वज्ञान, मीमांसकों का निःश्रेयस का मार्ग, अद्वैत वेदान्त के साधनचतुष्टय ये सब इन्हीं पर आधारित हैं। बौद्ध दर्शन एवं जैन दर्शन ने इनको धर्मों का मूल माना है।

अन्य उपनिषदों जैसे– शाण्डिल्योपनिषद् 1.1, जाबालदर्शनोपनिषद् 1.6 तथा त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद् श्लोक 33 में समान रूप से अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धृती, मिताहार तथा शौच इनकी गणना यमों के अन्तर्गत की गयी है। इन तीनों उपनिषदों में नियमों के अन्तर्गत तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वर पूजन, सिद्धान्त श्रवण, ह्वी, मति, जप तथा व्रत इन दस की गणना की गयी है।

ईशादि प्रधान उपनिषदों में सत्य, ब्रह्मचर्य, तपस्या पर बहुत अधिक बल दिया गया है। इसके अतिरिक्त शौच, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान, प्रत्याहार आदि अन्य योगांगो के बीज भी इन उपनिषदों में पाये जाते हैं।

(क) अहिंसा

अहिंसा का पालन समस्त धर्मों एवं समस्त दर्शनों ने स्वीकार किया है। कायिक, वाचिक तथा मानसिक रूप से किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है।

व्यास जी के अनुसार सभी प्राणियों से सर्वदा तथा सर्वथा द्रोह भावना न रखना ही अहिंसा है।

'तत्रा हिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः'

योगसूत्र व्यास भाष्य – 2/29

ईशादि उपनिषदों में अहिंसा का पृथक् रूप में अधिक उल्लेख नहीं किया गया है यद्यपि छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि जो व्यक्ति तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्य–वचन में जीवन व्यतीत करता है उसका जीवन वास्तव में उपकारी का जीवन है।

'यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः।'

छान्दोग्योपनिषद् – 3/17/4

इसी प्रकार उपनिषद् में एक कथा प्राप्त होती है कि प्रजापति ने 'द' अक्षर के द्वारा ही देवों, मनुष्यों तथा असुरों को क्रमशः इन्द्रियदमन, दान तथा दया का उपदेश दिया। प्रजापति के उपदेश से असुर जो हिंसारत रहते थे, वे भी हिंसा को छोड़ दिये। यह कथा उपनिषदों की अहिंसा वृत्ति को ही द्योतित करता है।

(ख) सत्य–उपनिषदों में सत्य पर बल देते हुए कहा गया है कि सत्य से ही देवमार्ग बना है तथा आप्त काम ऋषि जिस मार्ग पर चलते हैं, जहाँ पहुँचते हैं, वह सत्य का ही परम–धाम है।

'सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः'। मुण्डकोपनिषद् – 3–1–6

इसी उपनिषद् में एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। ऋषियों की समस्त साधाना का आधार सत्य ही है।

तैत्तिरियोपनिषद् में समावर्तन संस्कार के समय वेद विद्या पढ़ चुके स्नातकों को आचार्य दीक्षान्त भाषण देते हुए कहते हैं कि किसी भी अवस्था में सत्य का आचरण नहीं छोड़ना अर्थात् सवर्दा सत्य बोलना एवं धर्माचरण करना। **'सत्यं वद। धर्मं चर'।** (तैत्तिरी0)

प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है कि जो व्यक्ति असत्य बोलता है, वह समूल सूख जाता है।

'समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति'। प्रश्नोपनिषद् – 6–1

(ग) ब्रह्मचर्य– उपनिषदों में ब्रह्मचर्य को उत्कृष्ट तप कहा गया है। अनेक स्थानों पर उपनिषदों में तप, सत्य, श्रद्धा, ब्रह्मचर्य चारों का उल्लेख एक साथ किया गया है। मुण्कोपनिषद् में ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इसकी उत्पत्ति विराट्–पुरुष से हुई है।

'तस्माच्च देवा बहुधा संप्रसूताः' .... ब्रह्मचर्य विधिश्च'।

मुण्डकोपनिषद – 2–1–7

प्रश्नोपनिषद् में तो पिप्पलाद ऋषि प्रश्न पूछने के लिए आए भारद्वाज आदि छः ऋषियों को एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य तथा तपस्या पूर्वक रहने की आज्ञा देते हैं। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

'तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति'। छान्दोग्योपनिषद् – 8–5–3

इसी प्रकार कठोपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्मप्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया जाता है।

'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्तिः'। कठोपनिषद – 1.1.15

(घ) अपरिग्रह– उपनिषदों में अपरिग्रह की चर्चा नहीं मिलती है परन्तु उपनिषदों की शिक्षा अवश्य ही अपरिग्रह वृत्ति को दृढ़ करती है। यथा– कठोपनिषद् में यमाचार्य नचिकेता के समक्ष संसार के सभी प्रकार के ऐश्वर्यों का प्रलोभन उपस्थित करते हैं। किन्तु नचिकेता यह कहकर इनका तिरस्कार कर देता है– **'तवैव वाहास्तव नृत्यगीते'**। यमाचार्य! मुझे इन विषयों में से कुछ नहीं चाहिए, ये सब मुवारक हो। इनके त्याग में नचिकेता जो हेतु प्रस्तुत करता है

वह योग भावना से ही अनुप्राणित है। वह कहता है कि ये सभी प्रकार के भोग अनित्य, इन्द्रियों के तेज को नष्ट करने वाला है। इससे तृप्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार विषयों में विविध दोषों को देखकर नचिकेता उसका त्याग कर देता है। यह अपरिग्रह वृत्ति का ही फल है।

'श्वोमावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः'।

अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते।। कठोपनिषद् – 1.1.26

(ङ.) शौच

उपनिषदों में भी आचरण की शुद्धि पर बल दिया गया है। कठोपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो व्यक्ति सदैव पवित्र विचारों का चिंतन करता है वह उच्च पद को प्राप्त कर लेता है।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुद्धिः।

स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते।। कठोपनिषद् – 3.8

मनुस्मृति में क्षमा, दान, तप, ज्ञान, सत्य, जप और विद्या इन सबको शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की शुद्धि करने वाला कहा गया है।

क्षान्त्या शुद्धयन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः।

प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः।। मनुस्मृति – 5.30

मनुस्मृति के अनुसार विद्वान् व्यक्ति क्षमा से, कुकर्मी दान से, गुप्त पाप वाले जप से तथा वेदवेत्ता तपस्या से शुद्ध होते हैं।

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुध्यति।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।। मनुस्मृति – 5.31

जल से केवल शरीर की शुद्धि होती है, मन सत्य से शुद्ध होता है, आत्मा विद्या से एवं बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

(छ) संतोष– 'संतोषः परमं सुखम्' अर्थात् संतोष से बड़ा इस संसार में कोई सुख नहीं है। ईशोपनिषद् में उपदेश दिया गया है कि मनुष्य को त्यागपूर्वक ही उपभोग करना चाहिए अथवा पूर्ण पुरुषार्थ के पश्चात् जो कुछ प्राप्त होता है, उतने में ही सन्तोषपूर्वक उपभोग करना चाहिए।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा, मा गृधः कस्यस्विद्धनम्। ईशोपनिषद् – 1.1

यह एक प्रकार से संतोषवृत्ति धारण करने का ही उपदेश है। यहाँ पर स्पष्ट रूप में लालच न करने की बात कही गयी है।

(ज) तप– तप का उपनिषदों में महत्वपूर्ण स्थान है। प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है कि अपने शरीर को साध लेना ही तप है। इसलिए पिप्पलाद् जिज्ञासुओं को तप, ब्रह्मचय और श्रद्धापूर्वक जीवन व्यतीत करने का आदेश देते हैं।

तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ। प्रश्नोपनिषद् – 1.2

तैत्तिरीयोपनिषद् में अनेक बार तप का उल्लेख किया गया है और कहा गया है कि तप के द्वारा ब्रह्म के यर्थाथ स्वरूप को जाना जा सकता है। **"तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व।"** (तैत्तिरीयोपनिषद् – 3.2)। केनोपनिषद् में तप, दम व कर्म ब्रह्म जिज्ञासु के लिए अनिवार्य बताया है।

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वांगानि सत्यमायतनम्। केनोपनिषद् – 4.8

शारीरिक नियंत्रण को तप कहते हैं। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि जो शान्त विद्वज्जन भिक्षाटण करते हुए जंगल में रहकर तप और श्रद्धा का अर्जन करते हैं, वे सब मलों से शुद्ध होकर सूर्य द्वार से अमृतलोक को प्राप्त करते है।

तपःश्रद्धे ये हयुपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः।

सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा।।

मुण्डकोपनिषद – 1–2–11

अतः मोक्ष के जिज्ञासु के लिए तप परम आवश्यक है।

(झ) स्वाध्याय– नियमों में चतुर्थ नियम स्वाध्याय का उल्लेख पंतजलि ने अष्टांग योग तथा क्रियायोग के प्रसंग में किया है। व्यास भाष्य में दोनों स्थानों पर स्वास्ध्याय का अर्थ मोक्ष विषियक शास्त्रों का अध्ययन तथा प्रणव जप किया है। उपनिषदों में स्वाध्याय का विस्तृत अध्ययन मिलता है। (तैत्तिरीयोपनिषद् – 1.10) में स्वाध्याय के साथ प्रवचन को जोड़कर इन दोनों को करना आवश्यक कर्त्तव्य बतलाया गया है। साथ ही योग दर्शन के समान ही प्रणव आदि के जप का विधान भी उपनिषदों में किया गया है।

(ञ) ईश्वर प्रणिधान– ईश्वर प्रणिधान का नाम उपनिषदों में नहीं मिलता है परन्तु ईश्वर प्रणिधान का स्वरूप ईशोपनिषद् में अवश्य प्राप्त होता है। इसमें परमेश्वर के प्रति सभी कर्मो के अर्पण की बात तो नहीं कही गयी है किन्तु यह अवश्य कहा गया है कि कर्म व्यक्ति को बांधने वाले न हो।

ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यसिवद्धनम्।। ईशोपनिषद् – 1–1

इसी व्याख्या में यही कहा गया है कि निष्काम कर्म बन्धन का कारण बनते हें। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि यह आत्मा (ब्रह्म) जिसको स्वीकार कर लेता है वही इसे प्राप्त कर सकता है, उसके सामने आत्मा अपने स्वरूप को खोलकर रख देता है।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।

मुण्डकोपनिषद् – 3–2–3

यह ईश्वर प्रणिधान ही है जिसका निर्देश पतंजलि ने अपने सूत्रों में किया है।

4.5.2 उपनिषदों में प्राणायाम–

पतंजलि ने प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहा है कि आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास–प्रश्वास की गति को रोक देना 'प्राणायाम' कहलाता है।

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।। यो0सू0 – 2/49

उपनिषदों में प्राणायाम का वर्णन बहुत कम किया गया है परन्तु जितना भी प्राणसम्बन्धी वर्णन उपलब्ध होता है उसमें प्राणों का महत्व भली–भाँति प्रतिपादित किया गया है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि सभी भूत प्राण से ही उत्पन्न होते हैं तथा प्राणों में ही समाहित हो जाते हैं।

सर्वाणि ह वा इमानि मूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति। छान्दो0 1.11.5

तैत्तिरीयोपनिषद् में भी इसी प्राण से सब भूतों की उत्पत्ति, स्थिति एवं अन्त में विलीन हो जाते हैं। इसमें प्राण को 'ब्रह्म' कहा गया है। "प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्।।" (तैत्तिरी0 3.3) प्रश्नोपनिषद् में प्राण की उत्पत्ति आत्मा से बतलाते हुए प्राण के अन्य भेद व्यान, उदान, समानादि का भी उल्लेख किया गया है। कठोपनिषद् में स्पष्ट रूप से प्राणायाम की क्रियाविधि बतायी गयी है। इसमें प्रथम प्राणायाम करते समय हृदय स्थान के प्राण वायु को उपर (ब्रह्माण्ड) ले जाकर स्थिर करता है तथा दूसरा प्राणायाम करते समय अपान वायु को नीचे की ओर धक्का दिया जाता है। नाभि तथा कण्ठ देश के मध्य हृदय स्थित जीवात्मा की समस्त इन्द्रियाँ उपासना करती है।

ऊर्ध्व प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।

मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते।। कठोप0 5.3

श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी संक्षेप में प्राणायाम की विधि बतलायी गयी है। मन को वश में करके प्राण को अन्दर लेकर रोकें, उसका पीडन करे। जब प्राण अन्दर न रुक सके, तब नासिका छिद्र से बाहर निकाल दे। इस प्राणायाम को मन के एकाग्र करने वाला बतलाया गया है।

4.5.3 उपनिषदों में प्रत्याहार–

पतंजलि के अनुसार इन्द्रियों का अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न होने पर चित्त के अनुसार होना 'प्रत्याहार' कहलाता है। भोजवृत्ति के अनुसार विषयों के प्रति अभिमुख न होने पर इन्द्रियों का सम्बन्ध केवल चित्त से ही रहता है इसलिए इन्द्रियाँ भी चित्त के स्वरूप का अनुकरण करती है।

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपाऽनुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।। यो0सू0 – 2/54

ईशादि प्रधान उपनिषदों में प्रत्याहार नाम की चर्चा नहीं मिलती है किन्तु शाण्डिल्योपनिषद् में प्रत्याहार का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रत्याहार के पाँच भेद बतलाये गये हैं। (1) विषयों में विचरने वाले इन्द्रियों को बलपूर्वक रोकना प्रत्याहार कहलाता है। (2) इन्द्रियों से जो–जो देखा जाए, उसे आत्मा के रूप में देखा जाए, यह प्रत्याहार है। (3) नित्य तथा विहित कर्मों के फल त्याग को भी इस उपनिषद् में प्रत्याहार माना गया है। यह परिभाषा ईशोपनिषद् के दूसरे मन्त्र के अनुसार प्रतीत होती है जिसमें कहा है कि **"कुर्वन्नवेहे कर्माणि जीजिवेषच्छतं समाः। एवं त्वयी नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे"**। (ईशोपनिषद – 1–2) (4) सभी विषयों से पराङ्मुख होना प्रत्याहार कहलाता है। यह परिभाषा योग सूत्र (2.54) 'स्वविषयासम्प्रयोगे' के अनुसार ही प्रतीत होती है। (5) इस उपनिषद् में प्रत्याहार की एक अन्य अलग प्रकार से परिभाषा दी गयी है कि पैर, अंगूठा, जंघा, जानु आदि अठारह स्थानों में क्रमशः धारणा करना ही प्रत्याहार है। उपनिषदकार की यह परिभाषा अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं होती। मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् में भी विषयों से इन्द्रियों को हटाना प्रत्याहार कहा गया है।

4.5.4 उपनिषदों में धारणा–

धारणा को परिभाषित करते हुए पतंजलि ने कहा है कि चित्त को किसी देश विशेष में स्थिर करना धारणा है। **"देशबन्धचित्तस्य धारणा।"** (योगसूत्र – 3/1) मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार धारणा, विषयों से हटाते हुए चित्त को चैतन्य में स्थिर करना है। धारणा के द्वारा मन स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।

उपनिषदों में धारणा का वर्णन ध्यान के प्रसंग में किया गया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विद्वान् पुरुष मन को उसी प्रकार धारण करे जैसे कि दुष्ट घोड़ा को वश में किया जाता है।

दुष्टश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनो धारयेताप्रमतः।। श्वेताश्क्तरोपनिषद्–2/9

ईशादि प्रधान उपनिषदों के अतिरिक्त अन्य उपनिषदों में भी धारणा का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। योगतत्त्वोपनिषद् में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश ये पाँचों धारणा के स्थल कहे हैं किन्तु यहाँ पर स्वयं ही पृथिवि आदि का अभिप्राय शरीर के ही विभिन्न अंग

मानते हुए कहा गया है कि पैरों से जानु पर्यन्त भाग को पृथिवि कहते हैं। जानु से पायु पर्यन्त भाग जलस्थान कहलाता है। पायु से हृदय तक का भाग अग्नि स्थान कहलाता है। हृदय से भ्रू तक का भाग वायु स्थान तथा भ्रू के प्रारम्भ से अन्त तक का भाग आकाश कहलाता है। इन स्थानों में धारणा करने से पृथिवि, जल, अग्नि तथा वायु के संयोग से योगी की मृत्यु नहीं होती तथा वह आकाश–गमिता को प्राप्त करता है। जाबालदर्शनोपनिषद् में भी धारणा के इसी प्रकार पाँच भेद करते हुए उपर्युक्त पृथिवि आदि पांचों स्थानों में धारणा का विधान किया गया है। शाण्डिलयोपनिषद् में धारणा के तीन प्रकार कहे हैं– आत्मा में मन को लगाना, दहराकाश में बाह्याकाश को लगाना तथा पृथ्वी आदि पंचभूतों में पंचमूर्ति की धारणा करना।

4.5.5 उपनिषदों में ध्यान–

जिस स्थान में धारणा की हुई है, उस स्थान में चित्त की एकतानता = एकाग्रता एक समान बना रहे, वह ध्यान की स्थिति है।

तत्र–प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। योगसूत्र – 3/2

ध्यान की स्थिति में चित्तवृत्तियाँ पूर्णतः निरुद्ध रहती है। तब केवल ध्याता, ध्यान और ध्येय का ही सूक्ष्म रूप में भान रहता है, अन्य का नहीं। मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में भी इसी प्रकार चैतन्य में एकतानता को ध्यान कहा गया है।

सर्वशरीरेषु चैतन्यैकतानता ध्यानम्। मण्डल ब्राह्मणोपनिषद् – 347

ईशादि उपनिषदों तथा अन्य उपनिषदों में भी ध्यान का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। इनमें ध्यान के द्वारा आत्मदर्शन की बात कही गयी है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि ज्ञानप्रसाद के द्वारा विशुद्ध अन्तःकरण होकर ध्यान करता हुआ आत्मा को देखे। उपनिषदों में प्रायः ओंकार ध्यान का विधान किया गया है। प्रश्नोपनिषद् में ओंकार के ध्यान के सम्बन्ध में ओंकार की एक, दो तथा तीन मात्राओं के ध्यान तथा उनके फलों का अलग–अलग वर्णन स्पष्टता के साथ उपलब्ध होता है। श्वेताश्वरोपनिषद् में ध्यान करने की विधि बतलाया गया है कि सिर, ग्रीवा तथा कमर को एक सीध में करके इन्द्रियों को हृदय में स्थापित करके ध्यान करे।

त्रिरूत्रयं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य।

ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विहान्स्त्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि।। श्वेताश्वतरोपनिषद् 2–8

ब्रह्मविद्योपनिषद् में ध्यान करने का स्थान भ्रूमध्य बतलाया गया है। योगशिखोपनिषद् में सुषुम्ना में ध्यान करने को सर्वश्रेष्ठ मानकर कहा गया है कि यह ध्यान हजारों अश्वमेधादि यज्ञ की अपेक्षा सर्वोत्तम है। योग तत्त्वोपनिषद् में ध्यान के दो भेद बतलाए हैं– सगुण और निर्गुण। प्राणायाम द्वारा प्राण को नियंत्रण कर अपने इष्ट देवता का ध्यान करना सगुण

ध्यान कहलाता है। इस ध्यान द्वारा अणिमादि अष्टसिद्धियाँ प्राप्त होती है। निर्गुण ध्यान के द्वारा समाधि की प्राप्ति होती है।

सगुणं ध्यानमेत्स्यादणिमादिगुणप्रदम्।

निर्गुणध्यानयुक्तस्य समाधिश्च ततो भवेत्।। योगतत्त्वोपनिषद् श्लोक 106

शाण्डिल्योपनिषद् में भी ध्यान के दो भेद बताते हुए कहते हैं कि मूर्ति के ध्यान को सगुण ध्यान तथा आत्मस्वरूप के दर्शन को निर्गुण ध्यान कहते हैं।

सगुणं मूर्तिध्यानम् निर्गुणमात्मयाधात्म्यम्।। शाण्डिल्योपनिषद् 1/71

<u>4.5.4 उपनिषदों में समाधि</u>–

समाधि के स्वरूप के बारे में बताते हुए पतंजलि कहते हैं कि वह ध्यान ही केवल ध्येय के स्वरूप को प्रकाशित करने वाला, अपने ध्यानात्मक स्वरूप से शून्य बना जैसा अर्थात् ज्ञानस्वरूप में गौण हुआ 'समाधि' कहलाता है।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।। योगसूत्र – 3/3

अभिप्राय यह है कि ध्यान में ध्याता, ध्यान तथा ध्येय तीनों की प्रतीति होती है जबकि समाधि में केवल ध्येय मात्र की। योगतत्त्वोपनिषद् में समाधि को जीवात्मा तथा परमात्मा की साम्यावस्था कहा गया है। शण्डिल्योपनिषद् में कहा गया है कि यह त्रिपुटिरहित अवस्था ही समाधि है, जिसमें जीवात्मा एवं परमात्मा शुद्ध स्वरूप में रहते हैं।

योगदर्शन में समाधि के दो भेद बताए गये हैं– **सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि।** सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद हैं– (1) वितर्कानुगत, (2) विचारानुगत, (3) आनन्दानुगत एवं (4) अस्मितानुगत। इनमें से वितर्कानुगत एवं विचारानुगत के दो–दो भेद बताए गये हैं– सवितर्क व निर्वितर्क तथा सविचार व निर्विचार।

अध्यात्मोपनिषद् में कहा गया है कि ध्याता तथा ध्यान को छोड़कर जब चित्त वायु रहित स्थान में रखे हुए दीपक की भांति ध्येय मात्रपरायण हो, तब यह समाधि की स्थिति होती है। समाधि प्राप्त हो जाने पर पूर्व संचित कर्म वासनायें नष्ट हो जाती है तब शुद्ध धर्म की वृद्धि होती है। यह समाधि हजारों अमृत वर्षा की भाँति धर्म का वर्षण करती है। पैंगलोपनिषद् में भी इसी प्रकार कहा गया है कि धर्म मेघ समाधि के द्वारा वासनाजाल तथा कर्म संचय नष्ट हो जाने पर जीवनमुक्ति प्राप्त होती है।

अभ्यास प्रश्न

1– एक शब्द में उत्तर दीजिए–

क– उपनिषदो की कितनी संख्या है।

ख– उपनिषद शब्द संस्कृत व्याकरण के किस धातु से बना है।

ग– निष्काम कर्म का उपदेश किस उपनिषद में दिया है।

घ– नचिकेता व यम का संवाद किस उपनिषद में मिलता है।

ड.– किस उपनिषद में ओंकार की सुदीर्घ व्याख्या की है।

4.6 सारांश

वेद भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान विज्ञान के मूल स्रोत हैं। संसार का समस्त ज्ञान वेदों में निहित है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। प्राचीन काल से भारतीय समाज का वैयक्तिक जीवन, सामाजिक व्यवस्था तथा राष्ट्रीय संगठन वेदों की दृढ़ आधारशिला पर अवलम्बित रहा है। वेद ही आर्यों का सर्वस्व है, स्वतः प्रमाण है तथा सूर्य के समान अपना प्रकाश करता हुआ समस्त अन्य पदार्थों को प्रकाश करने वाला है। यह सत्य विद्याओं का निधान है तथा उसी के आधार पर अन्य समस्त विद्याओं का विकास हुआ है।उपनिषदों, स्मृति ग्रन्थों, दर्शनों तथा पुराणों आदि अन्य ग्रन्थों में योग की पर्याप्त प्रशंसा उपलब्ध होती है।

4.7 शब्दावली

यथार्थ– सत्य,

तत्ववेत्ता– आत्म तत्व को जानने वाले

अर्वाचीन– प्राचीन पुरातन

यम– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्माचर्य

नियम– शौंच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्राणिधान

शौंच– शुद्धता, सफाई

अस्तेय– चोरी ना करना

स्वाध्याय– श्रेष्ठ ग्रन्थों को पढ.ना

ऋत– प्रिय, सत्य

4.8– अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 .क– 108 ख– सद् ग– इशोपनिषद

घ– कठोपनिषद ड.– माण्डूक्योपनिषद ।

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.ऋग्वेद – भाष्यकार स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2006।

2. यजुर्वेद – भाष्यकार स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2006।

3. सामवेद – भाष्यकार स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2009।

4. अथर्ववेद – भाष्यकार क्षेमकरणदास त्रिवेदी, आर्य प्रकाशन, दिल्ली – 2007।

5 .भारतीय दर्शन – आ0 बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1991।

6. भारतीय दर्शन की रूपरेखा – प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसी दास, 2002।

7. वेदों में योग विद्या – डॉ0 योगेन्द्र पुरुषार्थी – यौगिक शोध–संस्थान, ज्वालापुर, हरिद्वार,

8. उपनिषदों में योग विद्या – डॉ0 रधुवीर वेदालंकार।

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. वेदो में यम के स्वरूप की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।
2. उपनिषदों में यम के स्वरूप की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।
3. उपनिषदों में धारणा ध्यान एवं समाधि की व्ययख्या कीजिए।
4. वेदो तथा उपनिषदो में प्रत्याहार की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए।

`इकाई – 5 गीता एवं योग वशिष्ठ में योग

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 गीता में योग का स्वरूप

- 5.3.1 ज्ञानयोग
- 5.3.2 कर्मयोग–
- 5.3.3 भक्तियोग
- 5.3.4 ध्यानयोग

5.4 योगवशिष्ठ में योग का स्वरूप

- 5.4.1 चित्तनिरुपण
- 5.4.2 योग वशिष्ठ में चित्तप्रसादन–
- 5.4.3 यम–नियम निरुपण
- 5.4.4 प्राणायाम निरुपण
- 5.4.5 प्रत्याहार निरुपण
- 5.4.6 ध्यान निरुपण
- 5.4.7 समाधि निरुपण
- 5.4.8 मोक्ष (मुक्ति निरुपण)

5.5 सारांश

5.6 शब्दावली

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियो पूर्व की इकाई में आपने वेद एवं उपनिषद में योग के स्वरूप को जाना। प्रस्तुत इकाई में योग के अति विशिष्ट ग्रन्थ भगवत गीता तथा योग वशिष्ठ में योग के स्वरूप का अध्ययन करेगें। गीता साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण की मुखनिस्सृत वाणी है। गीता भारत का ही नहीं अपितु विश्व स्तर का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है। गीता व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक सभी पक्षों पर प्रकाश डालती है। और मनुष्य मात्र को उचित मार्गदर्शन करती है। जब हम योग की दृष्टि से गीता पर प्रकाश डालते हैं तो ज्ञात होता है कि गीता योग का भी एक सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। गीता में योग विद्या को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इसी बात से ज्ञान होता है कि गीता के प्रत्येक अध्याय के नाम के साथ योग शब्द को जोड़ा गया है। योग वशिष्ठ योग का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। अन्य योग ग्रन्थों की भाँति योग वशिष्ठ में भी योग के विभिन्न स्वरूप जैसे– चित्तवृत्ति, यम–स्वरूप, नियम–स्वरूप, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, समाधि, मोक्ष आदि का वर्णन वृहद् रूप में किया गया है।

योग वशिष्ठ के निर्वाण–प्रकरण में वशिष्ठ मुनि श्री राम जी को योग के स्वरूप के बारे में वर्णन करते हुए कहते हैं कि संसार सागर से पार होने की युक्ति का नाम योग है और वह दो प्रकार का है। एक सांख्य बुद्धि ज्ञान योग और दूसरा प्राण से रोकने का नाम योग बताया है।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप–

- गीता में योग के स्वरूप का अध्ययन करेगें।
- गीता में योग की विविध साधनाओं को जान सकेगें।
- योग वशिष्ठ में योग के स्वरूप का अध्ययन करेगें।
- योग वशिष्ठ में योग की विविध साधनाओं को जान सकेगें।

5.3 गीता में योग का स्वरूप

पाठको वही ज्ञान वास्तविक ज्ञान होता है जो ज्ञान मुक्ति के मार्ग की ओर अग्रसरित कराता है। अतः गीता में भी मुक्ति प्रदायक ज्ञान है। इस बात की पुष्टि स्वयं व्यास जी ने महाभारत के शान्तिपर्व में प्रकट किया है। ''विद्या योगेन ऱक्षति'' अर्थात् ज्ञान की रक्षा योग से होती है। श्रीमद्भगवद् गीता को यदि योग का मुख्य ग्रन्थ कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। योग के आदि प्रवक्ता स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् है, इसलिए उन्हें योगेश्वर भी कहा गया है। आदि काल में भगवान् गीता का उपदेश सूर्य भगवान् को दिया,

सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा। इस प्रकार योग को ऋषियों ने जाना।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवाहनहमव्ययम्।

विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रबीत् ।। गीता 4/1

परन्तु इसके बाद यह योग बहुत काल से इस पृथिवि लोक में लुप्त प्राय हो गया। अतः तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसिलिए वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझको कहा है, क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है। श्रीमद्भगवद् गीता के प्रत्येक अध्याय को योग की संज्ञा दी गयी है। इस प्रकार अठारह अध्यायों को क्रमशः निम्न योगों से अभिहित किया गया है, जो इस प्रकार है–

1. अर्जुनविषाद योग, 2. सांख्य योग, 3. कर्मयोग, 4. ब्रह्मयोग, (ज्ञान कर्म सन्यास योग), 5. कर्म सन्यास योग, 6. आत्मसंयम योग, 7. ज्ञानविज्ञान योग, 8. अक्षरब्रह्म योग, 9. राजविद्याराजग्रह्म योग, 10. विभूति योग, 11. विश्वरूपदर्शन योग, 12. भक्तियोग, 13. क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ विभाग योग, 14. गुणत्रय विभाग योग. 15. पुरुषोत्तम योग, 16. दैवासुरसम्पद् विभाग योग, 17. श्रद्धात्रय विभाग योग एवं 18. मोक्षसन्यास योग।

यदि इन सब का विश्लेषण किया जाए तो प्रत्येक छः अध्यायों में एक नवीन उपदेश है।

पहले छः अध्यायों में पाँच की साधना प्रणाली का वर्णन है। जिन्हें कर्मयोग के अन्तर्गत रखा गया है। अगले छः अध्यायों में भगवान् ने अपने उपदेश का मूल अथवा गीता हृदय खोल कर रख दिया है तथा अपने शिष्य को दिव्यदृष्टि प्रदान की है। इसमें भक्ति योग है। अन्त के छः अध्यायों में भगवान् श्रीकृष्ण ने कुछ विशिष्ट एवं गूढ़ सिद्धान्तों की मीमांसा की है, जिन्हें समझने के लिए योग को पूर्णतः व्यवहार में लाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यही ज्ञान योग है।

गीता में योग के विभिन्न रूपों का वर्णन किया गया है, परन्तु गीता के अन्यान्य योगों में आपाततः योग के मुख्यतः तीन स्वरूप स्पष्ट दिखते हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

गीता के दूसरे अध्याय में योग के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि

''**समत्त्वं योग उच्यते**''। गीता 2/48

अर्थात् जब साधक का चित्त सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होता है, तब इस अवस्था में साधक का चित्त सुख–दुःख, मान–अपमान, लाभ–हानि, जय–पराजय, शीत–उष्ण, तथा भूख–प्यास आदि द्वन्द्व में समान बना रहता है। इस अवस्था में साधक सभी पदार्थों में समान भाव रखता है। इस अवस्था के कारण उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है, सभी दुःख समाप्त हो जाते हैं। इसी समत्त्व भाव का नाम योग है।

गीता के दूसरे अध्याय में ही योग की एक अन्य परिभाषा देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

" योगः कर्मसु कौशलम्"। गीता 2/50

इस कथन का अभिप्राय है फलासक्ति का त्याग करके कर्म करना ही कर्मकौशल है। कर्म करते हुए यदि कर्त्ता कर्म में आसक्त हो गया तो वह कर्मकौशल नहीं कहलाता है। कर्त्ता की कुशलता तो यह है कि कर्म करके उसको वहीं छोड़ दिया जाये। हानि और लाभ, जय अथवा पराजय, कार्य–सिद्धि या असिद्धि के विषय में चिन्ता ही न की जाये। कर्म करते हुए यदि कर्त्ता उस कर्म का दास होकर रह गया तो वह कर्त्ता का अस्वातन्त्रय हुआ। कर्त्ता तो स्वतन्त्र हुआ करता है।

यदि कर्म ने कर्त्ता को पराधीन कर दिया तो यह कर्म की विजय हुई कर्त्ता की नहीं। कर्त्ता का स्वातन्त्रय तो तब सिद्ध होता है जब कर्त्ता स्वेच्छा से कर्म का और उसके फल का त्याग कर देता है। अतः फलासक्ति का त्याग करके कर्म करना ही कर्मकौशल है।

दुष्कृत में आसक्ति की अपेक्षा भी सुकृत में आसक्ति को छोड़ना और कठिन है। किन्तु जिसको यह अनासक्ति योग की बुद्धि प्राप्त हो गई, वह दुष्कृत को और विशालतर सुकृत में बन्धक लघुतर सुकृत को – इन दोनों को त्याग देता है। इसलिए तू इस अनासक्ति–योग की प्राप्ति के लिए जुट जा। जो लोग इस अनासक्ति योग को प्राप्त कर लेते हैं, वे जन्म के बन्धनों से घबराते नहीं। विपरीत से विपरीत परिस्थितियों की दीवार को तोड़कर पार हो जाते हैं। इसी कुशलता का नाम योग है।

योग की एक अन्य महत्त्वपूर्ण परिभाषा देते हुए गीता के छठे अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं– मनुष्य जीवन पर्यन्त दुःखों से संयोग बना रहता है। दुःखों के इसी संयोग का पूर्णतः वियोग हो जाना, दुःखों की सदा के लिए समाप्ति हो जाना ही योग है, **"दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।"** गीता 6/23 क्योंकि जब दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है तो वे पुनः उत्पन्न नहीं होते।

गीता में योग शब्द को अनेक अर्थ में प्रयोग किया गया है, परन्तु मुख्य रूप से गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग इन तीन योग मार्गों का विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है।

5.3.1 ज्ञानयोग

ज्ञानयोग के माध्यम से गीता उपदेश देती है कि यह समस्त दृश्य जगत् परमात्मा से ही उत्पन्न होता है और अन्त में परमात्मा में ही लीन हो जाता है। अर्थात् ऐसा समझना चाहिए कि सम्पूर्ण भूत प्रकृति से उत्पन्न हुआ है और सम्पूर्ण जगत् का उद्भव एवं प्रलय का मूल कारण परमात्मा है।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।। गीता 7/6

अब यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि ज्ञानयोग का विषय क्या होना चाहिए? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि वह समग्र ज्ञान जिससे जीव परमपद् मोक्ष को प्राप्त कर सके। इसलिए मनुष्य को आत्मा, प्रकृति एवं ईश्वर को जानना आवश्यक है जिसे जानकर मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

गीता के सातवें अध्याय में दो प्रकार के प्रकृति अपरा और परा प्रकृति के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन बुद्धि और अहंकार यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी जो प्रकृति है वह अपरा (जड़) प्रकृति है तथा दूसरी परा प्रकृति, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है, मेरी जीवरूपा परा अर्थात् (चेतन) प्रकृति है।

आत्मा के स्वरूप का निरूपण गीता के दूसरे अध्याय में किया गया है। आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि यह आत्मा न तो किसी काल में जन्म लेता है और न ही मरता है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है। क्योंकि यह आत्मा अजन्मा, नित्य, सनातन और पुराना है। यह शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मारा जाता।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। गीता 2/20

इसी अध्याय में आत्मा के अन्य स्वरूपों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और निःसन्देह अशोष्य है, तथा यह आत्मा नित्य सर्वव्यापी, अचल और स्थिर रहने वाला सनातन है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।। गीता 2/24

यह आत्मा, अव्यक्त है, अचिन्त्य है तथा यह आत्मा विकाररहित है। इसलिए हे अर्जुन! इस आत्मा को उपर्युक्त प्रकार से जानकर तू शोक करने योग्य नहीं है, अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है। इस प्रकार यह आत्मा ऐसी है, यह जानकर इस विषय में शोक करना योग्य नहीं है। आत्मा 'सर्वगत्' अर्थात् सर्वव्यापक है।

योग का आचरण करने वाला शुद्धात्मा जिसने अपने आत्मा और इन्द्रियों पर विजय पा लिया है ऐसा श्रेष्ठ पुरुष कर्म करता हुआ भी कर्म में लिप्त नहीं होता। कर्म का लेप न होने के लिए इसे सर्वात्मभाव की सिद्धि प्राप्त होनी चाहिए।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।

सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।। गीता 5/7

गीता के आठवें अध्याय में परमदिव्य पुरुष (ईश्वर) के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि ईश्वर सर्वज्ञ है, अतः उससे कुछ भी अज्ञात नहीं है। वह प्राचीन है और प्राचीन काल से अर्थात् सदा से ही सबका नियन्ता और शासनकर्त्ता है। वह सब जगत् का एकमात्र सर्वाधिकारी शासक है। वह सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है और सबका एकमात्र आधार है। उसके अखण्ड अनन्त स्वरूप का चिन्तन करना बहुत कठिन कार्य है। वह स्वयं अत्यन्त तेजस्वी है, इसलिए उसके पास अंधकार नहीं रह सकता ।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।। गीता 8/9

इसी दिव्य परम पुरुष का सबको ध्यान करना चाहिए। प्रयाणकाल में, भक्तियुक्त होकर, भृकुटी में प्राणों को अच्छी प्रकार स्थापित करके, निश्चल मन से जो इसका ध्यान करता है, वह उस दिव्य परम श्रेष्ठ पुरुष (परमात्मा) को प्राप्त कर लेता है।

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तौ योगबलेन चैव।

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।। गीता 8/10

ऐसे समय ओंकार का जप और परमेश्वर का चिन्तन करता हुआ जो शरीर को त्याग कर जाता है, वह निःसन्देह परमश्रेष्ठ गति को प्राप्त होता है।

इसी ज्ञानयोग की पुष्टि के लिए गीता कर्मयोग का भी उपदेश देती है, क्योंकि निष्काम भाव से कर्म करने पर ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। तभी उस ज्ञान से परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। अब यहाँ कर्मयोग का उल्लेख किया जा रहा है–

5.3.2 कर्मयोग–

गीता के तीसरे अध्याय में कर्मयोग का वर्णन किया गया है। गीता में कहा है कि मनुष्य में कर्म करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। एक क्षण भी मनुष्य कर्म किये बिना नहीं रह सकता।

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। गीता 3/5

वह इच्छा से करे, अनिच्छा से करे, स्वभाव से करे अथवा कैसी भी वृत्ति से करे, उससे कर्म होना ही है। कुछ भी करो, कर्म छूटता नहीं। मनुष्य स्तब्ध रहा तो भी उस समय उससे स्तब्ध रहने का कर्म होता है। मनुष्य का शरीर स्तब्ध रखा गया, तो भी उसके मन के व्यापार बन्द नहीं होते, वह मन से मनन करके अनेक कर्म करता रहता है। निद्रा लेने का कर्म होता ही है तथापि उसमें स्वप्न आने लगे, तो वह स्वप्न देखने का भी कर्म करता है। यह कर्म कैसे रोका जाए? और यह सब न हुआ, ऐसा भी क्षणभर के लिए मान लीजिए; परन्तु हर एक प्राणी जीवित रहने का कार्य तो करता ही है। श्वास–प्रश्वास, हृदय की धड़कन, आँखों का खोलना और मूंदना, ये कर्म शरीर के स्वभाव से ही होते हैं; इसके

अतिरिक्त शरीर का जीर्ण होना, रोगी होना, निरोग रहना आदि कर्म होते हैं। अतः मनुष्य का कर्मों का प्रारम्भ न करने का निश्चय और कर्मों के त्याग करने का निश्चय ये दोनों निश्चय अव्यवहार्य है। कर्म न करना तो एक क्षणमात्र भी संभवनीय नहीं है। मन से इन्द्रियों का संयम करके अनासक्त भाव से कर्म करने वाले की प्रशंसा करते हुए कहा है कि हे अर्जुन! जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।

कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।। गीता 3/7

इसलिए तू शास्त्रविहित कर्त्तव्य कर्म कर; क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरा शरीर–निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।

शरीरयात्राापि च ते न प्रसिद्धेदकर्मणः।। गीता 3/8

'नियत कर्म' का आशय दो प्रकार से व्यक्त हो सकता है। एक नियत कर्म वह है जो धर्मशास्त्र के द्वारा प्रत्येक मनुष्य के लिए निश्चित हो चुका है। शम–दम–तप आदि ब्राह्मण के लिए; शौर्य, युद्ध से अपलायन, दान आदि क्षत्रिय के लिए; कृषि, गौरक्षा, वाणिज्य वैश्य के लिए और कारीगरी तथा परिचर्यादि कर्म शूद्र के लिए धर्मशास्त्र द्वारा निश्चित किये हुए कर्म हैं। चार वर्णों में उत्पन्न हुए मनुष्यों के इस प्रकार के चतुर्विध कर्म धर्मशास्त्र द्वारा निश्चित है। ये ही कर्म नियत कर्म हैं। अपना वर्ण और अपना आश्रम इनके लिए जो कर्म धर्मशास्त्र से नियत हुआ है, वह उस मनुष्य को सदा करना चाहिए।

दूसरा नियत कर्म का आशय 'सहज कर्म' या 'स्वकर्म' से है। सहज कर्म का अर्थ है– 'अपने जन्म के साथ जन्मा हुआ कर्म'। प्रत्येक मनुष्य के साथ उसका कर्म निश्चित रूप से जन्मता है। इसी प्रकार स्वकर्म का अर्थ– 'अपने भाव अर्थात् जन्म के साथ नियत हुआ कर्म'। इन दोनों शब्दों का अर्थ प्रायः एक ही है।

गीता में यज्ञार्थ कर्म करने का भी उपदेश दिया गया है। यज्ञ के लिए जो कर्म किये जाते हैं, उन यज्ञ कर्मों से मनुष्य को बंधन नहीं होता, परन्तु जो दूसरे कर्म मनुष्य करता है उनसे मनुष्य को बन्धन होता है। इस कारण यज्ञ के लिए आसक्ति छोड़कर कर्म कर। अर्थात् यज्ञकर्म से मनुष्य बन्धन से छूटता है और यज्ञरहित अन्य कर्मों से मनुष्य को बन्धन होता है।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।। गीता 3/9

यहाँ यज्ञ शब्द का केवल होम हवन अर्थ नहीं है। गीता के चौथे अध्याय में श्लोक संख्या 25 से 32 तक विविध यज्ञ कहे हैं। उनमें ये मुख्य हैं–

इन्द्रियसंयमयज्ञ, द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ इत्यादि। वेद में सभी श्रेष्ठ कर्मों को यज्ञ कहा है। **"यज्ञौ वै श्रेष्ठतमं कर्म।"** यज्ञों में होमहवन (अग्निहोत्र) भी एक यज्ञ है। मनुष्य के जीवन–व्यवहार में भी क्षणक्षण में यज्ञ होते रहते हैं। मनुष्य का बोलना, चलना, खाना, पीना, सोना और जागना सब यज्ञरूप होना चाहिए। भगवद्गीता का यही उपदेश प्रारम्भ से अन्त तक स्पष्ट रीति से दीखता है। इस प्रकार से यज्ञकर्म आसक्तिरहित होकर निःस्वार्थ भाव से करनी चाहिए। इसलिए तू निरन्तर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्त्तव्य कर्म को भलीभाँति करता रह, क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः। गीता 3/19

5.3.3 भक्तियोग

परन्तु ज्ञानयोग एवं कर्मयोग के लिए भक्ति का होना भी आवश्यक है, क्योंकि भक्ति के बिना निष्काम कर्म नहीं हो सकता। जब साधक भक्तियोग के माध्यम से अपना सर्वस्व भगवान् को अर्पित कर देता है तो उसकी सांसारिक पदार्थों में आसक्ति समाप्त हो जाती है। तभी परमात्मा को जान पाता है।

गीता के बारहवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ईश भक्ति (उपासना) करने वाले योगियों की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो परमेश्वर के सगुण रूप में मन लगाकर, नित्य परमेश्वर की सगुण भक्ति में तत्पर परमश्रद्धा से ईश्वर की सगुण उपासना करते हैं, वे योगियों में श्रेष्ठ योगी हैं। यह अपना निज मत है अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण के मत से 'व्यक्त रूप की उपासना करने वाले योगी श्रेष्ठ होते हैं।'

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्युक्ता उपासते।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।। गीता 12/2

श्रेष्ठ योगी होने के लिए तीन बाते आवश्यक हैं, वे ये हैं–

1 मनः आवेश्य– ईश्वर में मन लगाना।,
2 नित्ययुक्तः – ईश्वर से नित्य योग संबंध करना, कुशलता के साथ कर्म करना।,
3 परया श्रद्धया उपेतः – श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त होना।

ईश्वर का रूप वही है जो इस विश्व में दिखाई देता है। विश्व का वही रूप परमात्मा का अखण्ड रूप है। यह रूप अनन्त है, उसमें जो अपनी उपासना के लिए योग्य है, वही लिया जाये और उसमें अपना मन पूर्णता के साथ लगाया जाये, जो कुछ किया जाये, वह अटल श्रद्धा से किया जाये। इस तरह जो भक्ति होती है, वही श्रेष्ठ भक्ति है।

निराकार ब्रह्म के स्वरूप का कथन और उसकी उपासना से भगवत्प्राप्ति की बात बतलाते हुए गीता के इसी अध्याय में कहा है कि जो पुरुष इन्द्रियों के समुदाय को भली

प्रकार से वश में करके मन–बुद्धि से परे, सर्वव्यापी, अकथनीय, स्वरूप और सदा एकरस रहने वाले नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी ब्रह्म को निरन्तर एकीभाव से ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतों के हित में रत और सब में समान भाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

(क) **ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।**
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।

(ख) **सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।**
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।। गीता 12/3–4

ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग इन तीनों को एक साथ सिद्ध करने के लिए साधन के रूप में गीता ध्यान योग का विस्तृत वर्णन करती है।

5.3.4 ध्यानयोग–

चित्त की चंचलता को दूर करने का सबसे उत्तम मार्ग ध्यानयोग है। ध्यान योग का वर्णन करते हुए गीता के छठे अध्याय में कहते है कि एकान्त में स्थित अकेला चित्त और आत्मा को वश में किये हुए, कामनाओं से रहित किसी भी प्रकार के दबाब से रहित योगी, अपने आप को निरन्तर परमात्मा में लगाये।

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।। गीता 6/10

वह ध्यान किस स्थान पर किया जाये इसका वर्णन करते हुए योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं – पवित्र स्थान में, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछा हुआ हो। यह आसन न अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा ऐसे आसन पर अपने शरीर को स्थिर करते हुए बैठकर साधना करनी चाहिए। आसन पर सिर और गर्दन एक सीध में रखते हुए चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करें।

(क) **शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।**
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।। गीता 6/11

(ख) **तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।**
उपविश्यासने यंज्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।।

(ग) **समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।**
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।। गीता 6/12–13

सीधे बैठकर अपनी दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर करते हुए ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से साधक का मन सहज रूप से एकाग्र हो जाता है।

ध्यानयोग के लिए उपयुक्त आहार–विहार तथा शयनादि नियम और उनके फल का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि हे अर्जुन! योग न तो बहुत खाने वाले का सिद्ध होता है और न तो बहुत कम खाने वाले का होता तथा यह योग न तो ज्यादा सोने वाले का और न सदा जागते रहने वाले का सिद्ध होता है।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।

न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।। गीता 6/16

योगसाधक का आहार–विहार उचित होना चाहिए। उसकी सभी क्रियाएँ यथायोग्य होनी चाहिए। उसका सोना, जागना भी समय पर होना चाहिए क्योंकि जो साधक इन बातों का पालन करता है उसके लिए योगमार्ग दुःखनाशक होता है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। गीता 6/17

ध्यानयोग का फल के बारे में बतलाते हुए गीता में कहा गया है कि वश में किये हुए मनवाला योगी इस प्रकार आत्मा को निरन्तर मुझ परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ मुझमें रहने वाली परमानन्द की पराकाष्ठारूप शान्ति को प्राप्त होता है।

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।

शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।। गीता 6/15

यही अन्तिम उच्चतम अवस्था है। ध्यानयोग के अन्तिम स्थिति को प्राप्त हुए पुरुषों के लक्षण के बारे में कहा गया है कि अत्यन्त वश में किया हुआ चित्त जिस काल में परमात्मा में ही भलीभाँति स्थित हो जाता है, उस काल में सम्पूर्ण भोगों से स्पृहारहित पुरुष योगयुक्त है, ऐसा कहा जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में योग का फल बताते हुए कहा है कि जो साधक योग का आचरण करता है, जिसका हृदय शुद्ध है, जिसने अपने आपको जीत लिया है, जिसने अपने इन्द्रियों को जीत लिया है और जिसकी आत्मा सब भूतों की आत्मा बनी है, वह कर्म करता हुआ भी अलिप्त रहता है।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।

सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्ननि न लिप्यते।। गीता 5/7

इस प्रकार हम देखते है कि 'गीता' योगशास्त्र ही है। इसके सभी अध्यायों में योग की विस्तृत चर्चा मिलती है। इसमें योग साधक के लिए विभिन्न योगमार्गों का वर्णन किया

गया है, जिसके अनुरूप प्रत्येक मनुष्य कोई एक मार्ग को अपनाकर परमलक्ष्य मोक्ष तक पहुँच सकता है।

5.4 योगवशिष्ठ में योग का स्वरूप

योग वशिष्ठ योग का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। अन्य योग ग्रन्थों की भाँति योग वशिष्ठ में भी योग के विभिन्न स्वरूप जैसे– चित्तवृत्ति, यम–स्वरूप, नियम–स्वरूप, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, समाधि, मोक्ष आदि का वर्णन वृहद् रूप में किया गया है।

योग वशिष्ठ के निर्वाण–प्रकरण में वशिष्ठ मुनि श्री राम जी को योग के स्वरूप के बारे में वर्णन करते हुए कहते हैं कि संसार सागर से पार होने की युक्ति का नाम योग है और वह दो प्रकार का है। एक सांख्य बुद्धि ज्ञान योग और दूसरा प्राण से रोकने का नाम योग बताया है।

एको योगस्तथा ज्ञानं संसारोत्तरेणक्रमे।

समावुपामौ द्वावेव प्रोक्तावेक फलदौ।। निर्वाण प्रकरण सर्ग 18/7

इन दोनों प्रकार के योग के द्वारा दुःखरूपी संसार से पार जा सकता है। शिव भगवान् ने दोनों का फल एक ही बताया है। ये योग के दोनों युक्तियाँ योग जिज्ञासु पर निर्भर है। किसी जिज्ञासु को योग सरल है और किसी को ज्ञान योग। परन्तु दोनों योग में अभ्यास की अत्यन्त आवश्यकता है।

असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचिज्ज्ञान निश्चयः।

ममत्वभिमतः साधो सुसाध्यो ज्ञान निश्चयतः।। निर्वाण प्रकरण सर्ग 13/8

बिना अभ्यास के कुछ नहीं प्राप्त होता।

यद्यपि शास्त्रों में 'योग' शब्द से उपर्युक्त दोनां ही प्रकार के कहे गये है तथापि इस 'योग' शब्द की प्राण निरोध के अर्थ में ही अधिक प्रसिद्धि है। महर्षि पतंजलि ने चित्त की वृत्ति के निरोध को योग की संज्ञा दी है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। यो0 सू0 1/2

5.4.1 चित्तनिरुपण :–

योग वशिष्ठ में मन को चित्त की संज्ञा दी गयी है। वशिष्ठ जी कहते है कि हे राम! यह मन भावनामात्र है और भावना का अर्थ है विचार। परन्तु विचार क्रिया का रूप है। विचार की क्रिया से सम्पूर्ण फल प्राप्त होते हैं।

मनोहि भावनामात्रं भावनास्पंदधर्मिणी।

क्रियातद्भावितारूपं फलं सर्वोनु धावति।। उ0 प्र0 सर्ग 96–1

यह मन स्वयं भी संकल्प शक्ति से युक्त है। इस लोक में जैसे गुणी का गुण से हीन होना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार मन का कल्पनात्मक क्रिया शक्ति से रहित होना असम्भव है। मन जिसका अनुसंधान करता है, उसी का सम्पूर्ण कर्मेन्द्रिय वृत्तियाँ सम्पादन करती है। इसलिए मन को कर्म कहा गया है। मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, कर्म, कल्पना, स्मृति, वासना, अविद्या, प्रयत्न, संस्मृति, इन्द्रिय, प्रकृति, माया, आदि सभी मन की ही संज्ञा है।

मनोबुद्धिरहंकारश्चिवतंकर्माथकल्पना।
संस्मृतिर्वासनाविद्याप्रयत्नः स्मृतिरेव च।।
इन्द्रियं प्रकृतिर्मायाक्रियाचेतीतरा अपि।
चित्राः शब्दोक्रयो ब्रह्मन्संसारभ्रमहेतवः।। उ0 प्र0 सर्ग 96/13–14

संसार का कारण मन की कल्पना ही है। चित्त को चेत्य का संयोग होने पर ही संसार भ्रम होता है। अन्य जितनी संज्ञा मन की कही गयी है वे सब मन के फुरने से एकदम फुरती है।

मन के स्वरूप के बारे में बताते हुए योगवशिष्ठ में कहा गया है कि यह मन न तो जड़ है और न चेतन ही है।

मन इत्युव्यते शमन जडंन चिन्मयम्।। उ0 प्र0 सर्ग 96/41

जड़ और चेतन की गांठ को मन कहते हैं और संकल्प–विकल्प की कल्पना ही मन है। यह संसार उसी मन से पैदा हुआ है। यह जड़ चेतन दोनों में चलायमान है। यह कभी जड़ की तरफ और कभी चेतन की तरफ चला जाता है। इस मन की कई संज्ञा है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और जीव इत्यादि मन की ही संज्ञा है। जैसे कोई नट सवांग रचने से अनेक संज्ञा पाता है, ठीक उसी प्रकार मन संकल्प से अनेक संज्ञा प्राप्त करता है।

यथा गच्छति शैलुषोरूपाण्यलंतथैवहि।
मनोनामान्यनेकानि धत्तककर्मारं व्रजेत्।। उ0 प्र0 सर्ग 96/43

यह सम्पूर्ण विस्तृत जगत् मन से ही व्याप्त है। मन से भिन्न तो केवल परमात्मा ही शेष रहते हैं। मन के नाश होने पर सर्वाश्रयदायक परब्रह्मपरमेश्वर ही अवशिष्ट रहता है और उसी के प्रमाद के कारण मन इस जगत् की रचना करता है। मन ही क्रिया है। मन के द्वारा ही शरीर बनता है और मरता है। मन के नष्ट होने पर कर्म आदि का सम्पूर्ण भ्रम नाश हो जाता है। जिस पुरुष ने मन पर विजय प्राप्त कर लिया है, वह जन्म–मरण के बन्धन से रहित हो जाता है, मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

5.4.2 योग वशिष्ठ में चित्तप्रसादन–

योग वशिष्ठ के उपशम प्रकरण के 13 वें सर्ग में चित्त की शान्ति के उपाय का वर्णन करते हुए कहा है कि जैसे पूर्व काल में वेदानुसार अन्य महापुरुषों एवं राजा जनक आदि ने जो आचरण किया है, वैसा ही आचरण करके आप भी मोक्ष पद को प्राप्त करो। बुद्धिमान् पुरुष

स्वयं ही परमपद को प्राप्त होते हैं। जब तक आत्मा प्रसन्न नहीं होती तब तक इन्द्रियों का दमन करके अपना काम करते रहो। जब वह आत्मारूपी सर्वगत् परमात्मा और ईश्वर प्रसन्न हो जाएगा तो फिर अपने आप ही प्रकाश दीखेगा। इसलिए हे राम! राजा जनक आदि ने जिस–जिस तरह आचरण किये हैं उसी प्रकार आप भी ब्रह्मलक्ष्मी होकर आत्मपद में स्थित हो और इस संसार में विचरण करो। इससे आपको तनिक भी दुःख नहीं होगा।

प्रसन्ने सर्वगेदे वेदे वेशे परमात्मनि
स्वयं मालोकिते सर्वाः क्षीयंते दुःखदृष्टयः।। उ0 प्र0 सर्ग 13/4

हे राम! यह मन अति चंचल है। इसको शान्त करने के लिए आप अपने में यह समझों कि न मैं हूँ और न कोई है। अनिष्ठ पदार्थ भी कुछ नहीं है। इससे यह शान्त हो जायेगा।

अवस्तित्त्वमिदं वस्तुयस्येति ललितंमनः। उ0 प्र0 सर्ग 13/24

जो राग–द्वेष से मुक्त है, मिट्टी के ढेले, पत्थर और स्वर्ण को एक समान समझता है तथा संसार की वासनाओं का त्याग कर चुका है, ऐसा योगी मुक्त कहलाता है। उसकी सब क्रियाओं में अहंभाव नहीं होता, तथा वह सुख–दुःख में भी समान भाव रखता है। जो इष्ट और अनिष्ट की भावना का त्याग करके प्राप्त हुए कार्य को कर्त्तव्य समझकर ही उसमें प्रवृत्त होता है, उसका कहीं भी पतन नहीं होता। महामते! यह जगत् चेतन मात्र ही है– इस प्रकार के निश्चय वाला मन जब भोगों का चिन्तन त्याग देता है, तब वह शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

चित्सत्तामात्रमेवेदमितिश्रवयवन्मनः
त्यक्तभोगाभिमनशंममेतिमहामते।। उ0 प्र0 सर्ग 13/46

5.4.3 यम–नियम निरुपण

योगवशिष्ठ में योग साधना करने वाले साधकों को निर्वाण प्राप्ति के लिए यम–नियमों का अभ्यास आवश्यक बताया है।

वशिष्ठ जी कहते हैं कि जो अपने पूर्वजों के उपदेश को ध्यान में रखकर उन पर शुभाचरण करते है वह धर्मात्मा कहलाता है और पाप मार्ग से बचता है। धर्मात्मा भी दो प्रकार के होते हैं। एक प्रवृत्ति वाला दूसरा निवृत्ति वाला धर्मात्मा। प्रवृत्ति मार्ग वह है जिसमें शास्त्रोक्त करने योग्य शुभ कर्म करे और दान पूण्य सदाचरण करके अपने कृत्य कर्म का फल चाहे। निवृत्ति मार्ग वह है जिसमें संसार के सभी सुखों को मिथ्या समझे, अपने अन्तःकरण को स्वभाव से ही स्वच्छ रखे, अपने पवित्र विचार करके स्वाध्याय द्वारा सत्यशास्त्रों का अध्ययन कर अपनी बुद्धि को तीव्र करे और अपनी दृष्टि समान रखे। योग वशिष्ठ के निर्वाण प्रकरण में आगे कहा है कि जो जिज्ञासु योग साधक है उसे चाहिए कि अपने ज्ञान की वृद्धि के लिए तीर्थस्थानों में स्नान, दान तथा सत्यशास्त्रों पर विचार करता

हुआ सत्संग भी करे। उसका खान–पान तथा लेना देना सभी कुछ विचार युक्त होना चाहिए। साथ ही क्रोध रहित होकर शुभाचरण करे और पवित्र मार्ग पर चले। क्रमशः सभी इन्द्रिय–जन्य विषयों का त्याग करे और अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं को दबाकर केवल दया नाम की इच्छा को अपनाये अर्थात् सब पर दयाभाव रखता हुआ सन्तोष को प्राप्त हो। ऐसा व्यक्ति लोभ, मोह तथा दंभ आदि से सर्वथा अलग रहता है। समस्त भोगों को त्याग कर देने के कारण उसका हृदय प्रतिक्षण शुभ गुणों से युक्त रहता है। वह फूलों की शय्या को सुखदायी नहीं समझता, इसके विपरीत वन एवं पर्वत की कन्दरा का निवास ही श्रेष्ठ समझता है। इस प्रकार वह कुँआ, बावड़ी, सरोवर एवं नदियों में स्नान तथा भूमि या पत्थर पर शयन करता हुआ, निरन्तर अपने वैराग्य में अभिवृद्धि करता जाता है और फिर धारना व ध्यान द्वारा चित्त में स्थिरता लाकर, आत्मचिन्तन करता हुआ, समस्त सांसारिक भोगों से पूर्णतया विरक्त हो जाता है।

5.4.4 प्राणायाम निरुपण

योग वशिष्ठ में प्राणायाम का भी उल्लेख किया गया है। प्राण के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह प्राण हृदय देश में स्थित रहता है। अपान वायु में भी निरन्तर स्पन्द शक्ति तथा सत्गति करता है। यह अपान वायु नाभि–प्रदेश में स्थित रहता है। **"प्राणापानसमानाधैस्ततः सहृदयानिलः।"** (नि0 प्र0 24/25) किसी भी प्रकार के यन्त्र के बिना प्राणों की हृदय कमल के कोश में होने वाली जो स्वभाविक बहिर्मुखता है, विद्वान् लोग उसे 'रेचक' कहते हैं। बारह अंगुल पर्यन्त बाह्य प्रदेश की ओर नीचे गये प्राणों का लौटकर भीतर प्रवेश करते समय जो शरीर के अंगों के साथ स्पर्श होता है उसे 'पूरक' कहते हैं। अपान वायु के शान्त हो जाने पर तब वह हृदय में प्राण वायु का अभ्युदय नहीं होता, तब वह वायु की कुंभकावस्था रहती है, जिसका योगी लोग अनुभवन करते हैं इसी को 'आभ्यन्तर कुम्भक' कहते हैं। बाह्य नासिका के अग्रभाग से लेकर बराबर सामने बारह अंगुल पर्यन्त आकाश में जो अपान वायु की निरन्तर स्थिति है, उसे पण्डित लोग 'बाह्यकुंभक' कहते हैं।

अपानस्यबहिष्ठंतमपरं पूरकं विदुः।

बाह्यानाभ्यंतराश्रवैतान्कुंभकादीनारतम्।। नि0 प्र0 25/19

प्राणायाम के फल के बारे में उल्लेख करते हुए योग वशिष्ठ के निर्वाण प्रकरण में कहा गया है कि प्राण और अपान के स्वभावभूत ये जो बाह्य और आभ्यन्तर कुम्भकादि प्राणायाम है, उनका भलीभाँति तत्त्व रहस्य जानकर निरन्तर उपासना करने वाला पुरुष पुनः इस संसार में उत्पन्न नहीं होता।

प्राणापानस्वभावांस्तान् बुद्धाभूयोन जायते।

अष्टावेते महबुद्धेरात्रिंदिवमनुस्मृताः।। नि0 प्र0 25/20

अपान के रेचक और प्राण के पूरक के बाद जब अपान स्थित होता है तो प्राण का कुम्भक होता है। उस कुम्भक में स्थित होने पर प्राणी तीनों तापों से मुक्त हो जाता है। क्योंकि वह अवस्था आत्मतत्त्व की होती है। उस कुम्भक की अवस्था में जो साक्षी भूत सत्ता है वही वास्तव में आत्मतत्त्व है। उसमें स्थित होने से प्राण की स्थिरता वाली देश, काल आदि की अवस्था में स्थिर हुआ मन का मनत्त्व भाव नष्ट हो जाता है।

स्वच्छंकुंभकमभ्यनभूयः परितप्यते।

अपानेरेचकाधारं प्राणपूरांतस्थितम्।। नि0 प्र0 25/53

इस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करने वाले पुरुष का मन विषयाकार वृत्तियों के होने पर भी बाह्यविषयों में रमण नहीं करता। जो शुद्ध और तीक्ष्ण बुद्धि वाले महात्मा इस प्राण विषयक दृष्टि का अवलम्बन करके स्थित हैं, उन्होंने प्रापणीय पूर्ण ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लिया है और वे ही समस्त खेदों से रहित हैं।

5.4.5 प्रत्याहार निरुपणः–

महर्षि पतंजलि के अनुसार मन के रुक जाने पर नेत्रादि इन्द्रियों का अपने–अपने विषयों के साथ सम्बन्ध नहीं रहता अर्थात् इन्द्रियां शान्त होकर अपना कार्य बन्द कर देती है, इस स्थिति का नाम प्रत्याहार है।

स्वाविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। यो0 सू0 2/54

योगवशिष्ठ में प्रत्याहार के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि इस जगत् में कहीं भी चपलता से रहित मन नहीं देखा जाता। जैसे उष्णता अग्नि का धर्म है वेसे ही चंचलता मन का। चेतन तत्त्व में जो यह चंचल क्रिया शक्ति विद्यमान है, उसी को तुम मानसी शक्ति समझो। इस प्रकार जो मन चंचलता से रहित है, वही मरा हुआ कहलाता है। वही तप है और वही मोक्ष कहलाता है। मन के विनाश मात्र से सम्पूर्ण दुःखों की शान्ति हो जाती है और मन के संकल्प मात्र से परम सुख की प्राप्ति होती है।

मनोविलयमात्रेणदुःखशांतिरवाप्यते।

मनोमननमात्रेण दुःखं परमवाप्यते।। उत्पत्ति प्रकरण 112/9

यह मन की चपलता अविद्या से उत्पन्न होने के कारण अविद्या कही जाती है। उसका विचार के द्वारा नाश कर देना चाहिए। विषय चिन्तन का त्याग कर देने से अविद्या और उस चित्त सत्ता का अन्तःकरण में लय हो जाता है। और ऐसा होने से मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। जिसने मनरूपी पाश को अपने मन के द्वारा ही काटकर आत्मा का उद्धार नहीं कर लिया, उसे दूसरा कोई बन्धन नहीं छुड़ा सकता। विद्वान् पुरुष को चाहिए कि जो–जो वासना, जिसका दूसरा नाम मन है, उदित होती है, उस–उस का परित्याग करे– उसे मिथ्या समझ कर छोड़ दे। इससे अविद्या का क्षय हो जाता है। भावना की भावना न करना ही वासना का क्षय है। इसी को मन का नाश एवं अविद्या का नाश भी कहते हैं।

यायोदेतिम नोनाम्नीवासनासितांतरा।

तांतांपरिहरेत्प्राज्ञस्ततोऽविद्याक्षयो भवेत्।। उ0 प्र0 112/22

इस प्रकार से निश्चय मन वाला जब भोगों का चिन्तन त्याग देता है, तब वह शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

5.4.6 ध्यान निरुपण :–

धारणा वाले स्थान पर एक वस्तु के ज्ञान का प्रवाह बना रहना ध्यान कहलाता है।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। यो0 सू0 3/2

योगवशिष्ठ में ध्यान के बारे में वर्णित करते हुए उपशम प्रकरण में कहा है कि प्राणायाम द्वारा अपने मन को नियन्त्रण कर नेत्रों को बन्द करके ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। इसमें ओंकार का ध्यान करना बतलाया है। ओंकार में अकार, उकार और मकार तीन शब्द है जो क्रमशः अकार से ब्रह्मा, उकार से विष्णु तथा मकार से शिव का द्योतक है तथा जो अर्धमात्रा है वह तुरीया है। इस प्रकार अकार से ब्रह्मा का स्मरण करें, उकार से विष्णु का स्मरण करें तथा मकार से शिव का ध्यान करते हुए तुरीयापद को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। यही ध्यान का स्वरूप है।

5.4.7 समाधि निरुपण :–

समाधि के स्वरूप के बारे में वशिष्ठ जी, श्रीराम से कहते हैं कि अब तुम समाधि का लक्षण सुनो। यह जो गुणों का समूह गुणात्मक तत्त्व है, उसे अनात्म तत्त्व मानकर अपने आप को केवल इनका साक्षीभूत चेतन जानो और जिसका मन स्वभाव सत्ता में लगकर शीतल जल के समान हो गया है उसको ही समाधिस्थ जानना चाहिए।

इमं गुणसमाहारमनात्मत्वेन पश्यतः।

अंतः शीतलतायासौसमाधिरिति कथ्यते।। उ0 प्र0 56/7

इसी का नाम समाधि है। जो मैत्री, करुणा मुदिता और उपेक्षा आदि गुणों में स्थित होकर आत्मा के दर्शन से शान्तिमान् हुआ है, उसको समाधि कहते हैं।

हे राम! जिसको ऐसा निश्चय हो गया है कि मैं शुद्ध चिदानन्द स्वरूप हूँ और दृश्यों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, उसके लिए घर और बाहर एक समान हैं, फिर वह चाहे कहीं रहे। अन्तःकरण का शान्त होना ही महान् तपों का फल है। जिसने उपर से तो इन्द्रियों का हनन कर लिया है मगर मन से संसार के पदार्थों की चिन्ता करता रहता है, उसकी समाधि व्यर्थ है। उसका तो समाधि में बैठना ऐसा है जैसे कोई उन्मत्त होकर नृत्य करे। देखने में तो व्यवहार करे, मगर मन वासना से अलग हो तो उसको बुद्धिमान् पुरुष समाधि के समान मानते हैं।

वास्तव में वही स्वस्थ आत्मा कहलाने का अधिकारी है और उसी को 'समाधि' कहते हैं। जिसके हृदय से संसार का राग–द्वेष समाप्त हो गया और जिसने शान्ति प्राप्त कर ली, उसको सदिव्य समाधिस्थ जानना चाहिए।

प्रशान्तजगदास्थोंतर्वीतशोकभयैषणः।

स्थोभवतियेनात्मा ससमाधिरितिस्मृतः।। उ0 प्र0 56/20

सम्पूर्ण भाव पदार्थों में आत्मा को अतीत जानना समाहित चित्त कहलाता है। समाहित चित्त वाला व्यक्ति चाहे कितने ही जन समूह में क्यों न रहे, मगर उसका किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, क्योंकि उसका चित्त हमेशा अन्तर्मुख रहता है। वह सोते–बैठते, खाते–पीते, चलते–फिरते जगत् को आकाशरूप मानता है। ऐसे प्राणी को अन्तर्मुखी कहते हैं। क्योंकि उसका हृदय शीतल होने के कारण उसको सम्पूर्ण जगत् शीतल ही भासता है। वह जब तक जीता है तब तक शीतल ही रहता है।

5.4.8 मोक्ष (मुक्ति निरुपण)

मोक्ष का वर्णन करते हुए वशिष्ठ जी, श्री राम से कहते हैं, कि लोक में दो प्रकार की मुक्ति होती है – एक जीवनमुक्ति और दूसरी विदेहमुक्ति। जिस अनाशक्त बुद्धि वाले पुरुष की इष्टानिष्ट कर्मों के ग्रहण त्याग में अपनी कोई इच्छा नहीं रहती, अर्थात् जिस की इच्छा का सर्वथा अभाव हो जाता है, ऐसे पुरुष की स्थिति को तुम जीवनमुक्त अवस्था –सदेहमुक्ति समझो। अर्थात् देह का विनाश होने पर पुनर्जन्म से रहित हुई वही जीवनमुक्ति विदेहमुक्ति कही जाती है।

असंसक्तमतेर्यत्यागदानेषु कर्मणाम्।
नैषणातात्स्थितिं विद्धि त्वं जीवन्मुक्तामिह।।
सैव देहक्षयेरामपुनर्ज्जननवर्जिता।
विदेहमुक्ता प्रोक्ता तत्स्थानायांति दृश्यताम्।। उ0 प्र0 42/12–13

जिन्हें विदेहमुक्ति हो गई है वे फिर जन्म धारण करके दृष्यता को नहीं प्राप्त होते, ठीक उसी तरह, जैसे भुना हुआ बीज जमता नहीं है।

मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान से होती है, कर्म से नहीं। वशिष्ठ जी कहते हैं कि– हे रघुनन्दन! परब्रह्म परमात्मा देवताओं के भी देवता हैं। उसके ज्ञान से ही परम सिद्धि (मोक्ष) की प्राप्ति होती है, क्लेशयुक्त सकाम कर्मों से नहीं। संसार बन्धन की निवृत्ति या मोक्ष की प्राप्ति के लिए ज्ञान ही साधन है।

अयंसदेव इत्येव संपरिज्ञानमात्रतः।

जंतोर्नजायते दुःखजीवन्मुक्तत्त्वमेति च। उ0 प्र0 6/6

सकाम कर्म का इसमें कोई उपयोग नहीं है। क्योंकि मृगतृष्णा में होने वाले जल के भ्रम का निवारण करने के लिए ज्ञान का उपयोग ही देखा गया है। ज्ञान से ही उस भ्रम की निवृत्ति होती है, किसी कर्म से नहीं। सत्संग तथा सत्शास्त्रों के स्वाध्याय में तत्पर होना ही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति में हेतु है। वह स्वाभाविक साधन ही मोह जाल का नाशक होता है जिससे जीव के दुःख का निवारण होकर वह जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त होता है।

नन्दलाल दशोरा। योग वशिष्ठ (महारामायण) पृ0 143

इसलिए आत्मा को सत्य जानकर उसी की भावना करो और संसार को असत् जानकर इसकी भावना का त्याग कर दो, क्योंकि सबका अधिष्ठान आत्मतत्त्व ही है। वह आत्मतत्त्व शुद्धरूप परमशान्त और परमानन्द पद है। उसको प्राप्त कर लेने पर परम सुख की प्राप्ति होती है।

अभ्यास प्रश्न

एक शब्द में उत्तर दीजिए।

1. गीता में कुल कितने अध्याय है।
2. योग वशिष्ठ को किस अन्य नाम से जाना जाता है।
3. यह कथन है– संसार सागर से पार होने की युक्ति का नाम योग है।

5.5 सारांश

गीता एवं योग वशिष्ठ योग के अति महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। गीता के अठारह अध्यायों को क्रमशः निम्न योगों में विभाजित किया है जो इस प्रकार है–

1. अर्जुनविषाद योग, **2**. सांख्य योग, **3**. कर्मयोग, **4**. ब्रह्मयोग, (ज्ञान कर्म सन्यास योग), **5.** कर्म सन्यास योग, **6**. आत्मसंयम योग, **7**. ज्ञानविज्ञान योग, **8.** अक्षरब्रह्म योग, **9**. राजविद्याराजग्रह्य योग, **10**. विभूति योग, **11**. विश्वरूपदर्शन योग, **12.** भक्तियोग, **13**. क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ विभाग योग, **14.** गुणत्रय विभाग योग. **15.** पुरुषोत्तम योग, **16.** दैवासुरसम्पद् विभाग योग, **17.** श्रद्धात्रय विभाग योग एवं **18**. मोक्षसन्यास योग।

योग वशिष्ठ के निर्वाण–प्रकरण में वशिष्ठ मुनि श्री राम जी को योग के स्वरूप के बारे में वर्णन करते हुए कहते हैं कि संसार सागर से पार होने की युक्ति का नाम योग है और वह दो प्रकार का है। एक सांख्य बुद्धि ज्ञान योग और दूसरा प्राण से रोकने का नाम योग बताया है।

5.6 शब्दावली

निर्वाण–मोक्ष, मुक्ति

युक्ति– उपाय

तीक्ष्ण– तेज

उष्ण– गर्मी

5.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1. 18
2. महारामायण
3. योग वशिष्ठ

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीमद्भगवत् गीता – श्री पाद दामोदर सातवलेकर, भारत मुद्रणालय स्वाध्याय मण्डल, सूरत, 1961।
2. योग वशिष्ठ – भाषा (प्रथम खण्ड), पं0 रतिराम शर्मा, देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली – 1961।
3. योग वशिष्ठ – भाषा (द्वितीय खण्ड) पं0 रतिराम शर्मा, देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली – 1962।
4. योगवशिष्ठ महारामायण – पं0 ठाकुर प्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2001।
5. योग वशिष्ठ महारामायण – श्री नन्दलाल दशोरा, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, 2002।

5.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. भगवत गीता में योग की विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
2. योग वशिष्ठ में योग की विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

इकाई–6 बौद्ध एवं जैन दर्शन

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 बौद्ध दर्शन में योग का स्वरूप

6.4 चार आर्य–सत्य

6.4.1 दुःख

6.4.2 दुःख समुदाय

6.4.3 दुःख निरोध

6.4.4 दुःख निरोधगामिनी प्रतिपत्

6.5 बौद्ध दर्शन के अनुसार शील गुण विवेचन

6.6 आसन एवं प्राणायाम निरूपण

6.7 प्रत्याहार धारणा–ध्यान एवं समाधि निरूपण

6.8 जैन दर्शन में योग का स्वरूप

6.9 जैन दर्शन में यम–नियम निरुपण

6.9.1 अहिंसाव्रत

6.9.2 सत्यव्रत

6.9.3 अस्तेयव्रत

6.9.4 ब्रह्मचर्यव्रत

6.9.5 अपरिग्रह

6.10 सारांश

6.11 शब्दावली

6.12 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.14 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध का चरित नितान्त प्रख्यात है। ऐतिहासिक चिंतन के अनुसार बौद्ध धर्म का उदय जैन धर्म के अनन्तर हुआ है। बौद्ध धर्म के दो रूप ऐतिहासिक पृष्ठों में मिलते हैं। पहला शुद्ध धार्मिक रूप जिसमें आध्यात्मिक तत्त्वों के रहस्योद्घाटन को आवश्यक मानकर आचार–मार्ग का जनता के कल्याण के लिए सरल रीति से प्रतिपादन किया गया है। दूसरा दार्शनिक रूप जिसमें बौद्ध तत्त्व विवेचकों ने बुद्ध की आचार शिक्षा के तह में रहने वाले सूक्ष्म सिद्धान्तों का तर्क–निष्णात बुद्धि से गहरा अनुशीलन किया तथा बुद्ध धर्म की धुँधली दार्शनिक रूप–रेखा को स्पष्ट कर दिखलाया गया है। भगवान बुद्ध स्वयं मार्ग का अन्वेषण कर समाधिस्थ होकर अपनी प्रज्ञा से बोधितत्त्व को प्राप्त किया। सारनाथ में कौण्डिन्य आदि पंचवर्गीय पंच भिक्षुओं के सामने अपना प्रथम उपदेश देकर इन्होंने 'धर्म चक्र–प्रवर्तन' किया। जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव माने जाते है। पार्श्वनाथ तैयीसवें तीर्थंकर थे तथा अन्तिम चौबीसवाँ तीर्थंकर महावीर थे। तीर्थंकर उन व्यक्तियों को कहा जाता है जो मुक्त हैं। जैनों ने तीर्थंकर को आदरणीय पुरुष कहा है। तीर्थंकरों को कभी–कभी 'जिन' नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। जिन का अर्थ होता है– विजय प्राप्ति करने वाला। सभी तीर्थंकरों को 'जिन' की संज्ञा से विभूषित किया जाता है, क्योंकि उन्होंने राग–द्वेष पर विजय प्राप्त कर लिया है। अतः इनके द्वारा प्रचारित धर्म 'जैन' कहलाता है।

बौद्ध एवं जैन दर्शन में योग का वर्णन मिलता है। जिसका वर्णन प्रस्तुत इकाई में किया जा रहा है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद–

- बौद्ध दर्शन में योग के स्वरूप का जान सकोगें।
- जैन दर्शन में योग के स्वरूप का जान सकोगें।
- जैन दर्शन तथा बौद्ध दर्शन में योग का तुलनात्मक विश्लेषण कर सकोगें।

6.3 बौद्ध दर्शन में योग का स्वरूप

गौतम बुद्ध का चरित नितान्त प्रख्यात है। भगवान बुद्ध स्वयं मार्ग का अन्वेषण कर समाधिस्थ होकर अपनी प्रज्ञा से बोधितत्त्व को प्राप्त किया। सारनाथ में कौण्डिन्य आदि पंचवर्गीय पंच भिक्षुओं के सामने अपना प्रथम उपदेश देकर इन्होंने 'धर्म चक्र–प्रवर्तन' किया। गौतम बुद्ध ने अपना सम्पूर्ण उपदेश जनसाधारण को 'मागधी' भाषा में दिया। गौतम बुद्ध के समस्त उपदेशों को 'त्रिपिटक' में संग्रह किया गया है। त्रिपिटक को आरम्भिक बौद्ध–दर्शन का मूल और प्रमाणिक आधार कहा जा सकता है। त्रिपिटक शब्द का अर्थ तीन पिटारियाँ

है। इस प्रकार त्रिपिटक बुद्ध शिक्षाओं की तीन पिटारियाँ हैं। सुत्तपिटक, अभिधम्म पिटक तथा विनय पिटक– ये तीन पिटकों के नाम हैं। सुत्तपिटक में धर्म सम्बन्धी बातों की चर्चा है, अभिधम्म पिटक में बुद्ध के दार्शनिक विचारों का संकलन है तथा विनय पिटक में नीति–सम्बन्धी बातों की चर्चा है। त्रिपिटक की रचना का समय तीसरी शताब्दी ई0पू0 माना गया है।

बुद्ध के शिक्षाओं का ध्येय क्लेश–बहुल प्रपंच से उद्धार पाने के लिए सरल आचार–मार्ग का निर्देश करना था। कर्त्तव्य शास्त्र के विषय में बुद्ध ने इन चार आर्य–सत्यों का अपनी सूक्ष्म विवेक बुद्धि से रहस्योद्घाटन किया है– (1) इस संसार में जीवन दुःखों से परिपूर्ण है (दुःखम्), (2) इन दुःखों का कारण विद्यमान है (दुःख समुदायः), (3) इन दुःखों से वास्तविक मुक्ति मिल सकती है (दुःख निरोधः) तथा (4) इस निरोध–प्राप्ति के लिए उचित उपाय भी है (दुःख निरोधगामिनीप्रतिपत्)। इन्हीं सत्यों के सम्यक् ज्ञान के कारण उन्हें सम्बोधि प्राप्त हुई। इन सत्यों का नाम आर्य–सत्य है अर्थात् वह सत्य जिन्हें आर्य (श्रेष्ठ) लोग ही भलि–भाँति जान सकते हैं।

ये चार आर्य–सत्य प्रत्येक साधकों के लिए साधना के पूर्व बौद्ध धर्म में आवश्यक माना गया है। ये चार आर्य–सत्य बौद्ध धर्म के सार हैं। बुद्ध ने चार आर्य–सत्यों की महत्ता को स्वयं 'मज्झिम निकाय' में इस प्रकार स्पष्ट किया है– "इसी से (चार आर्य सत्यों से) अनासक्ति, वासनाओं का नाश, दुःखों का अन्त, मानसिक शान्ति, ज्ञान, प्रज्ञा तथा निर्वाण सम्भव हो सकते हैं।" चार आर्य–सत्यों पर अत्यधिक जोर देना बुद्ध के व्यवहारवाद का प्रमाण कहा जा सकता है। अब यहाँ चार आर्य–सत्यों का विवेचन किया जाता है–

6.4 चार आर्य–सत्य

6.4.1 दुःख–

बुद्ध का प्रथम आर्य सत्य दुःख है। यह संसार दुःखमय है। बुद्ध ने इस निष्कर्ष को जीवन की विभिन्न अनुभूतियों के गहरे विश्लेषण से सत्य माना है। जीवन में अनेक प्रकार के दुःख हैं। रोग, बुढ़ापा, मृत्यु, चिंता, असन्तोष, नैराश्य, शोक आदि सांसारिक दुःखों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस सिलसिले में बुद्ध के ये कथन, जो दुःखों की व्यापकता को प्रमाणित करते हैं, उल्लेखनीय है–

जन्म में दुःख है, नाश में दुःख है, रोग दुःखमय है, मृत्यु दुःखमय है। अप्रिय से संयोग दुःखमय है, प्रिय से वियोग दुःखमय है। संक्षेप में रोग से उत्पन्न पंचस्कन्ध दुःखमय है। यहाँ पर शरीर, अनुभूति, प्रत्यक्ष, इच्छा और विचार को बौद्ध–दर्शन में पंच स्कन्ध माना जाता है।

6.4.2 दुःख समुदाय

बुद्ध का द्वितीय आर्य सत्य दुःख समुदाय है। समुदय का अर्थ है– कारण। अतः दूसरा सत्य है– दुःख का कारण। बिना कारण के कार्य उत्पन्न नहीं होता। कार्य–कारण का नियम अच्छेद्य है। दुःख का हेतु तृष्णा है। बुद्ध के शब्दों में दूसरे आर्य सत्य का वर्णन मज्झिम निकाय में इस प्रकार है–

'हे भिक्षुगण, दुःखसमुदय दूसरा आर्य सत्य है। दुःख का वास्तव हेतु तृष्णा है जो बार–बार प्राणियों को उत्पन्न करती है, विषयों के राग से युक्त है तथा उन विषयों का अभिनन्दन करने वाली है। यहाँ और वहाँ सर्वत्र अपनी तृप्ति खोजती रहती है। यह तृष्णा तीन प्रकार की है– काम तृष्णा, भव तृष्णा तथा विभव तृष्णा। संक्षेप में दुःख समुदाय का यही स्वरूप है।'

परन्तु इस दुःख के उत्पत्ति के लिए केवल एक ही कारण नहीं है, प्रत्युक्त कारणों की एक लम्बी श्रृंखला है जो द्वादश निदान के नाम से जाना जाता है। ये द्वादश निदान हैं– (1) जरामरण, (2) जाति, (3) भव, (4) उपादान, (5) तृष्णा, (6) वेदना, (7) स्पर्श, (8) षडायतन, (9) नामरूप, (10) विज्ञान, (11) संस्कार तथा (12) अविद्या। इन्हीं द्वादश निदानों का दूसरा नाम 'प्रतीत्यसमुत्पाद' है, जो बौद्ध धर्म का मौलिक सिद्धान्त माना जाता है। इसका अर्थ है– किसी वस्तु की प्राप्ति होने पर अन्य वस्तु की उत्पत्ति। इनकी संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है–

'जरामण का कारण है जाति, जन्म लेना, जाति का कारण है भव, अर्थात् पुनर्जन्म उत्पन्न करने वाले कर्म। वसुबन्धु ने 'भव' का यही अर्थ किया है।

यद् भविष्यद्भवफलं कुरुते कर्म तद्भावः। अभिधर्मकोश – 3/24

भव उत्पन्न होता है उपादान से – आसक्ति से। उपादान अनेक प्रकार के होते हैं– कामोपादान (स्त्री में आसक्ति), शीलोपादान (व्रतों में आसक्ति) और इनसे कहीं बढ़कर है आत्मोपादान (आत्मा को नित्य मानने में आसक्ति), आसक्ति पैदा होती है तृष्णा–इच्छा के कारण, वेदना तृष्णा की जननी है। वेदना का उद्‌गम स्थल है स्पर्श, स्पर्श उत्पन्न होता है षडायतन से, षडायतन का कारण है नामरूप, नाम रूप की सत्ता विज्ञान पर प्रतिष्ठित है। यह विज्ञान संस्कार से उत्पन्न होता है, जो स्वयं अविद्या का कार्य है। इस प्रकार समस्त दुःख पुंजों का आदि कारण अविद्या ही है।

6.4.3 दुःख निरोध

तृतीय आर्य–सत्य दुःख निरोध है। द्वितीय आर्य–सत्य में बुद्ध ने दुःख के कारण को माना है। यदि दुःख के कारण का अन्त हो जाए तो दुःख का भी अन्त अवश्य होगा। कारण की सत्ता पर ही कार्य की सत्ता अवलम्बित रहती है। यदि कारण परम्परा का निरोध कर दिया जाए तो आप से आप कार्य का निरोध हो जाएगा। मूल कारण अविद्या का विद्या

के द्वारा निरोध कर देने पर दुःख निरोध अवश्य हो जाता है। दुःख निरोध को बुद्ध ने निर्वाण कहा है।

निर्वाण के विषय में बुद्ध धर्म के सम्प्रदायों में बड़ा मतभेद है परन्तु यहाँ इतना ही समझना पर्याप्त होगा कि 'निर्वाण' जीवनमुक्ति का ही बौद्ध संकेत है। 'अंगुत्तर निकाय' में निर्वाण प्राप्त पुरुष की उपमा शैल से दी गई है। प्रचण्ड झंझावत पर्वत को स्थान से च्युत नहीं कर सकता, भयंकर आँधी के चलने पर भी पर्वत एकरस, अडिग, अच्युत बना रहता है। ठीक यही दशा निर्वाण प्राप्त व्यक्ति की है।

सेलो यथा एकघनो वातेन म समीरति।

एवं रूपा, रसा, सद्दा, गन्धा, फरूसा च केवला।।

इठ्ठा धम्मा अनिष्ठा च, न पवेधेन्ति तादिनो।

ठितं चित्तं विप्पमुत्तं वसं यस्सानुपस्सति।। अंगुत्तर निकाय – 3/52

रूप, रस, गन्धादि विषयों के थपेड़े उसके ऊपर लगातार पड़ते रहते हैं, परन्तु उसके शान्त चित्त को किसी प्रकार भी क्षुब्ध नहीं करते। आस्रवों से विरहित होकर वह पुरुष अखण्ड शान्ति का अनुभव करता है।

6.4.4 दुःख निरोधगामिनी प्रतिपत्

यह चतुर्थ आर्य–सत्य है। यही दुःख निरोध तक पहुँचाने वाला मार्ग है। इस मार्ग को दुःख निरोध मार्ग कहा जाता है। इसी मार्ग को बौद्ध धर्म में आर्य अष्टांगिक– मार्ग कहा गया है। ये आठ अंग हैं– (1) सम्यक् ज्ञान, (2) सम्यक् संकल्प, (3) सम्यक् वचन, (4) सम्यक् कर्म, (5) सम्यक् आजीव, (6) सम्यक् व्यायाम, (7) सम्यक् स्मृति तथा (8) सम्यक् समाधि।

अयमेव अरियो अट्ठगिको मग्गो संय्यथीदं – सम्मादिट्ठि, सम्मासंकप्पो, सम्मावाचा,

सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मपासती, सम्मासमाधि।।

संयुक्त निकाय – 5/2

इस अष्टांगिक मार्ग के यथार्थ सेवन से प्रज्ञा उत्पन्न होता है और निर्वाण की सद्यः प्राप्ति हो जाती है। इन आठों अंगों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

(1) सम्यक् (दृष्टि) ज्ञान – बुद्ध ने दुःख का मूल कारण अविद्या को माना है। अविद्या के फलस्वरूप मिथ्या ज्ञान (दृष्टि) का प्रादुर्भाव होता है और मिथ्या–ज्ञान के कारण अवास्तविक वस्तु को वास्तविक समझा जाता है। जो आत्मा नहीं है, उसे आत्मा मान लेता है। मिथ्या–दृष्टि का अन्त सम्यक् दृष्टि (ज्ञान) से ही सम्भव है। सम्यक दृष्टि का अर्थ बुद्ध के चार आर्य–सत्यों का यथार्थ ज्ञान है।

(2) सम्यक् संकल्प – बुद्ध के चार आर्य–सत्यों का जीवन में पालन करने का निश्चय ही सम्यक् संकल्प है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जो अशुभ है उसे न करने का संकल्प ही सम्यक् संकल्प है।

(3) सम्यक् वचन – सत्य और प्रिय वचनों का प्रयोग ही सम्यक् वचन है। मृषा वचन, पैशून्य वचन, कर्कश वचन एवं अनर्थ पूर्ण वचनों से विरति होना सम्यक् वचन है।

(4) सम्यक् कर्म– अशुभ कर्मों के निरोधपूर्वक निर्वाण प्राप्ति में सहायक कर्मों का अनुष्ठान करना ही सम्यक् कर्म है। बुद्ध के अनुसार बुरे कर्म तीन हैं– हिंसा, स्तेय, और इन्द्रिय भोग। इन तीनों बुरे कर्मों का त्याग करना ही सम्यक् कर्म कहा जाता है।

(5) सम्यक् आजीव – किसी को बिना पीड़ा पहुँचाते हुए न्यायपूर्ण रीति से जीविकोपार्जन करना ही सम्यक् आजीव है।

यथापि भमरो पुटफं वण्णगन्धं अहढ़ेयं।

पलेति रसमादाय एवं गामे मुनि चरे।। धम्मपद, पुप्फवग्ग गाथा 6

झूठी जीविका को छोड़कर सच्ची जीविका के द्वारा शरीर का पोषण करना सम्यक् आजीव है।

(6) सम्यक् व्यायाम – इन्द्रियों पर संयम, बुरी भावनाओं को रोकने और अच्छी भावनाओं को उत्पन्न करना तथा अच्छी भावनाओं के कायम रखने का प्रयास – ये सम्यक् व्यायाम हैं।

(7) सम्यक् स्मृति – काय, वेदना, चित्त तथा धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानना तथा उसकी स्मृति सदा बनाये रखना सम्यक् स्मृति कहलाता है।

(8) सम्यक् समाधि – एकाग्रचित्त द्वारा तत्त्वों की भावना ही समाधि है। समाधि से उत्पन्न प्रज्ञा द्वारा तत्वों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है।

बुद्ध के आर्याष्टांगिक मार्ग को शील, समाधि एवं प्रज्ञा इन तीन भागों में विभाजित किया गया है जो कि बौद्ध धर्म में 'शिक्षात्रय' के नाम से प्रसिद्ध है। यह शिक्षात्रय, योगांगो में अष्टांग योग को प्रदर्शित करता है। अब यहाँ शिक्षात्रय का वर्णन किया गया है।

6.5 बौद्ध दर्शन के अनुसार शील गुण विवेचन

बुद्ध ने 'शील' के द्वारा शारीरिक शोधन पर विशेष जोर दिया है। शील से समग्र सात्त्विक कर्मों का तात्पर्य है। भिक्षु तथा गृहस्थ दोनों के कतिपय साधन शील हैं जिनका पालन करना प्रत्येक बौद्ध का कर्त्तव्य है। अहिंसा, अस्तेय, सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य तथा नशा का सेवन न करना – ये 'पंचशील' कहे जाते हैं। इनकी व्यवस्था दोनों के लिए समान है, परन्तु भिक्षुओं के लिए अन्य पांच शीलों का उपदेश है– अपराहन् भोजन, मालाधारण, संगीत, सुवर्ण–रजत तथा महार्घ शय्या आदि इन पाँचों वस्तुओं का त्याग। पूर्व पाँच शीलों

को मिलाकर इन्हें 'दस शील' (दश सत्कर्म) कहते हैं। गृहस्थ के लिए अपने माता, पिता, आचार्य, पत्नी, मित्र, सेवक तथा श्रमण–ब्राह्मणों का सत्कार प्रतिदिन करना चाहिए। बुरे कर्मों के अनुष्ठान से सम्पत्ति का नाश अवश्यम्भावी होता है। नशा सेवन, चौरस्ते की सैर, समाज (नाच–गाना) का सेवन, जुआ खेलना, दुष्ट मित्रों का संग तथा आलस्य में फँसना– ये छओं सम्पत्ति के नाश के कारण हैं। बुद्ध ने गृहस्थों के लिए भी इनका निषेध आवश्यक बतलाया है।

शीलों के फल के बारे में बताते हुए कहा गया है कि शील में प्रतिष्ठित होने पर ही समाधि की भावना संभव है। शील में प्रतिष्ठा के बिना कुलपुत्रों का बौद्ध शासन में प्रवेश नहीं हो सकता।

सासने कुलपुत्तानं पतिट्ठा नत्थि यं बिना।

आनि संसपरिच्छेद तस्स सीलस्स को वदे।। विसुद्धिमग्गो – 1/23

विभिन्न ग्रन्थों में शील का अनेक प्रकार से निरुपण है। जिनमें से कुछ का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

महावग्ग में श्रमणों हेतु दस शील का निरुपण हुआ है–

1. पाणातिपातावेरमणी (जीव हिंसा से विरति)
2. अदिन्नादाना वेरमणी (चोरी से विरति)
3. अब्रह्मचर्या वेरमणी (अब्रह्मचर्य से विरति)
4. मुसावादा वेरमणी (मृषा वचन से विरति)
5. सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणी (मद्यपान से विरति)
6. विकाल भोजना वेरमणी
7. नच्चगीतवादित वेरमणी
8. मालागन्धविलेपन वेरमणी
9. उच्चासयनमहासयना वेरमणी
10. जातरूपरजतपट्ठिग्गहना वेरमणी (महावग्ग, 1/47/106)

विसुद्धिमग्गों में प्रातिमोक्ष संवर शील, इन्द्रिय संवर शील, प्रत्यय सन्निश्रित शील आदि प्रमुख शील बताए गये हैं। प्रातिमोक्ष संवर शील बौद्ध शासन की आचार संहिता है। भिक्षु के लिए यह आवश्यक बताया गया है कि 'वह प्रातिमोक्ष से संयमित होकर विहार करे। '

6.6 आसन एवं प्राणायाम निरूपण

यह कर्मस्थान अत्यन्त सूक्ष्म है, अतः इसे कोलाहल से रहित निर्जन प्रदेश में ही सम्पन्न किया जा सकता है। आचार्य के पास जाकर, कर्मस्थान योग्य स्थल को पूछकर, आचार्य द्वारा बताये गये स्थान पर ही आसन लगाना चाहिए।

इस कर्मस्थान को प्रारम्भ करते हुए भिक्षु को पर्यंक बद्ध होकर शरीर के ऊपरी भाग को सीधा करके बैठना चाहिए। इस प्रकार के आसन से योगी को वेदना नहीं होती एवं चित्त सुगमतया एकाग्र हो जाता है।

तत्थ पल्लंकति समन्ततो उरूबद्धासन। आमुजित्वा तिबन्धित्वा।

तासु अनुप्पज्जमानासु चित्त एकग्गं होति।। विसुद्धिमग्गो – 8/100

चित्त की एकाग्रता होने के पश्चात् योगी स्मृतिपूर्वक दीर्घ एवं सूक्ष्म आश्वास–प्रश्वास करता है। आश्वास–प्रश्वास की दीर्घ–ह्स्वता का काल निमित्त होती है। भिक्षु नव प्रकार से आश्वास–प्रश्वास की क्रिया को स्मृतिपूर्वक सम्पन्न करता हुआ 'कायानुपश्यना' स्मृति उपस्थान की भावना करता है।

भिक्षु आश्वास–प्रश्वास के क्रम सूक्ष्म, सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम आश्वास–प्रश्वास दोनों क्रियाओं को दीर्घ काल तक करता है। इस भावना के द्वारा प्रामोद्य की उत्पत्ति होती है। प्रामोद्य भावना के उत्कर्ष से क्रमपूर्वक श्वास–प्रश्वास अत्यन्त सूक्ष्मभाव को प्राप्त होते हैं।

6.7 प्रत्याहार धारणा–ध्यान एवं समाधि निरूपण

भिक्षु नव प्रकार से लम्बा आश्वास–प्रश्वास कर रहा हूँ, जानता हुआ कायानुपश्यना, स्मृति उपस्थान की भावना करता है। इस भावना द्वारा भिक्षु यह जान लेता है कि यह शरीर अनित्य, अशुचि एवं अनात्मभावरूप है। तब "इस भावना द्वारा भिक्षु कार्य में अहंभाव, ममभाव न देखकर कार्य को कायमात्र ही समझता है। यही स्मृति पूर्वक काय की अनुपश्यना की जाती है, अतः इस भावना को कायानुपश्यना स्मृति उपस्थान कहा जाता है। इस प्रकार की भावना से आश्वास–प्रश्वास इतने सूक्ष्म हो जाते हैं कि उनके अस्तित्व का भी बोध नहीं होता। फलस्वरूप काय एवं चित्त शान्त हो जाते हैं।

अनुबन्धना (आश्वास–प्रश्वास को निरन्तरता बनाये रखने का अभ्यास) के निरन्तर अभ्यास से अर्पणा हेतु चित्त एकाग्र होता है तत्पश्चात् अनुबन्धना, स्पर्श एवं स्थापना तीनों द्वारा धर्म स्थान (ध्यान) की भावना की जाती है।

इस भावना के फलस्वरूप प्रतिभाग निमित्त का उदय होता है। यह प्रतिभाग निमित्त सबका एक सदृश नहीं होता है। अट्ठ कथाओं के अनुसार यह तारे की प्रभा, मार्ग मुक्ता, कर्कशस्पर्श वाला कपास का बीज, लकड़ी के हीर से निर्मित सुई, पामंग धागा, पुष्पमाला,

अग्नि, मकड़ी की जाला, मेघघटा, पद्म पुष्प, रथ चक्र, चन्द्र मण्डल एवं सूर्यमण्डल के सदृश दृष्टिगोचर होता है।

कुशल चित्त की एकाग्रता समाधि है।

"चित्तैकाग्रतालक्षणः समाधिः।" (बोधिचर्यावतार – 8/4)

समाधि दो प्रकार की होती है – **(1)** रूप समाधि, **(2)** अरूप समाधि।

रूप समाधि

रूपवान् विषय जिस समाधि का आलम्बन होता है, उसे रूप समाधि की संज्ञा दी गयी है। रूप समाधि चार भागों में विभक्त है। प्रथम रूप समाधि में वितर्क, विचार, प्रीति, सुख एवं एकाग्रता ये ध्यानांग विद्यमान रहते हैं परन्तु इसमें वितर्क एवं विचार की प्रधानता रहती है।

कत्थ वितक्कनं वितक्को, ऊहनं ति वुत्तो होति। विसुद्धिमग्गो – 4/75

अभ्यास के कारण वितर्क विचारों के उपशम द्वारा चित्त की एकाग्रता से युक्त प्रीति सुख वाला द्वितीय रूप समाधि उत्पन्न होता है। इस ध्यान में प्रीति, सुख एवं एकाग्रता ये तीन अंग निहित होते हैं।

द्वितीय ध्यान के सिद्ध होने के उपरान्त उसकी दृढता के लिए पंचवशी का अभ्यास करके द्वितीय ध्यान को दृढ़ करने के पश्चात् 'द्वितीय ध्यान वितर्क एवं विचार का समीपवर्ती है एवं वहाँ चित्त स्थूल प्रीति से युक्त होने के कारण हर्षोत्फुल्ल रहता है, अतः यह ध्यान भी दुर्बल एवं स्थूल है, ऐसा विचार कर द्वितीय ध्यान से विरक्त हो तृतीय ध्यान का अनुष्ठान किया जाता है। सुख एवं एकाग्रता इस ध्यान के दो अंग है।

तृतीय ध्यान को दृढ़ करने के पश्चात् चतुर्थ ध्यान के अनुष्ठान का विधान है। साधक विचार करता है कि 'तृतीय समापत्ति विपक्षी प्रीति के समीप है प्रीति का सुख स्थूल है, इस प्रकार सुख से स्थूल होने से एवं अंगो के दुर्बल होने से तृतीय ध्यान त्याज्य है, ऐसा विचार कर चतुर्थ ध्यान की प्राप्ति का निश्चय कर चतुर्थ ध्यान की भावना करता है।

अरूप समाधि

चार रूप ध्यानों की प्राप्ति होने पर और ऊँची भूमि में प्रतिष्ठित होने हेतु अरूप समाधि की भावना करनी चाहिए। जब साधक चतुर्थ रूप ध्यान का अतिक्रमण कर वहाँ स्थित प्रतिभाग निमित्त में स्थित कसिण रूप के भी निवारण कर देता है तब अरूप समाधि की सिद्धि होती है। अरूप समाधि की सिद्धि से सभी प्रकार के रूपों का अतिक्रमण हो जाता है। अरूप समाधि चार प्रकार की होती है– (1) आकाशनन्त्यायतनु, (2) विज्ञानानन्त्यायतन, (3) आकिंचन्यायतन एवं (4) नैवसंज्ञानासज्ञायतन।

6.8 जैन दर्शन में योग का स्वरूप

भारतवर्ष में जिस समय बौद्ध दर्शन का विकास हो रहा था उसी समय जैन दर्शन भी विकसित हो रहा था। दोनों दर्शन छठी शताब्दी में विकसित होने के कारण समकालीन दर्शन कहे जा सकते हैं।

जैन मत के विकास और प्रचार का श्रेय अन्तिम तीर्थंकर महावीर को दिया जाता है। इन्होंने ने ही जैन धर्म को पुष्पित एवं पल्लवित किया। जैन मत मुख्यतः महावीर के उपदेशों पर ही आधारित है।

जैन दर्शन का साहित्य अत्यन्त विशाल है। आरम्भ मे ंजैनों का दार्शनिक साहित्य प्राकृत भाषा में था। आगे चलकर जैनों ने सस्ंकृत को अपनाया जिसके फलस्वरूप जैनों का साहित्य संस्कृत में विकसित हुआ। संस्कृत में 'तत्त्वार्थाधिगम सूत्र' अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ है।

जैन धर्म में दो सम्प्रदाय स्वीकार किये गये हैं, पहला दिगम्बर और दूसरा श्वेताम्बर। जो श्वेत वस्त्रों को धारण करते हैं, उसे श्वेताम्बर सम्प्रदाय समझा जाता है तथा जो नग्न अवस्था में रहते हैं, उसे दिगम्बर सम्प्रदाय समझा जाता है।

दिगम्बर सम्प्रदाय में धार्मिक नियमों की उग्रता दिखाई पड़ती है, पर श्वेताम्बर ने मानव कमजोरियों का स्मरण कर कुछ अंशों में कठोर नियमों में शिथिलता ला दी है।

जैन परम्परा का आधार प्राचीन वैदिक संस्कृति ही है तथापि निःसन्देह कहा जा सकता है कि जैनाचार्यों ने प्राचीन परम्परा का पुनरुत्थान कर, दार्शनिक वाद–विवाद में न पड़कर, श्रमण मुनि एवं निवृति मार्गी यतियों की परम्परा में मूल आधार योग के प्रचार प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। जैन सम्प्रदाय द्वारा प्रवर्तित योग विद्या का अनुसरण कर अनेक जैनाचार्यों ने निर्वाण की प्राप्ति की है। यह तथ्य प्रसिद्ध जैनाचार्य 'कुन्दकुन्द' की कृति 'नियमसार' के इस कथन से प्रमाणित हो जाता है– 'वृषभादि जिनवरेन्द्र इस प्रकार योग की उत्तम भक्ति करके निवृत्ति सुख को प्राप्त हुए हैं, इसलिए योग की उत्तम भक्ति तू भी कर।

जैन धर्म के वास्तविक एवं अन्तिम तीर्थंकर महावीर का जीवन चरित्र योग का ज्वलंत उदाहरण है। इन्होंने पूर्व जन्मों में संस्कार वश, युवावस्था में ही विरक्त होकर, गृहत्याग करके तपस्या करते हुए बारह वर्ष से अधिक समय तक मौन धारण करके, अत्यन्त कठोर तप का अनुसरण कर, योगाभ्यास द्वारा आत्मज्ञान को प्राप्त कर निर्वाण लाभ किया। इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि जैन धर्म में भी योग–विद्या का स्वरूप किसी न किसी रूप में अवश्य प्राप्त होता है।

योग शब्द 'युज्' धातु से बना है। यह धातु मुख्य रूप से दो अर्थों में प्रयुक्त की गयी है। एक धातु का अर्थ मिलन या संयोग तथा दूसरी धातु का अर्थ समाधि से लिया गया है। इनमें से प्रथम अर्थ मिलन या संयोग को जैन आचार्यों ने योग के रूप में स्वीकार किया है। अनेक योग सम्प्रदायों की भाँति जैन सम्प्रदायों में भी आत्मा एवं परमात्मा के संयोग को ही योग माना गया है।

योग को परिभाषित करते हुए नियमसार में कहा है कि आत्मप्रयत्न सापेक्ष विशिष्ट जो मनोगति है, उसका ब्रह्म में संयोग होना योग कहलाता है।

जो यह आत्मा, आत्मा को आत्मा के साथ निरन्तर जोड़ता है, वह मुनीश्वर निश्चय ही योग भक्ति वाला है।

आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते।।
आत्मानमात्मायं युतक्त्येव निरन्तरम्।
स योग भक्तियुतः स्यान्निश्चयेन मनीश्वरः।।
नियमसारः कुन्दकुन्द, प0भ0अ0गा0 137

जैन सम्प्रदाय में यह स्वीकार किया गया है कि निर्मल मन द्वारा ही आत्मस्वरूप प्रकाशित हो सकता है।

पातंजल योगदर्शन में योग का लक्षण बताते हुए कहा है – चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग है। **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।** (यो0 सू0 1/2)। इसी को जैन सम्प्रदाय में इस प्रकार कहा है–

जिसका मन रूपी जल विषय कषाय रूपी प्रचण्ड पवन से नहीं चलायमान होता है, उसी भव्य जीव की आत्मा निर्मल होती है एवं शीघ्र प्रत्यक्ष हो जाती है।

जिसने शीघ्र ही मन को वश में करके यह आत्मा परमात्मा में नहीं मिलाया, वह योग से क्या कर सकता है? इसी बात को और स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जिन पुरुषों ने विषय कषायों में जाता हुआ मन कर्म रूपी अंजन से रहित भगवान् में युक्त किया (वे ही मोक्ष कारण के अनुयायी हैं) यही मोक्ष का कारण है, दूसरा अन्य कोई भी तन्त्र अथवा मन्त्र नहीं है।

आशय यह है कि जो कोई भी संसारी जीव शुद्धात्मभावना से उल्टे विषयकषायों में जाते हुए मन को वीतराग–निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा पीछे हटाकर निज शुद्धात्म द्रव्य में स्थापन करता है, वही मोक्ष पाता है। दूसरा कोई मन्त्र, तन्त्रादि में चतुर होने पर भी मोक्ष का अधिकारी नहीं होता है।

जेण णिरंजणि मणु धरिउ विसय–कसायहिं जंतु।

मोक्खहं कारणु एत्तहु अण्णु ण तंतु ण भंतु।।

परमात्मप्रकाशः जुइन्दु देव, अध्याय–1, दोहा 123

6.9 जैन दर्शन में यम–नियम निरुपण

जिस प्रकार अन्य योग ग्रन्थों में यम–नियम का पालन प्रथमतः अनिवार्य माना गया है, उसी प्रकार जैन–शास्त्र में भी पंचमहाव्रत का अनुष्ठान सर्वप्रथम आवश्यक रूप से अपेक्षित है। ये पंचमहाव्रत इस प्रकार हैं– 1. अंहिसाजन्यव्रत, 2. सत्यव्रत, 3. अस्तेयव्रत, 4. ब्रह्मचर्यव्रत, 5. अपरिग्रहव्रत।

तत्त्वार्थसूत्र में इन व्रतों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन, ब्रह्मचर्य, परिग्रह इनसे मन, वचन, काय का निवृत्त होना ही व्रत है।

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मयर्चपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्। तत्त्वार्थसूत्रः उमास्वाति 7/1

अब यहाँ पंच–महाव्रतों का वर्णन किया जा रहा है–

6.9.1 अंहिसाव्रत

मनुष्य, जानवर, पक्षी अथवा स्थावर प्राणियों को मन, वचन और काय से किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाना अंहिसा है। मूलाचार में इस व्रत का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि एकेन्द्रिय आदि जीव पाँच प्रकार के होते हैं। पाप भीरु को सम्यक् प्रकार से मन, वचन, कायपूर्वक सर्वत्र इन जीवों की कदापि हिंसा नहीं करनी चाहिए।

एइंदियादिपाणां पंचविहाज्जभिरुणां सम्मं।

ते खलुणहि सिदत्वा मणवचिकायेण सत्वत्थ।। मूलाचार, प0 अ0 गा0 289

अहिंसा व्रत का अबाध रूप से पालन हो सके इसलिए सभी व्रतों की पाँच–पाँच भावनाएं निर्धारित की गयी हैं जो इस प्रकार है–

1. वाग्गुप्ति–वचन द्वारा विषयों में जाने वाली इन्द्रियों की प्रवृति से आत्मा की रक्षा करना।
2. मन के द्वारा विषयों में जाने वाली प्रवृत्ति से आत्मा की रक्षा करना।
3. जन्तुओं की रक्षा करते हुए सावधानी पूर्वक गमन करना।
4. आसनादि को देखकर सतर्कता पूर्वक ग्रहण करना।
5. देखकर किसी वस्तु को खाना या पीना।

6.9.2 सत्यव्रत

सभी कालों में सर्वदा प्रिय, परिणाम में सुखद, कल्याणकारी वचन बोलना सत्य महाव्रत है। सत्यव्रत का स्वरूप निश्चित करते हुए नियमसार में उल्लिखित है कि रागद्वेष अथवा मोह से होने वाले मृषा भाषा के परिणाम को जो साधु छोड़ता है, उसी को सदा दूसरा व्रत होता है।

राणेण वा दासेण मोहेण वा मोसभांसपरिणामं।

जो पजहादि साहु सया विदियवद होई तस्सेव।।

नियमसारः कुन्दकुन्द, व0 अ0 गा0 –57

मूलाचार में सत्यव्रत की पांच भावनाओं का निदर्शन इस प्रकार किया गया है– 1. वाणी विवेक, 2. क्रोध त्याग. 3. लोभ त्याग. 4. भय त्याग. 5. हास्य त्याग। अर्थात् हास्य, भय, क्रोध और लोभ से मन, वचन के द्वारा सभी काल में असत्य नहीं बोले, क्योंकि वैसा करने वाला असत्यभाषी होता है।

हस्सभ्यकोहलोहो मणिवचिकायेण सव्वालम्मि।

मोसं ण हि भासिज्जो पंचयघादी हवदि एसो।। मूलाचारः प0 गा0 290

6.9.3 अस्तेयव्रत :–

अस्तेयव्रत का निरुपण करते हुए मूलाचार में कहा है कि ग्राम में, नगर में तथा अरण्य में जो भी स्थूल सचित्त और बहुल तथा इनसे प्रतिपक्ष सूक्ष्म अचित्त और अल्प वस्तु है उनका बिना किसी के दिये मन, वचन, कायपूर्वक त्याग करना चाहिए।

गामेणगरे रण्णे थूलं सचित्तं बहु सपडिवक्खं।

तिविहेण वज्जिदव्वं अदिण्णगहणं च तण्णिचं।। मूलाचार, प0 गा0 291

अस्तेय व्रत की पाँच भावनाओं का उल्लेख तत्त्वार्थसूत्र में निम्न प्रकार किया है जो इस प्रकार है–

1 **अनुविचिग्रहयाचनः–** सम्यक् विचार करके उपयोग के लिए आवश्यक अवग्रह–स्थान की याचना करना अनुविचिग्रहयाचन है।

2 **अभीक्ष्य अवग्रहयाचनः–** राजा, कुटुम्बादि से जो स्थान (वस्तु) मांगने में विशेष औचित्य हो, उनसे वही स्थान मांगना तथा एक बार देने के बाद मालिक ने वापिस ले लिया हो, फिर भी रोगादि के कारण विशेष आवश्यक होने पर उसके स्वामी से इस प्रकार बार–बार लेना कि उसको क्लेश न होने पाये, अभीक्ष्य–अवग्रहयाचन है।

3 **अवग्रह धारण :–** मालिक से मांगते समय अवग्रह का परिमाण निश्चित कर कोई वस्तु ग्रहण करना अवग्रह धारण है।

4 **साधर्मिक अवग्रहयाचनः–** अपने से पहले दूसरे किसी समानधर्मी ने कोई वस्तु ले ली हो और उसी वस्तु को उपयोग में लाने का प्रसंग आ जाय तो उस साधर्मिक से ही याचना करना साधर्मिक अवग्रह याचन है।

5 **अनुज्ञापितपान भोजन :–** विधिपूर्वक अन्नपानादि लाने के बाद गुरु के समक्ष रखकर उनकी अनुज्ञापूर्वक ही उपयोग करना अनुज्ञापितपान भोजन है।

6.9.4 ब्रह्मचर्यव्रत :–

ब्रह्मचर्यव्रत के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए निमयसार में कहा गया है कि स्त्रियों का रूप देखकर उनके प्रति वांछाभाव की निवृत्ति अथवा मैथुन संज्ञारहित जो परिणाम है वह ब्रह्मचर्य व्रत है। ब्रह्मचर्य व्रत का स्थान साधना मार्ग में महत्त्वपूर्ण है। मूलाचार में ब्रह्मचर्य व्रत के फल का उल्लेख करते हुए कहा है कि चिरकाल तक ब्रह्मचर्य का उपासक शेषकर्म को दूर करके क्रम से विशुद्ध होता हुआ शुद्ध होकर सिद्ध गति को प्राप्त कर लेता है।

चिरउसिदवं भयारी पप्फोदेदूण सेसयं कम्मं।

अणुपुव्वीय विसुद्धो सुद्धो सिद्धिगदिं जादि।।

मूलाचारः वट्टकेराचार्य, प0 गा0 102

6.9.5 अपरिग्रह :–

मूलाचार में अपरिग्रहव्रत के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि ग्राम, नगर, अरण्य, स्थूल सचित्त और बहुत तथा स्थूलादि से विपरीत सूक्ष्म अचित्त ऐसे अन्तरंग, बहिरंग परिग्रह को मन, वचन, काय द्वारा छोड़ देवें।

गामं णगरं रण्णं थूलं सच्चित्तं वहु सपडिवक्खं।

अज्झत्थ बहिरत्थं तिविहेण परिग्गहव्वजे।।

मूलाचारः वट्टकेयराचार्य, प0 गा0 213

'योगसार' में अपरिग्रहव्रत के फल का निरुपण करते हुए कहा है कि जितेन्द्र देव का कथन है कि यदि व्रत एवं संयम से युक्त होकर जीव निर्मल आत्मा को पहचानता है तो शीघ्र ही सिद्धि सुख पाता है।

जई जिम्मल अप्पा मुणइ वय–संजमा–संजुत्तु।

तो लहु पावइ सिद्धि सुह इड जिणणाहहं उत्तु।।

योगसारः आचार्य जुइन्दु, दोहा 30 पृ0 366

अपरिग्रहव्रत की पाँच भावनांए निम्नलिखित है–

1 श्रोत्रेन्द्रिय के विषय शब्द के प्रति रागद्वेष रहितता।
2 चक्षुरिन्द्रिय के विषय रूप के प्रति अनासक्त भाव।
3 घ्राणेन्द्रिय के विषय गन्ध के प्रति अनासक्त भाव।
4 रसनेन्द्रिय के विषय रस के प्रति अनासक्त भाव।
5 स्पर्शनेन्द्रिय के विषय स्पर्श के प्रति अनासक्त भाव।

इस प्रकार अहिंसाादि ये पंचमहाव्रत को योग सम्प्रदायों में यम कहा गया है। पातंजल योग मे ंतो स्पष्ट रूप से यमों को सार्वभौम महाव्रत की संज्ञा दी गयी है।

अभ्यास प्रश्न–

एक शब्द में उत्तर दीजिए–

1– यमों की कितनी संख्या है।

2– बौद्ध धर्म के संस्थापक कौन थे।

3– जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर माना जाता है।

6.10 सारांश

भगवान बुद्ध ने स्वयं योग मार्ग का अन्वेषण कर समाधिस्थ होकर अपनी प्रज्ञा से बोधितत्त्व को प्राप्त किया। सारनाथ में कौण्डिन्य आदि पंचवर्गीय पंच भिक्षुओं के सामने अपना प्रथम उपदेश देकर इन्होंने 'धर्म चक्र–प्रवर्तन' किया। गौतम बुद्ध ने अपना सम्पूर्ण उपदेश जनसाधारण को 'मागधी' भाषा में दिया। गौतम बुद्ध के समस्त उपदेशों को 'त्रिपिटक' में संग्रह किया गया है। त्रिपिटक की रचना का समय तीसरी शताब्दी ई0पू0 माना गया है। जैन मत के विकास और प्रचार का श्रेय अन्तिम तीर्थंकर महावीर को दिया जाता है। इन्होंने ने ही जैन धर्म को पुष्पित एवं पल्लवित किया। जैन मत मुख्यतः महावीर के उपदेशों पर ही आधारित है। जैन दर्शन का साहित्य अत्यन्त विशाल है। आरम्भ मे ंजैनों का दार्शनिक साहित्य प्राकृत भाषा में था। आगे चलकर जैनों ने सस्कृत को अपनाया जिसके फलस्वरूप जैनों का साहित्य संस्कृत में विकसित हुआ। जैन धर्म में दो सम्प्रदाय स्वीकार किये गये हैं, पहला दिगम्बर और दूसरा श्वेताम्बर। जो श्वेत वस्त्रों को धारण करते हैं, उसे श्वेताम्बर सम्प्रदाय समझा जाता है तथा जो नग्न अवस्था में रहते हैं, उसे दिगम्बर सम्प्रदाय समझा जाता है। प्रस्तुत इकाई में आपने जैन तथा बौद्ध दर्शन में योग के स्वरूप का अध्ययन किया।

6.11 शब्दावली

श्रोत्रेन्द्रिय– सुनने वाली इन्द्रिय।
चक्षुरिन्द्रिय –देखने वाली इन्द्रिय।
घ्राणेन्द्रिय –सूघने वाली इन्द्रिय।
रसनेन्द्रिय –चखने वाली इन्द्रिय।
स्पर्शनेन्द्रिय –छूने का आभाष कराने वाली इन्द्रिय।
सम्यक– ठीक–ठीक

6.12 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर–

1– 5 2– महात्मा बुद्ध 3– ऋषभदेव

6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- भारतीय दर्शन – आ0 बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1991।
- बौद्ध दर्शन मीमांसा – आ0 बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1954।
- भारतीय दर्शन की रूपरेखा – प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसी दास, 2002।

6.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. जैन दर्शन में योग की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।
2. बौद्ध दर्शन में योग की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।
3. जैन दर्शन तथा बौद्ध दर्शन में योग की तुलनात्मक व्याख्या करें।

इकाई–7 सांख्य एवं वेदान्त

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 सांख्य दर्शन परिचय

7.4 सांख्य दर्शन में योग

7.5 वेदान्त दर्शन का परिचय

7.6 वेदान्त दर्शन में योग

7.7 सारांश

7.8 शब्दावली

7.9 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.11 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठको सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्य दुखो से छुटकारा पाने के लिए प्रयत्नशील रहा है संसार मे फैले त्रिविध दुखों को ऋषि मुनियाॅं, मनीषियाॅं, चिन्तनों एवं दार्शनिको ने देखा तथा इनसे

छूटने के उपायों का भिन्न–भिन्न रूपों में वर्णन किया इसी संदर्भ में दर्शनो का उदय हुआ। दर्शनो की वह धारा जिसमें परमात्मा की सत्ता पर आस्था रखते हुए इन दुखों से छूटने के उपायो का वर्णन किया गया है वह आस्तिक दर्शन कहलाए इन दर्शनो में न्याय दर्शन सांख्य दर्शन, योग दर्शन, वैशैषिक दर्शन, वेदान्त दर्शन एवं मीमासा दर्शन का वर्णन आता है जबकि दर्शन की वह धारा जिसमें परमात्मा की सत्ता पर विश्वास ना करते हुए इन दुखों से छुटने के उपायो का वर्णन किया गया वह नास्तिक दर्शन कहलाए चार्वाक दर्शन, बौद्व दर्शन एवं जैन दर्शन इसी वर्ग के दर्शन हैं।

यहां पर हम आस्तिक दर्शन के सम्बन्ध में विचार करेगे इन छहः आस्तिक दर्शनो को षठदर्शनों की संज्ञा दी जाती है। ये दर्शन अलग – अलग भागों से एक ही लक्ष्य को प्राप्त करने की शिक्षा देते हैं दुखो से छूटते हुए परमात्मा तत्व को प्राप्त करना एवं जन्म मरण के च्रक से छूटकर मोक्ष को प्राप्त करना सभी दर्शनो का लक्ष्य रहा

योग भी इसी लक्ष्य को प्रकट करता है प्रस्तुत इकाई में सांख्य दर्शन एंव वेदान्त दर्शन में प्रस्तुत योग के स्वरूप का अध्ययन करेगें।

7.2 उद्देश्य–

इस इकाई के अध्ययन के बाद –

- आप सांख्य दर्शन को समझा सकेगे।
- वेदान्त दर्शन को समझा सकेगे।
- सांख्य दर्शन में वर्णित योग के स्वरूप की व्याख्या करने में सक्षम हो सकेगें।
- वेदान्त दर्शन मे वर्णित योग के स्वरूप की व्याख्या करने में सक्षम हो सकेगें।

7.3 सांख्य दर्शन परिचय–

सांख्य दर्शन के प्रणेता कपिल है यहां पर सांख्य शब्द अथवा ज्ञान के अर्थ में लिया गया है सांख्य दर्शन में प्रकृति पुरूष–सृष्टि–क्रम, बन्धनों व मोक्ष, कार्यकारण सिद्धान्त का सविस्तार वर्णन किया गया है इसका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है।

1 प्रकृति– साख्य दर्शन में प्रकृति को त्रिगुण को इन तीन गुणों को सम्मिलित रूप से त्रिगुण की संज्ञा दी गयी सांख्य दर्शन में इन तीन गुणो कों सूक्ष्म तथा अतेनद्रिय माना गया

सत्व गुणो का कार्य सुख रजोगुण का कार्य लोभ बताया गया सत्व गुण स्वच्छता एवं ज्ञान का प्रतीक है यह गुण उर्ध्वगमन करने वाला है। इसकी प्रबलता से पुरूष में सरलता प्रीति,श्रद्वा,सन्तोष एवं विवेक के सुखद भावो की उत्पत्ति होती है।

रजोगुण दुख अथवा अशान्ति का प्रतीक है इसकी प्रबलता से पुरूष में मान,मद,द्वेष,तथा क्रोध भाव उत्पन्न होते है।

तमोगुण दुख एवं अशान्ति का प्रतीक है यह गुण अधोगमन करने वाला है तथा इसकी प्रबलता से मोह की उत्पत्ति होती है इस मोह से पुरूष में निद्रा,तन्दा प्रसाद, आलस्य, मुर्छा, अकर्मण्यता अथवा उदासीनता के भाव उत्पन्न होते है सांख्य दर्शन के अनुसार ये तीन गुण एक दूसरे के विरोधी है सत्व गुण स्वच्छता एवं ज्ञान का प्रतीक है तो वही तमो गुण अज्ञानता एवं अंधकार का प्रतीक है रजो गुण दुख का प्रतीक है तो सत्व गुण सुख का प्रतीक है परन्तु आपस मे विरोधी होने के उपरान्त भी ये तीनों गुण प्रकृति में एक साथ पाये जाते है सांख्य दर्शन में इसके लिए तेल बत्ती व दीपक तीनो विभिन्न तत्व होने के उपरान्त भी एक साथ मिलकर प्रकाश उत्पन्न करते है ठीक उसी प्रकार ये तीन गुण आपस मे मिलकर प्रकृति में बने रहते है ।

2 पुरूष – सांख्य दर्शन प्रकृति और पुरूष की स्वतन्त्र सत्ता पर प्रकाश डालता है प्रकृति जड एवं पुरूष चेतन है । यह प्रकृति सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न करने वाली है पुरूष चेतन्य है परम तत्व आत्मा तत्व है यह पुरूष समस्त ज्ञान एव अनुभव को प्राप्त करता है प्रकृति एवं प्राकृतिक पदार्थ जड़ होने के कारण स्वयं अपना उपभोग नही कर सकते इनका उपभोग करने वाला यह पुरूष है, प्रकृति के पदार्थ इस पुरूष में सुख दुख की उत्पत्ति करते है जब इस पुरूष को ये पदार्थ प्राप्त होते है तब यह सुख का अनुभव करता है परन्तु जब ये पदार्थ दूर होते है तब यह पुरूष दुख की अनुभूति करता है। सांख्य दर्शन उन आध्यात्मिक स्वभाव के ज्ञानी पुरूषों पर भी प्रकाश डालता है जो सदैव इन दुखों से परे रहकर मोक्ष की इच्छा करते है ।

3 सृष्टि कम – सांख्य दर्शन में सृष्टि कम पर प्रकाश डाला गया है तथा प्रकृति से सवप्रथम महतत्व अथवा बुद्वि की उत्पत्ति, तत्पश्चात अहंकार की उत्पत्ति एवं सात्विक, राजनैतिक एवं तामसिक अहंकार के रूप में अहंकारो के तीन भेद करते हुए सात्विक अहंकार से मन की उत्पत्ति के कम को समझाया गया।

इसी से ही ज्ञानेन्द्रियों एवं कमेन्द्रियो की उत्पत्ति को तथा अहंकार के तामसिक भाग से पचंतन्मात्राओं एवं पचं महाभूतो की उत्पत्ति को समझाया गया है । इस प्रकार 24 तत्वों के साथ 25 वे तत्व के रूप में पुरूष तत्व को समझाया गया है।

सांख्य दर्शन में वर्णित सृष्टि कम को इस प्रकार उल्लेखित किया जा सकता है–

प्रकृति+पुरूष

↓

महत या बुद्वि

↓

अहंकार

(सात्विक) (राजसिक) (तामसिक)

– 5 ज्ञानेन्द्रिय –5 महाभूत

– 5 क्रमेन्द्रिय –5 तन्मात्रा

– 1 मन

4– बंधन एवं मोक्ष– सांख्य दर्शन के अनुसार अज्ञानता के कारण पुरूष बंधन में बधॅ जाता है जबकि यह पुरूष ज्ञान के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करता है। बंधक में बधॉ हुआ पुरूष आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक दुखों से ग्रस्त रहता है। मै और मेरे भाव से युक्त होकर पुरूष इस बंधन में फस जााता है परन्तु जब पुरूष का विवेक ज्ञान जाग्रत होता है। ज्ञानरूपी प्रकाश तब उसका अज्ञानतारूपी अन्धकार समाप्त हो जाता है। इस अवस्था वह में विशुद्व चैतन्य (परमात्मा) का स्वरूप ग्रहण करने लगता है, इसे ही मुक्ति एवं कैवल्य की संज्ञा दी गयी है ।

7.4 सांख्य दर्शन में योग का स्वरूप–

जिज्ञासु पाठको योग का अर्थ परमतत्व (परमात्मा)को प्राप्त करना है इसलिए दर्शनो में भिन्न–भिन्न मार्गो का उल्लेख किया गया है सांख्य दर्शन में पुरूष का उद्देश्य इसी परमतत्व को प्राप्त करना कहा गया है तथा परमात्मा प्राप्ति की अवस्था को मोक्ष, मुक्ति, एवं कैवल्य की संज्ञा दी गयी है जिस प्रकार योग दर्शन में पंचक्लेशो का वर्णन किया गया है तथा अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष व अभिनिवेश नामक इन पॉच क्लेशों को मुक्ति के मार्ग में बाधक माना गया है ठीक उसी प्रकार अज्ञानता को सांख्य दर्शन में मुक्ति में बाधक माना गया तथा इसके विपरित ज्ञान को सांख्य दर्शन में मुक्ति का साधन माना गया अज्ञानता के कारण मनुष्य इस प्रकृति के साथ इस प्रकार जुड़ जाता है कि वह स्वयं में एवं प्रकृति में भेद न कर पाना ही इसके बंधन का कारण है । सांख्य दर्शन का मत है कि यद्यपि पुरूष नित्य मुक्त है अर्थात स्वतन्त्र है। परन्तु वह अज्ञानता के कारण स्वयं को अचेतन प्रकृति से युक्त समझने लगता है। इस कारण वह दुःखी होता है तथा भिन्न–भिन्न प्रकार की समस्याओं से घिरता है। बन्धनों से युक्त होता है, किन्तु आगे चलकर जब यह

पुरूष ज्ञान प्राप्त करता हो तब वह अपने स्वरूप को पहचानने में सक्षम होता है और अनेक प्रकृति के स्वरूप को भिन्न जानने में समर्थ होता है। तभी वह इस बंधन से मुक्त होता है।

अर्थात मै अचेतन विषय नही हूॅ मै जड़ नही हूॅ, मै अन्तः करण नही हूॅ, यह मेरा नही है, मै अहंकार से रहित हूॅ, मैं अहकार भी नही हूॅ, जब साधक साधना के माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति करता है तभी से उसकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्थ होता है तथा इसी के माध्यम से वह कैवल्य की प्राप्ति करता है।

सांख्य दर्शन में ज्ञान के माध्यम से पुरूष का अपने स्वरूप को जानकर प्रकृति से पृथक हो जाना है कैवल्य कहा गया है जिसे महर्षि पतंजलि योग दर्शन में वर्णित करते है।

7.5 वेदान्त दर्शन का परिचय–

वेद के अन्तिम भाग को वेदान्त की संज्ञा से सुशोभित किया गया है जिसने उपनिषदों के विस्तृत स्वरूप कों एक अनुशासित ढंग से संजोया गया है महर्षि व्यास ने वेदान्त दर्शन में इसी प्रकार वेदों एंव उपनिषदो से सारगर्भित विद्या के स्वरूप को सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया है वेदान्त के सूत्रों को ब्रह्मसूत्र भी कहा जाता है तथा वेदस्त सूत्र के नाम से भी जाना जाता है इन ब्रह्मसूत्रों में कुल 550 सूत्रों का संकलन है जिन पर श्री शंकराचार्य, श्री भास्कराचार्य, श्री रामानुजाचार्य, श्री मध्वाचार्य तथा श्री निम्बाकाचार्य द्वारा भाष्य किया गया है इन भाष्यकारों द्वारा इन ब्रह्मसूत्रों की विस्तृत रूप में व्याख्या की गयी है।

वेदान्त दर्शन में अद्वैत एवं द्वैत को मुख्य रूप से वर्णित किया गया अद्वैत मत में आत्मा के परमचैतन्य स्वरूप की व्याख्या करते हुए उसे ही परमचैतन्य (परमात्मा)का अंश में कहा गया है यहॉ पर बतलाया गया है कि यह आत्मा परमात्मा का ही अंश है जो आगे चलकर अपने पूर्ण को प्राप्त होकर पूर्ण हो जाता है जबकि द्वैत विचार धारा में परमात्मा एवं जीवात्मा के पृथक–पृथक स्वरूप को स्वीकार किया गया है ।

द्वैत विचार धारा में आत्मा के स्वरूप को परमात्मा के स्वरूप से भिन्न–भिन्न माना गया है द्वैत मत के अनुसार यद्यपि जीव और ईश्वर दोनों चैतन्यस्वरूप है किन्तु फिर भी दोनो में अन्तर है एक और जीव जहा अल्पज्ञय, अज्ञान तथा अविद्या मोह माया आदि क्लेशों से युक्त है वही दूसरी ओर ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान, निर्विकार, अजन्मा, अनन्त, अभय शुद्व मुक्त एंव विकारों से रहित है।

वेदान्त दर्शन मे जीव की तीन अवस्थाओं जाग्रत स्वप्न एवं सुसुप्ति पर प्रकाश डाला गया है साथ ही साथ जीव के पॉच कोश अन्नमय कोश मनोमय कोश, प्राणमय कोश, विज्ञानमय कोश एवं आनन्दमय कोश को भी वेदान्त दर्शन में समझाया गया है।

7.6 वेदान्त दर्शन में योग का स्वरूप–

वेदान्त दर्शन में अविद्या को कारण माना गया है तथा उदाहरण के साथ इस तथ्य की पुष्टि की गयी कि जिस प्रकार अविद्या के कारण रस्सी को सर्प समझकर उससे भय पाकर दुखी होता है ठीक उसी प्रकार यह पुरूष अविद्या के कारण विभिन्न सांसारिक विषय वस्तु

के साथ अपना सम्बन्ध जोडता है तथा अपने सम्बन्ध को नित्य मान लेता है आगे चलकर प्रकृति के साथ सम्बन्ध विच्छेद इसके दु:ख का कारण बनता है पुनः वेदान्त दर्शन में भी संसार के साथ सम्बन्ध को बंधन का कारण माना गया।

वेदान्त दर्शन में सृष्टि या प्रकृति को एक विशिष्ट संज्ञा दी गयी है तथा कहा गया है कि इस माया की रचना एक आभास मात्र है अर्थात इस माया की रचना ह्रदय अथवा काल्पनिक है जिसे अज्ञानता के कारण पुरूष वास्तविक समझ लेता है तथा इसे वास्तविक मानकर इसके साथ जुड़ जाता है।बन्धन में फॅस जाता है इस बंधन के कारण वह विभिन्न दु:खों को प्राप्त होता है जिससे मुक्त होने का एक मात्र साधन ज्ञान है । ज्ञान के उदय से पुरूष को प्रकृति के वास्तविक स्वरूप की अनुभूति होती है उसके स्वरूप का ज्ञान होता है जिससे वह बंधन से छूटकर मुक्ति के मार्ग की ओर प्रशस्त्र होता है वेदान्त दर्शन में इसी संदर्भ में विवेक ज्ञान के द्वारा नित्य एवं अनित्य वस्तु में भेद करने का उपदेश दिया गया है वेदान्त दर्शन में लौलिक एवं पारलौकिक भागो की कामना का परित्याग का उपदेश दिया गया है। जिसे महर्षि पतंजलि योग दर्शन में प्रत्याहार की संज्ञा देते है जिस प्रकार महर्षि पतंजलि इन्द्रियों पर संयम करते हुए चित्त की एकाग्रता का उपदेश करते है ठीक उसी प्रकार वेदान्त दर्शन में भोगो के परित्याग कर ज्ञान प्राप्ति का उपदेश दिया गया है वेदान्त दर्शन में शम, दम, श्रद्वा, समाधान, उपरति ,एवं तितिक्षा नामक ंछः साधनों का उपदेश दिया गया है। शम का अर्थ मन के संयम से लिया गया है दम का अर्थ है इन्द्रियों के नियन्त्रण से लिया गया है श्रद्वा का अर्थ शास्त्रों के प्रति निष्ठा भाव से है, समाधान का अर्थ चित्त को ज्ञान के साधन में लगाने से है, उपरति का अर्थ है चित्त को विपरीत कार्यो से विरक्त करने से है, तितिक्षा का अर्थ उष्ण व शीत आदि इन्द्रियों को सहन करने से है ।

इन साधनों का उल्लेख महर्षि पतंजलि द्वारा अष्टांग योग में भली–भांति किया गया है मन के संयम को यम की साधना से जोड़ा जाता है। अहिंसा सत्य, अस्तेय आदि का अर्थ मन पर संयम से ही है इन्द्रियों पर नियन्त्रण को प्रत्याहार के अन्तगर्त किया गया है, श्रद्वा को ईश्वर प्राणिधान के अन्तर्गत रखा गया है, समाधान को स्वाध्याय के अर्न्तगत रखा जा सकता है, जबकि उपरति को भी यम के अर्न्तगत समाहित किया जा सकता है। तितिक्षा को तप के अर्न्तगत रखा भी जा सकता है वेदान्त दर्शन में तीन अन्तरंग साधनों का उल्लेख किया गया है श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन को वेदान्त दर्शन में वर्णित किया गया है श्रवण का अर्थ है उपदेशों पर तार्किक दृष्टि से विचार करने से है जबकि सत्य पर ध्यान रखना निदिध्यासन कहलाता है। महर्षि पतंजलि भी इन साधनों को धारणा, ध्यान और समाधि नामक अन्तरंग में रखते है जिस प्रकार महर्षि पतंजलि दुखों से निवृत्ति प्राप्त कर कैवल्य की प्राप्ति को साधक का उद्देश्य मानते है ठीक उसी प्रकार वेदान्त दर्शनों को भी परम तत्व की प्राप्ति को ही पुरूष उद्देश्य मानते है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1 निम्न में से आस्तिक दर्शन है

(अ) वेदान्त (ब) सांख्य (स) दोनों (द) इनमें से कोई नही

2 साख्य दर्शन में प्रकृति कितने गुणों से युक्त मानी जाती है।

(अ) एक (ब) तीन (स) पच्चीस (द) इनमें से कोई नही

3. वेदान्त दर्शन के अनुसार रस्सी में सॉप समझने से किसकी अनुभुति होती है।

(अ) हर्ष (ब) आश्चर्य (स) क्रोध (द) दुख

4. वेदान्त दर्शन कितने साधनों का उल्लेख है ।

(अ) एक (ब) दो (स) चार (द) छः

5. तितिक्षा का अर्थ है –

(अ) द्वंदो की सहन करना (ब) चोरी न करना (स) झंगडा ना करना (द) सत्य बोलना

7.7 सारांश–

प्रिय पाठको सांख्य दर्शन एवं वेदान्त दर्शन दोनो आस्तिक दर्शन है जिसमें परमात्मा की सत्ता को स्वीकारते हुए उसके माध्यम से कैवल्य प्राप्ति का उपदेश किया गया है इन दोनों ही दर्शनो में अविद्या को बंधन का कारण एवं ज्ञान को मुक्ति का साधन माना गया है दोनो ही दर्शनो में अलग–अलग साधनों के द्वारा ज्ञान का उदय का वर्णन किया गया है ज्ञान के उदय से अविद्या समाप्त होती है तथा साधक मुक्ति के पथ पर अग्रसर होता है इन दोनों ही दर्शनों में महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित अष्टांग योग पद्धति कें साम्य प्राप्ति होती है

7.8 शब्दावली

अकर्मण्यता– कर्म ना करने की इच्छा

उर्ध्वगम– ऊपर को गमन करना

उपभोग– प्रयोग

अचेतन– चेतना रहित

सर्वज्ञ– सब कुछ जानने वाला

निर्विकार– विकारों से रहित

अभय–भय से मुक्त

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 द

2 स

3 द

4 अ

5 अ

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची—

- भारतीय दर्शन – आ0 बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1991।
- बौद्ध दर्शन मीमांसा – आ0 बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1954।
- भारतीय दर्शन की रूपरेखा – प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसी दास, 2002।

7.11 निबंधात्मक प्रश्न—

1. साख्य दर्शन परिचय देते हुए इसमें वर्णित योग के स्वरूप की व्याख्या करें ।
2. वेदान्त दर्शन का परिचय देते हुए इसमें वर्णित योग के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

इकाई–8 आयुर्वेद

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 आयुर्वेद में योग के प्रकार

8.4 आयुर्वेद में वर्णित सद्वृत्त एवं आचाररसायन

8.4.1 सामयिक सद्वृत्त

8.4.2 व्यवहारिक सद्वृत

8.5 आयुर्वेद में वर्णित प्राणायाम

8.6 आयुर्वेद में वर्णित ध्यान एवं समाधि

8.7 आयुर्वेद में कर्म निरूपण

8.8 आयुर्वेद में प्रमाण

8.9 आयुर्वेद में पुरूष, आत्मतत्व एवं ईश्वर निरूपण

8.9.1 पुरुष निरूपण

8.9.2 आत्मा

8.9.3 ईश्वर निरूपण

8.10 मोक्ष निरूपण

8.11 सारांश

8.12 शब्दावली

8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.15 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

आयुर्वेद और योग दोनों ही अत्यन्त प्राचीन विद्यायें हैं। दोनों का विकास और प्रयोग समान उद्देश्य के लिए एक ही काल में मनुष्य मात्र के दुःखों को दूर करने के लिए हुआ। आयुर्वेद का शाब्दिक अर्थ जीवन का विज्ञान है। इसे एक बहु उद्देश्यीय विज्ञान के रूप में विकसित किया गया है। योग के अनुसार पुरुषार्थ को ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य माना गया है। चरक सूत्र में कहा गया है–

''**धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्**'' (च. सू. 1/15)

अर्थात् आयुर्वेद का निर्माण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए ही किया गया है। यह कहा जा सकता है कि योग और आयुर्वेद दोनों मानव जीवन के समान सिद्धान्त पर आधारित है।

कुछ विद्वानों का मत है आयुर्वेद, योग तथा व्याकरणशास्त्र ये तीनों विद्याएं क्रमशः शरीर, मन एवं वाणी की शुद्धि के लिए अलग–अलग एक ही आचार्य द्वारा विकसित की गयी। आयुर्वेद का प्रमुख आदि ग्रन्थ चरक संहिता, पातंजल योगसूत्र तथा व्याकरण महाभाष्य ये तीनों एक ही व्यक्ति या सम्प्रदाय द्वारा लिखे गये हो, ऐसी कुछ लोगों की मान्यता है।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।

योऽपाकरोत्त प्रवरं मुनिनां पतंजलिं प्रांजलिरानतोऽस्मि।। योगवार्तिक सूत्र

चरकसंहिता–सूत्रस्थान के प्रथम श्लोक की व्याख्या करते समय टीकाकारों की निम्नलिखित उक्ति ध्यान देने योग्य है–

पातंजलमहाभाष्य चरकप्रति संस्कृतैः।

मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेऽहियतये नमः।। च0सू0 1/1

आयुर्वेद के मूल ग्रन्थों विशेषतः चरकसंहिता के अध्ययन से प्रतीत होता है कि योगविद्या का सिद्धान्त तथा सारांश आयुर्वेद में पहले से ही उपलब्ध है। चरकसंहिता के शरीरस्थान में नैष्ठिकी चिकित्सा के प्रसंग में तत्त्वज्ञान तथा तत्त्वानुभूति मूलक योग विद्या तथा 'प्रज्ञा का सत्याबुद्धि के रूप में सुस्पष्ट वर्णन है। इन्हीं विषयों का और क्रमबद्ध विकसित वर्णन पतंजलि के योगसूत्र में मिलता है।

इस प्रकार योग और आयुर्वेद की संहिताए भी शारीरिक रोगों के लक्षण एवं उनकी चिकित्सा के साथ–साथ व्यक्ति के मानसिक तथा आध्यात्मिक भावों का भी विवेचन करती है।

योग का लक्षण करते हुए चरक कहते हैं कि आत्मा, इन्द्रिय, मन तथा अर्थों के सन्निकर्ष से सुख–दुःख की उत्पत्ति होती है। जब मन आत्मा के साथ स्थित होकर निश्चल हो जाता है तब सुख–दुःख का आरम्भ नहीं होता। तब आत्मा वशी कहलाता है। आत्मा के साथ शरीर भी वश में हो जाता है। उस योग सिद्ध योगी का शरीर इस लोक में रहते हुए भी उसके कर्मां से वशीभूत नहीं होता। यदि योगी शरीर जन्य वेदनाओं को न भोगना चाहे तो नहीं भोगता।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आयुर्वेद में योग की अवधारणा को स्पश्ट किया जा रहा है। इस इकाई में आयुर्वेद में योग के प्रकार आयुर्वेद में वर्णित सद्वृत्त एवं आचार रसायन सामाजिक सद्वृत्त तथा व्यवहारिक सद्वृत का वर्णन किया जा रहा है।

8.3 आयुर्वेद में योग के प्रकार

चरक संहिता में चार प्रकार के योग निर्दिष्ट किये गये हैं–

1 **सम्यक् योग अथवा समयोग :–** उचित समय पर मलादि वेग की प्रवृत्ति का होना, सामान्य कष्ट की अनुभूति का होना, क्रमशः वात–पित्त–कफ दोषों का निकलना तथा स्वयं रुक जाना अर्थात् दोषों के निरुद्ध होने पर वेगों की समाप्ति होना ये सब वमन के सम्यक् योग के लक्षण होते हैं। दोषों के प्रभाव भेद से यही सम्यक् योग तीक्ष्ण, मृदु, मध्य तीन प्रकार का समझा जाता है।

कालेप्रवृत्तिनतिमहति व्यथा, यथाक्रम दोषहरणं स्वयं वाऽवस्थानमितियोग लक्षणानि भवन्ति। योगेन तु दोषप्रमाणविशेषेण तीक्ष्णमृदुमध्यविभागो ज्ञेयः।

च0 सं0सू0 15/13

2 **अयोग :–** किसी कारण विशेष से वमन का होना अर्थात् वमन न होना, केवल वमन कराने के लिए जो औषधि दी गयी हो, उसी का निकल जाना अथवा वमन के वेगों का बीच मे टूट जाना या रुक जाना अयोग कहलाता है।

अप्रवृत्तिः कुतश्चित् केवलस्यावाऽप्यौषधस्य विभ्रंसो विबन्धो वेगानामयोगलक्षणानि भवन्ति।

च0 सं0 सू0 1/13

3 **अतियोगः–** इसमें लारयुक्त लालरक्त की कणिकाओं से युक्त वमन होता है अथवा रक्त भी निकल जाता है तो अतियोग कहलाता है।

योगाधिक्ये तु फेनिलरक्तचन्द्रिको षगमनमित्यति योगल़क्षणानि भवन्ति।

च0 सं0 सू0 15/13

4 **हीनयोग या मिथ्यायोग** :—दोषयुक्त, सड़ी—गली, अधिक समय तक रखी गयी, जली, सुखी, अधिक आर्द्र वस्तु आहार आदि का सेवन अथवा स्नान, वस्त्र आदि का ऋतु के विपरीत सेवन करने से रोग या व्याधि की सम्भावना रहती है।

अब यहाँ आयुर्वेद में योग के स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है।

चरक संहिता में अष्टांग योग की भांति अष्ट स्थानों में विभाजन कर आयुर्वेद का क्रमिकज्ञान अवश्य कराया गया है। चतुष्पाद वैदिक शैली पाणिनि कृत अष्टाध्यायी में भी उपलब्ध होती है, चरकसंहिता में भी इस शैली की छाया प्रतीत होती है। सूत्र स्थान ,चिकित्सा स्थान व काय स्थान में अधिकतम 30—30 अध्याय, इन्द्रिय व सिद्धि स्थान में 12—12 तथा निदान, विमान एवं शरीर स्थान में 8—8 अध्यायों का समावेश किया गया है। सूत्र स्थान में 4—4 अध्यायों के सात चतुष्क तथा अन्तिम दो अध्याय संग्रहाध्याय कहे गये हैं। यथा— 1. औषधचतुष्क. 2. स्वास्थ्यचतुष्क. 3. निर्देश चतुष्क. 4. कल्पना चतुष्क. 5. रोगचतुष्क. 6 योजनाचतुष्क. 7. अनुपान चतुष्क तथा 8. अष्टम में संग्रहाध्यायद्वय का समावेश है।

(क) **औषध्यस्वस्थनिर्देशकल्पनारोगयोजनाः।**
चतुष्काः षड् क्रमेणोक्ताः सप्तमश्चान्नपानिकः।।

(ख) **द्वौ चान्त्यौ संग्रहाध्यायाविति त्रिंशकमर्थवत्।**
श्लोकस्थानं समुद्दिष्टम् तन्त्रस्यास्य शिरः शुभम्।।

च0 सू0 30 / 39—40

चरक ने मौलिक सिद्धान्त तथा काय चिकित्सा का विशिष्ट प्रतिपादन किया है। संसोधन चिकित्सा पर भी विशेष बल दिया है। जिसका वर्णन दो स्वतन्त्र स्थानों (कल्प और सिद्धि) में किया गया है। इन्द्रिय स्थान में अरिष्टक्षणों का भी शरीर स्थान में प्रमुख रूप से दर्शन का प्रतिपादन किया गया है तथा शरीर रचना गौण विषय हो गयी है। इससे स्पष्ट होता है कि चरकसंहिता आयुर्वेद का मौलिकसिद्धान्त और कायचिकित्सा का प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ है।

आयुर्वेद की संहिताए शारीरिक रोगों के लक्षण एवं उनकी चिकित्सा के साथ—साथ मनो—आध्यात्मिक भावों का भी विवेचन करती है।

8.4 आयुर्वेद में वर्णित सद्वृत्त एवं आचार रसायन

यम—नियम निरुपण — सद्वृत्त :—

मन, वाणी और शरीर से किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का दुःख न देना अहिंसा कहलाता है। हिंसा तम का द्योतक है, यह अभिघात और प्रतिरोध को उत्पन्न करने वाला होता है। आयुर्वेद में उसे पापकर्म बताकर त्यागने के लिए कहा गया है। इसे सद्वृत्त के

रूप में वर्णित किया गया है तथा रसायन सेवन से पूर्व भी एवं आचार रसायन के अन्तर्गत अहिंसा का वर्णन किया गया है।

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात्।

अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम्।। च0 चि0 1/4/30

आयुर्वेद में आचार रसायन में सर्वप्रथम सत्यवादिनम् ही कहा गया है अर्थात् सर्वदा सत्य बोलना चाहिए। सद्वृत्त में झूठ न बोलने के लिए कहा गया है।

नानृतं ब्रूयात् ————। च0 सू0 8/19

अस्तेय का अर्थ होता है– चोरी न करना। जब व्यक्ति में चोरी के अभाव अर्थात् चोरी न करने की प्रवृत्ति जागृत हो जाती है तब उसके सामने समस्त रत्न स्वयं प्रकट होने लगते हैं।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपास्थानम्। यो0 सू0 2/37

आचार्य वाग्भट् ने स्तेय को दशविध पापकर्म के अन्तर्गत बताया है और शरीर, मन एवं वाणी से त्यागने के लिए कहा गया है।

जीवन के तीन उपस्तम्भों में ब्रह्मचर्य की गणना की गई है। आचार रसायन में मद्य एवं मैथुन से निवृत्त रहने के लिए बताया गया है। ज्वर चिकित्सा में आचार्य चरक ने कहा है कि ब्रह्मचर्य के द्वारा ज्वर से छुटकारा मिलता है। **"ब्रह्मचर्येण ज्वरात् प्रमुच्यते।"** (च0 चि0 3)। योगसूत्र में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य पर दृढ़ होने पर वीर्य लाभ एवं अपूर्व शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। **"ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।"** (यो0 सू0 2/38)। जीवन में सदैव स्वस्थ रहने के लिए मनुष्य को मन, वचन तथा कर्म की पवित्रता आवश्यक होती है। अतः प्रत्येक मनुष्य के लिए स्वस्थ वृत्त के पालन का उपदेश चरक ने किया है। चरक का वचन है कि सौम्य बुद्धि, मधुर वचन, सुखकारक कर्म, निर्मल तथा पापरहित बुद्धि, विवेक, तप तथा यम–नियम प्राणायाम आदि योग का सदैव सेवन करने वाले मनुष्य को कोई भी शारीरिक तथा मानसिक रोग से कष्ट नहीं होता।

चिकित्सा चतुष्पाद के सन्दर्भ में आचार्य चरक ने उत्तम वैद्य के चार गुणों में शौच को एक प्रधान गुण माना है। शौच से कायिक, वाचिक एवं मानसिक शुद्धता का अभिप्राय है। आयुर्वेदशास्त्र में भी दो प्रकार के शुद्धि का वर्णन किया गया है। इन्हें योगी जन बाह्य शौच एवं आन्तरिक शौच के नाम से ग्रहण करते हैं।

आयुर्वेद में बाह्य शुद्धि के लिए अंग प्रक्षालन, स्नान, दन्तधावन कवलग्रह, गण्डुष आदि कर्म बताए गए हैं और आभ्यन्तर शुद्धि सामाजिक एवं मानसिक स्तर, धी–स्मृति का ज्ञान, व्यवहार आदि से लेते हैं। चरकसूत्र संहिता में शरीर में उपस्थित वात–पित्त–कफ दोषों को संतुलन बनाए रखने तथा शोधन के लिए पंचकर्म (स्नेहन–स्वेदन–वमन–विरेचन–वस्ति) का विवेचन किया गया है।

तान्युपस्थित दोषाणां स्नेहस्वेददोपषादनैः।

पंचकर्मानि कुर्वीत मात्रा कालौ विचारयन्। च0सू0 2/15

लोल्य को कष्ट उत्पन्न करने वालों में श्रेष्ठ कहा गया है। **"लोल्यं क्लेशकराणां श्रेष्ठम्।"** (च0 सू0 25)। यह सन्तोषवृत्ति का विपरीतार्थक है। उसे धारणीय वेगों की गणन में भी गिना गया है। योगसूत्र में लोल्य के विपरीत भाव सन्तोष को सर्वोत्तम सुख की संज्ञा दी गई है। **"सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः।"** (यो0 सू0 2/43)

आयुर्वेद में आचाररसायन के अन्तर्गत कहा गया है कि प्रतिदिन जप, शौच, दान एवं तपस्या करनी चाहिए तथा देवता, गौ, ब्राह्मण, आचार्य एवं गुरु की सेवा में रत रहना चाहिए।

जपशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विन्।

देव गो ब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम्।। च0 चि0 1/4/31

सुसाहित्य एवं आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन स्वाध्याय है। ईश्वर की शरणागति से योग साधन में आने वाले विघ्नों का नाश होकर शीघ्र ही समाधि निष्पन्न हो जाती है। **"समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।"** (यो0 सू0 2/45)। आयुर्वेद में मानस दोष चिकित्सा के रूप में ईश्वर का ध्यान–पूजा–पाठ बताया गया है। ज्वरादि की चिकित्सा में विष्णुसहस्रनाम जप आदि बताया गया है।

8.4.1 सामयिक सद्वृत्त –

देवता, गौ, वृद्ध, ब्राह्मण, गुरु, सिद्धाचार्यों को नमस्कार , अग्निहोत्र सेवन, पशस्त एवं अनुभूत औषध सेवन, दोनों समय स्नान, नेत्रादि इन्द्रियों की प्रतिदिन प्रातः सायं शुद्धि, केश, नख, दाढ़ी आदि का समयानुसार संमार्जन, प्रतिदिन धुले हुए सुगन्धित वस्त्रों को धारण करना, सुगन्धित पदार्थों का अनुलेपन, केशों का प्रसाधन, सिर, कान, नाक, पाद आदि में तैल मर्दन, दीनदुःखी की सहायता, निश्चिन्त, निडर, बुद्धिमान्, लज्जाशील, चतुर, धर्मपरायण, आस्तिक, सर्वप्राणियों को बन्धुतुल्य मानना, क्रुद्ध व्यक्तियों को नम्रता से शान्त करना, भयभीतों को आश्वासन देना, दीनों का उद्धार करना, सत्यवादी, शान्त, दूसरों के कठोर वचनों को सहन करने वाला, क्रोध को नाश करने वाला, शान्ति को गुण समझने वाला, राग–द्वेष के मानसिक विकारों का विनाश करने वाला होना चाहिए।

8.4.2 व्यवहारिक सद्वृत्त

बुद्धिमान् पुरुषों की सम्मति द्वारा निर्धारित नियमों का त्याग न करे, नियमों का उल्लंघन न करे, रात्रि में या अपरिचित स्थान में भ्रमण न करे, प्रातः एवं सायं सन्ध्याकाल में भोजन, अध्ययन, शयन या स्त्री सहवास न करे, बालक, वृद्ध, रोगी , मूर्ख, क्लेशयुक्त जीवनयापन करने वालों तथा नपुंसकों के साथ मित्रता न करे, मद्यसेवन, जुआ खेलना, वेश्यागमन आदि की इच्छा न करे, किसी की गुप्तवार्ता की व्याख्या न करें, किसी का

अपमान न करे, अभिमान का त्याग करे, कार्यकुशल, उदार, असूयारहित ब्राह्मणों का सम्मान करने वाला होवे, वृद्ध, गुरुजन, गण, राजा आदि का अपमान या आक्षेप न करे, बन्धुबान्धव, मित्र वर्ग, आपत्तिकाल में सहायक तथा गोपनीय रहस्यों को जानने वाले लोगों को सदा सम्पर्क में रखें।

न स्त्रियमवजानीत् नातिविश्रम्येत् ——— नारहसित्यवायं गच्छेत्। चरकसूत्र 8/22

8.5 आयुर्वेद में वर्णित प्राणायाम

आयुर्वेद में वायु को प्राण संज्ञा प्रदान की गई है।प्राणवायु का शरीर में प्रविष्ट होना श्वास ओर बाहर निकलना प्रश्वास है। इन दोनों का विच्छेद होना अर्थात् श्वास–प्रश्वास क्रिया का बन्द होना प्राणायाम का सामान्य लक्षण है।

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। यो0 सू0 2/49

आयुर्वेद में वायु को आयु कहा गया है तथा वायु के द्वारा ही प्राणायाम निमेषादि क्रियाएं सम्पन्न होती हैं।

वायुः प्राणसंज्ञाप्रदानम्, वायुः आयुः, वायुः, प्राणापानौ, प्राणो रक्ष्यश्चतुर्भ्यो हि प्राणां जहाति।

च0 सू0 12/2

वायु प्राणायाम क्रिया का सम्पादन कराता है परन्तु योगोक्त प्राणायाम इस वायु की क्रिया से भिन्न है, वहाँ इस वायु की क्रिया पर नियन्त्रण प्राणायाम कहा गया है।

आयुर्वेद में वायु को यन्त्र–तन्त्र को धारण करने वाली कही गयी है। प्राण, उदान, व्यान, समान और अपान को आत्मा का रूप कहा गया है तथा यही शरीर की सभी चेष्टाओं को नियन्त्रण एवं प्रणयन करती है। सभी इन्द्रिय को अपने विषयों में प्रवृत्त करने वाली भी यही है।

वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः प्राणोदानसमानव्यानापानात्मा, प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावाचनां, नियन्ता, प्रणेता च मनसः सर्वेन्द्रियाणमुद्योजकः। च0 सू0 12/8

इस प्रकार वायु को शरीर एवं शरीरावयव को धारण करने वाला, चेष्टा–गति आदि का नियन्त्रण एवं प्रणयन करने वाला कहा गया है और इसी वायु की गति पर नियन्त्रण प्राणायाम शब्द से जाना जाता है।

8.6 आयुर्वेद में वर्णित ध्यान एवं समाधि

आयुर्वेद में मानस दोष की चिकित्सा के लिए धारणा, ध्यान एवं समाधि को दूसरे रूप में कहा है। आचार्य चरक ने मानस रोगों का चिकित्सासूत्र बताते समय समाधि का

उल्लेख किया है। समाधि के पहले आचार्य ने ज्ञान–विज्ञान–धैर्य एवं स्मृति का उल्लेख किया है।

मानसो ज्ञानविज्ञानधैर्यस्मृतिसमाधिभिः। च0 सू0 1/58

दूसरे स्थान पर आचार्य चरक ने कहा है कि मानस रोग उपस्थित होने पर धर्म–अर्थ एवं काम का ध्यान करना चाहिए तथा आत्मा आदि का ज्ञान अर्थात् धारणा करना चाहिए।

मानसं प्रति भैषज्यं त्रिवर्गस्यान्ववेक्षणम्।

तद्विधसेवा विज्ञानमात्मादीनां च सर्वशः।। च0 सू0 11/47

दूसरे आचार्यों ने भी धी–धृति एवं आत्मा का ज्ञान मानस दोष की चिकित्सा के लिए उत्कृष्ट औषधि बताया है।

इस प्रकार आयुर्वेद में धारणा–ध्यान का धी–धृति आत्मा में चित्त को लगाने के रूप में इनका ज्ञान करने के रूप में कहा गया है तथा समाधि को उसी रूप में उसी शब्द से ग्रहण किया है।

8.7 आयुर्वेद में कर्म निरूपण

योग का एक महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य अंग कर्म है। महर्षि पतंजलि जी ने योगदर्शन में इसकी पर्याप्त चर्चा की है। योगियों के कर्म अशुक्ल–अकृष्ण अर्थात् निष्काम शुभ कर्म होते है और अन्यों के सकाम शुभ, अशुभ एवं मिश्रित तीन प्रकार के होते हैं।

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनास्त्रिविधमितरेषाम्। यो0 सू0 4/7

चरक शास्त्र के अनुसार इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के कर्मों के तीन भेद हैं जो इस प्रकार है–

1 **सत्प्रत्यय :–** जो कर्म ज्ञानपूर्वक चेष्टा द्वारा किया जाए वह सत्प्रत्यय कहलाता है, जैसे– हाथ हिलाना, ऊपर–नीचे करना होता है।

2 **असत्प्रत्यय :–** जो कर्म बिना ज्ञानपूर्वक होता है, वह असत्प्रत्यय कर्म कहलाता है। जैसे– नेत्र की पलकों को उठाना, गिराना, शरीर में रोमांच होना, हृदय की धड़कन आदि।

3 **अप्रत्यय :–** अचेतन पदार्थों वृक्षादि में ऋतु–अनुसार नये पत्तों का निकलना, पुष्पोद्गम, फल बीज की प्राप्ति, पतझड़ आदि। नोदन, गुरुत्व और वेग ये तीन अप्रत्यय है।

पारलौकिक कर्म के तीन भेद हैं–

बलाबलविशेषोस्ति तयोरपि च कमर्णो।

दृष्टं हि त्रिविधं कर्म हीनं मध्यममुत्तमम्।। चरकविमान 3/31

1 **हीनकर्म –** अधोगति में ले जाने वाले अशुभ कर्मों को हीन कर्म कहते हैं। यथा– असत्यभाषण, परस्त्री गमन आदि।

2 **उत्तमकर्म :–** उत्तम लोकों में ले जाने वाले शुभ कर्मों को उत्तम कर्म कहते हैं। यथा– सत्यभाषण, परोपकार आदि उत्तम कर्म हैं।

3 **मध्यमकर्म :–** मिश्रित फल वाले कर्म को मध्यम कर्म कहते हैं। यथा– कर्मकाण्ड, अग्निहोत्र, धन लेकर विद्याध्ययन करना, स्वास्थ्य लाभ के लिए औषधि निर्माण करना मध्यम कर्म है क्योंकि यह कर्म करने से देवता संतुष्ट होते हैं। इसलिए उत्तम लोकों की प्राप्ति कराने के कारण अग्निहोत्र भी सुख देता है।

आयुर्वेद में पंचकर्म वमन, विरेचन, स्वेदन, निरुहण और नस्य हैं। दूसरे प्रकार से तीन कर्म 1. पूर्वकर्म, 2. प्रधानकर्म 3. पश्चात् कर्म हैं। चरक संहिता में विमानस्थान में कर्म का स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट किया है।

समवायोऽपृथग्भावो भूम्यादीनां गुणैर्मतः।

सनित्यो यत्र हि द्रव्यं न तत्राभिमतो गुणः।।

(चरक संहिता– विमानस्थान 8/50)

भूमि आदि द्रव्यों का अपने गुणों के साथ अपृथक् भाव ही समवाय है। यह समवाय नित्य है। क्योंकि जहा द्रव्य रहता है वहा गुण की अनिश्चितता नहीं रहती। अर्थात् समवायिकारण रूप द्रव्य के आश्रित तथा गुणों से सम्बद्ध क्रिया, चेष्टा कर्म कहलाता है। कर्म का लक्षण चरक ने इस प्रकार किया है–

द्रव्यों के संयोग और विभाग में कर्म ही कारण है, वह कर्म द्रव्य में आश्रित रहता है। कर्त्तव्य की क्रिया को ही कर्म कहा जाता है। संयोग और विभाग के लिए कर्म के सिवा किसी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रह जाती।

संयोगे च विभागे च कारणं द्रव्यमाश्रितम्।

कर्त्तव्यस्य क्रिया कर्म कर्म नान्यदपेक्षते।। च0 सं0 सू0 1/52

8.8 आयुर्वेद में प्रमाण

चरक शास्त्र में चार प्रकार के प्रमाणों का वर्णन मिलता है जो इस प्रकार है–

1. आप्तोदेश, 2. प्रत्यक्ष, 3. अनुमान, 4. युक्तिप्रमाण।

द्विविधमेव खलु सर्वं सच्चासच्च। तस्य चतुर्विधा परीक्षा – आप्तोदेशः प्रत्यक्षमनुमानं युक्तिश्चेति। च0 सू0 11/17

चरक ने पुनः रोग विशेष ज्ञान हेतु आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष तथा अनुमान का स्मरण किया है।

8.9 आयुर्वेद में पुरूष, आत्मतत्व एवं ईश्वर निरूपण

8.9.1– पुरुष निरूपण–

पुरुष निरुपण– आयुर्वेद में चतुर्विंशति तत्त्वात्मक पुरुष को मानव की इकाई स्वीकार किया गया है और इसी को चिकित्साशास्त्र का कर्मक्षेत्र माना गया है। मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच इन्द्रियार्थ, अव्यक्त महत् तत्त्व, अहंकार और पंचमहाभूत– ये चौबीस तत्त्व मिलकर पुरुष की सृष्टि करते हैं। इसके अतिरिक्त पुरुष की षड्धात्वात्मक (पंचमहाभूत+अव्यक्त ब्रह्म) तथा धात्वात्मक (केवल एक मात्र चैतन्य युक्त अर्थात् परमात्म तत्त्व पुरुष) अवधारणा भी संदर्भ भेद से उपस्थित की जाती है।

(क) खादयश्चेततनाषष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः। चेतनाधातुरप्येकः स्मृतः पुरुषसंज्ञकः।।

(ख) पुनश्च धातुभेदेन चतुर्विंशतिकः स्मृतः। मनो दशेन्द्रियान्यार्थाः
प्रकृतिश्चाष्टधातुकि।

च0 शा0 1/16–17

परन्तु आयुर्वेद में सर्वात्मना मान्य पुरुष चतुर्विंशति तत्त्वात्मक राशिपुरुष ही है।

चतुर्विंशतिको ह्येष राशिः पुरुषसंज्ञकः। च0 शा0 1/35

सांख्यकारिका में भी पुरुष के इसके स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है।

8.9.2– आत्मा

महर्षि पतंजलि जी के अनुसार प्राकृतिक पदार्थों के सम्मिश्रण तथा अज्ञान, अधर्म, विकारादि दोषों से रहित होता हुआ भी चित्त की वृत्तियों के अनुसार देखने वाला चेतन पदार्थ 'जीवात्मा' है। **"दृष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः।"** (यो0 सू0 2/20)। आयुर्वेद के प्रकाण्ड मनिषी महर्षि चरक ने आत्मा को अव्यक्त, क्षेत्रज्ञ, शाश्वत, विभु तथा अव्यय बताया है। यह आत्मतत्त्व निर्विकार है, परन्तु चेतन है, नित्य है, दर्शक, क्षेत्रज्ञ एवं कर्त्ता है। यही साक्षी, चेतन, पुद्गल आदि नामों से जाना जाता है।

निर्विकारः परस्त्वात्मा सत्वभूतगुणेन्द्रियैः।

चैतन्ये कारणं नित्यो दृष्टा पश्यति ही क्रियाः।। च0 सू0 1/55

इस प्रकार जीव में परमतत्त्व आत्मा का निवास है जिसका साक्षात्कार योग साधना द्वारा सम्भव है।

आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए श्रीमद्भगवद् गीता के दूसरे अध्याय में कहा है कि यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है। क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मारा जाता।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा न भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

श्रीमद्भगवद् गीता 2/20

यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और निःसन्देह अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः। श्रीमद्भगवद् गीता 2/24

<u>8.9.3– ईश्वर निरूपण</u>

चरकसंहिता चिकित्साशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें ईश्वर शब्द का केवल दो स्थानों पर प्रयोग हुआ है, वह भी परमात्मा या जगत् नियन्ता के रूप में ईश्वर शब्द का प्रयोग न होकर राजा, समर्थ या ऐश्वर्यशाली के रूप में किया गया है।

(क) ईश्वराणां वसुमतां वमनं सविरेचनम्। च0 सू0 15/23

(ख) या पुनरीश्वराणां वसुमतां वासकांशात्। च0 सू0 30/29

चरकसंहिता के अन्य स्थानों में भी ब्रह्म शब्द का प्रयोग जगत् नियन्ता के रूप में उपलब्ध होता है। वहाँ भी तुलनात्मक दृष्टि से कहा गया है कि जिस प्रकार लोक में ब्रह्मव्याप्त है उसी प्रकार शरीर में अन्तरात्मा की विभूति विराजमान है।

ब्रह्म अन्तरात्मा – च0 शरीर 5/5

आयुर्वेद को अथर्ववेद के उपवेद के रूप में उल्लेख किया गया है। महर्षि चरक द्वारा प्रार्थना, उपासना, नमन, भगवत्दर्शन तथा प्रभुनाम कीर्तन आदि परमात्मा सम्बन्धी कुछ नियमों के विधान का उल्लेख करने में ईश्वर संबन्धी निष्ठा का स्वयमेव प्रदर्शन हो जाता है। वेदों में रोगनिवारण हेतु ईश्वर प्रार्थना, यज्ञ तथा प्रभु चिंन्तन आदि का निर्देश युक्ति संगत है। इसी कारण आयुर्वेद के ग्रन्थों में ईश्वराराधना को गम्भीरता के साथ स्वीकार किया गया है।

चरक ने अव्यक्त के रूप में कर्त्ता, विश्वकर्त्ता, ब्रह्मा आदि शब्द का प्रयोग ईश्वर वाची रूप में प्रयोग किया है। उसने निर्विकार परमात्मा का भी वर्णन किया है। **"निर्विकारः**

परस्त्वात्मा।" (च0 सू0 1/56) चरक का पुरुष शब्द व्यापक अर्थ वाला प्रतीत होता है, जिसने कुछ सीमा तक ईश्वर को भी इसमें समेट लिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि चरक के समय में ईश्वर शब्द का प्रयोग परमेश्वर या जगत् नियन्ता अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था। योगसूत्र में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि अविद्यादि पाँचों क्लेश, शुभाशुभमिश्रित विविध कर्म, कर्मों के फल, सुख–दुःख, इनके भोगों के संस्कार–वासनाएँ इन सबके सम्बन्ध से रहित जीवों से भिन्न स्वभाव वाला चेतन विशेष 'ईश्वर' है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। यो0 सू0 1/24

8.10 मोक्ष निरूपण

आयुर्वेद के प्रमुख आचार्य चरक ने मोक्ष के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि मन में जब रज और तमोगुण का अभाव होता है तथा बलवान् कर्मों का क्षय हो जाता है तब कर्मजन्य बन्धनों से वियोग हो जाता है। उसे "अपुनर्भव" या 'मोक्ष' कहते हैं।

मोक्षोरजस्तमोऽभावात् बलवत् कर्मसंक्षयात् वियोगः सर्वयोगैरपुनर्भूवः।

च0 सं0 शा0 1/42

इसी प्रकार एक अन्य स्थान में इसका वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि महात्मापुरुषों की सेवा, यमनियमों का पालन, चान्द्रायण आदि व्रतों का सेवन, आत्मशुद्धि हेतु उपवास, धर्मशास्त्रों का अध्ययन, कामक्रोधादि का त्याग, दुष्टजनों की उपेक्षा, पुनर्जन्म या इस जन्म में किये गये कर्मों का क्षय, आश्रमों से दूर रहकर कर्मफल हेतु कर्मों का त्याग, आत्मा और शरीर के संयोग से भयभीत होना तथा बुद्धि को समाधिस्थ करने का प्रयास आदि से मोक्षप्राप्ति संभव है।

सतामुपासनं सम्यगसतां विवर्जनम्।
व्रताचार्योपवासौचनियमाश्चपृथग्विधाः।।
धारणं धर्मशास्त्राणां विज्ञानविजनेरतिः।

विषयेष्वरतिर्मोक्षे व्यवसायः पराधृतिः।। च0 सं0 शा0 1/145–146

चरक का मत है कि सभी कारण बाह्यकार्य दुःखहेतु है, ये आत्मा से सम्बद्ध कार्य नहीं है, यह कार्य शून्य है और अनित्य है, आत्मा उदासीन है, अतः वे कार्य आत्मा द्वारा सम्पन्न न होकर प्रकृति के स्वभावश स्वतः होते रहते हैं। सत्यबुद्धि की उत्पत्ति तक यह भ्रम बना रहता है। 'यह मैं' ऐसी अहंकार बुद्धि और 'मेरा' यह ममत्वबुद्धि प्रकृति (माया) का प्रपंच है, जब इसका नाश नहीं होता, तब तक जीवात्मा बन्धन में फॅसा रहता है। तथा जब आत्मा सभी तत्त्वों को स्मृति द्वारा जान लेता अर्थात् सांसारिक प्रपंचों को उसे यथार्थ ज्ञान हो जाता है।

स्मृतिः सत्सम्बन्धाद्यैश्च धृत्यन्ते रूप जायते।

स्मृत्वास्वाभावं भावानां विस्मरणं दुःखात् प्रमुच्यते।। च0 सं0 शा0 1/147

वही जीवात्मा तत्त्वज्ञान द्वारा कर्मबन्धन तथा क्लेशादि से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आयुर्वेद में भी योग तत्त्वों का वर्णन अवश्य किया गया है। आयुर्वेद और योग दोनों का एक ही लक्ष्य मनुष्य के वर्तमान जीवन को सुखमय बनाते हुए उसे मोक्ष की प्राप्ति तक ले जाना है।

अभ्यास हेतु प्रश्न–

1– आयुर्वेद का शाब्दिक अर्थ है–

अ– दुखों का ज्ञान ब– मुक्ति का ज्ञान

स– जीवन का विज्ञान द– आत्मा का विज्ञान

2– चरक संहिता में कितने प्रकार के योग का वर्णन है–

अ–चार ब–आठ स–दस द–बारह

3– ब्रह्मचर्य के द्वारा प्राप्त होता है–

अ– ज्वर से छुटकारा ब– अपूर्व शक्ति

स– वीर्य लाभ द– सभी

4– आयुर्वेद में वायु को किसकी संज्ञा दी गयी है–

अ– हवा ब– प्राण स– जल द– आकाश

5– चरक संहिता में ईश्वर शब्द का प्रयोग कितने स्थानों पर हुआ है–

अ– एक ब– दो स– पॉच द– अनेक

8.11 सारांश–

प्रिय पाठकों उपरोक्त अध्ययन स्पष्ट करता है कि

आयुर्वेद आयु का वह ज्ञान है जिसके माध्यम से एक स्वस्थ पुरूष अपने स्वास्थ्य का रक्षण करता है एवं एक बिमार व्यक्ति के रोग दूर होते है। स्वस्थ्य रक्षण हेतु आयुर्वेद में विभिन्न

विधियों का वर्णन किया गया है। यहां पर स्वास्थ्य का आधार वात–पित्त कफ नामक त्रिदोष को माना गया है।

इसके साथ–साथ आयुर्वेद शास्त्र में अष्टांग योग के साथ बहुत विषयों पर समानताए मिलती है। जिस प्रकार अष्टांग योग में यम का वर्णन आता है। उसी प्रकार आयुर्वेद में सद्वृत का वर्णन आता है। साथ ही साथ शुद्धि, जप, दान, एवं स्वाध्याय को भी आयुर्वेद में कहा गया है।

आयुर्वेद में कर्म एवं कर्मफल पर भी प्रकाश डाला गया है। आयुर्वेद शास्त्र में पुरूष आत्मातत्व एवं ईश्वर के स्वरूप को भी समझाया गया है। तथा अन्त में मोक्ष निरूपण का वर्णन किया गया है।

8.12— शब्दावली—

पुरूषार्थ – कार्य

सन्निष्कर्ष – मिलन

अनुभूति – ज्ञान

निरूद्ध – रुक जाना

प्रतिपादन – रचना करना

निष्पन – प्राप्त होना

निरुपण – स्थापना करना या वर्णन करना

अधोगति – निम्न मार्ग में गमन करना

अव्यक्त – जो प्रकट ना किया जा सके

क्षेत्रज्ञ – सर्वत्र व्याप्त

शाश्वत – सदैव

विभु – प्रकाशवान

अव्यय – जो व्यय अर्थात खर्च ना होता हो

8.13 प्रश्नों के उत्तर

1– स **2**– अ **3**– द **4**– ब **5**– ब

8.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. चरक संहिता (भाग – 1) – डॉ0 ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1983।
2. चरक संहिता (भाग – 2) – डॉ0 ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1988।
3. योग दर्शनम् – स्वामी सत्यपति परिव्राजक – दर्शन योग महाविद्यालय, गुजरात, 2006।
4. भारतीय दर्शन की रूपरेखा – प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसी दास, 2002।
5. उपनिषदों में योग विद्या – डॉ0 रघुवीर वेदालंकार।
6. औपनिषदिक अध्यात्म विज्ञान – डॉ0 ईश्वर भारद्वाज, क्लासिकल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
7. स्वस्थ वृत विज्ञान – प्रो0 रामहर्ष सिंह, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली – 2007
8. प्राकृतिक आयुर्विज्ञान – डॉ0 राकेश जिन्दल, आरोग्य सेवा प्रकाशन, मोदीनगर (उ0प्र0)।

8.15 निबंधात्मक प्रश्न–

1– आयुर्वेद को परिभाषित करते हुए सविस्तार से समझाइये।

2– आयुर्वेद पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।

इकाई 9 – अष्टांग योग एवं कर्मयोग

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 अष्टा्ंग योग

9.3.1 बहिरंग योग

9.3.2 अन्तरंग साधन

9.4 कर्मयोग

9.4.1 कर्म के भेद

9.4.2 गीता के अनुसार कर्म

9.4.3 योग सूत्र के अनुसार कर्म

9.5 सारांश

9.6 शब्दावली

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

वर्तमान में योग की अनेको पद्धतियॉ प्रचलित है। सभी पद्धतियों के मूल में एक ही भाव अन्तर्निहित है कि आत्मकल्याण कर परम लक्ष्य को प्राप्त करना। इस संसार में प्रचलित मत–मतान्तरों दार्शनिक–सम्प्रदायों में विभिन्नता होने के कारण सबने अपने अलग–अलग मार्ग चुन लिए तथा प्रकारान्तर में एक सम्प्रदाय उस साधना पद्धति के लिए तैयार कर दिया। यह सर्वविदित है कि इस संसार में सबकी रूचि एक जैसी नहीं होती। अतः जो व्यक्ति या साधक जिस साधना पद्धति को सरलता से ग्रहण कर सके वही अपनाना उचित होगा। यही विचार योग की विभिन्न पद्धतियों के मूल में निहित प्रतीत होता है। पाठकों जिस प्रकार समुद्र में सारी नदियॉ समाहित होकर एक हो जाती है उसी प्रकार ज्ञान, कर्म, भक्ति, राजयोग इत्याजदि नदियॉ उस परम ब्रहम में एकाकार हो जाती है उस परम ब्रहम में एकाकार होने का नाम ही योग है। प्रस्तुत इकाई में आप अष्टांग योग तथा कर्मयोग के बारे में अध्ययन करेगें। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि समाधि की प्राप्ति के लिए अनेकानेक साधन योग शास्त्रों में बताये गये है। यह साधक की इच्छा है कि वह अपनी रूचि के अनुसार कौन सा मार्ग चुनता है। व साधक भले ही कोई भी मार्ग चुने उसकी साधना की अन्तिम परिणति समाधि की प्राप्ति ही है।

9.2 उद्देश्य्

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप

- योग के अति महत्वपूर्ण अंग अष्टांग योग के अभ्यासों को समझ सकेंगे।
- कर्मयोग से भी समाधि सिद्धि की जा सकती है यह जान सकेगें।
- समझ सकेगे कि कर्म संस्कारों के विद्यमान रहते मनुष्य को कैवल्य की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

9.3 अष्टांग योग

अष्टांग योग महर्षि पतंजलि द्वारा रचित व प्रयोगात्मक सिद्धान्तों पर आधारित योग के परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक साधना पद्धति है। महर्षि पतंजलि से भी पूर्व योग का सैद्धान्तिक एवं क्रियात्मक पक्ष विभिन्न ग्रंथों में उपलब्ध था परन्तु उसका स्वरूप बिखरा हुआ था। बिखरे हुए योग के ज्ञान को सूत्र में एक करने का कार्य महर्षि पतंजलि द्वारा ही हुआ है। कहा गया है– चित्त की मलिनता योग शास्त्र के द्वारा, वाणी (पद–वाक्य) की मलिनता (अशुद्धि) व्याकरण शास्त्र के द्वारा और शरीर की मलिनता वैद्यक शास्त्र के द्वारा जो दूर करता है, उस मुनिश्रेष्ठ पतंजलि को मैं अंजलिबद्ध रूप से प्रणाम करता हूँ।

महर्षि पतंजलि ने अपने योगसूत्र नामक ग्रंथ में तीन प्रकार की योग साधनाओं का वर्णन किया है। प्रथम साधना उत्तम कोटि के साधकों के लिए है जिन्हें केवल अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से ही समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

उत्तम कोटि के साधक ईश्वरप्रणिधान द्वारा भी साधना करके समाधि भाव की प्राप्ति के पश्चात परम लक्ष्य सुगमता से प्राप्त कर सकते हैं। इसी आधार पर सूत्रों में कथन है कि मध्यम कोटि के साधकों के लिए महर्षि पतंजलि ने दूसरे अध्याय में क्रियायोग का वर्णन किया है। क्रिया योग का अर्थ बताते हुए कहा गया है–

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोग प0योग0सू0 2/1

तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान की संयुक्त साधना क्रिया योग कहलाती है। जिसका उद्देश्य समाधि भाव को प्राप्त करना व क्लेशों को क्षीण करना है।

तृतीय प्रकार की साधना सामान्य कोटि के साधकों के लिए है जिनका न तो शरीर शुद्ध है और न ही मन। ऐसे साधकों को प्रारम्भ से ही साधनारत रहते हुए महर्षि पतंजलि द्वारा प्रस्तुत अष्टांगयोग का आश्रय लेना चाहिए। 'अष्टांग' शब्द दो शब्दों के मेल से बना है अर्थात् अष्ट + अंग, जिसका अर्थ है आठ अंगों वाला। अतः अष्टांगयोग वह साधना मार्ग है जिसमें आठ साधनों का वर्णन मिलता है जिससे साधक शरीर व मन की शुद्धि करके परिणामस्वरूप एकाग्रता भाव को प्राप्त कर समाधिस्थ हो जाता है तथा कैवल्य की प्राप्ति कर लेता है। अष्टांग योग के विभिन्न भेद इस प्रकार से है–

9.3.1 बहिरंग योग — महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग को दो भागों में बांटा है –

बहिरंग योग एवं अन्तरंग योग।

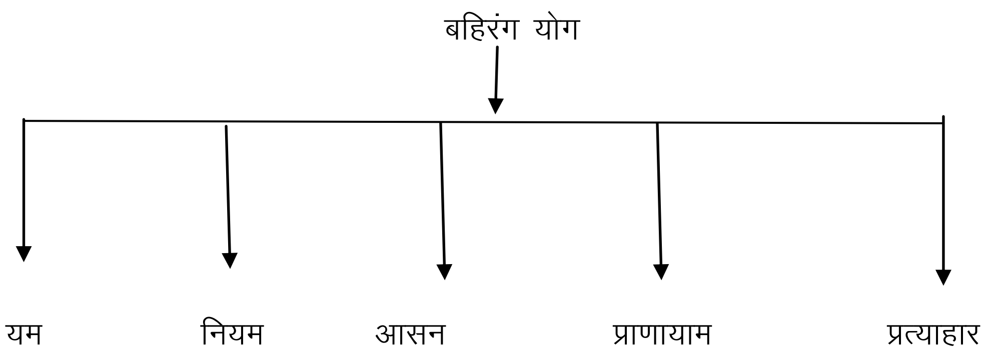

1. **यम–** जो अवांछनीय कार्यों से मुक्ति दिलाता है, निवृति दिलाता है वह यम कहलाता है।

यम की उत्पत्ति संस्कृत के दो धातु से माना गया है।

1. यम उप्रमे 2. यम बंधने

यम उप्रमे – ब्रहम में रमन करना

यम बंधने – सामाजिक बंधन।

त्रिशिख ब्रह्मणोपनिषद के 29 वें श्लोक में कहा गया है

देह इन्द्रियसु वैराग्यण यम इति उच्य ते बुधै ।

अर्थात – यम शरीर और इन्द्रियों में वैराग्या की स्थिति है ऐसा बुद्धिमान लोग मानते है।

यमयते नियम्यते चित्ति अनेन इति यम ।

अर्थात – चित्ति को नियम पूर्वक चलाना यम कहलाता है।

पातंजल योग सूत्र – यहॉ पांच प्रकार के यमों का वर्णन मिलता है।

अहिंसा सत्यास्तेतय ब्रहमचर्यापरिग्रहा यमाः । 2/30 योग सूत्र

अर्थात – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रहमचर्य और अपरिग्रह ये पांच यम है। इन्हें सार्वभौम महाव्रत भी कहा गया है। ये महाव्रत तब बनते हैं जब इन्हें जाति, देश, काल तथा समय की सीमा में न बांधा जाये। इसमें सर्वप्रथम अहिंसा है।

क. अहिंसा – अहिंसा का अर्थ है सदा और सर्वदा किसी प्राणी का अपकार न करना, कष्ट. न देना।

याज्ञवल्यकसंहिता में कहा गया है।

मनसावाचा कर्मणा सर्वभूतेषू सर्वदा।

अक्लेवश जननं प्रोक्त महिंसात्वेन योगिभि।।

अर्थात – मन, वचन एवं कर्म द्वारा सभी जनों को क्लेश न पहुँचाने को ही महर्षि जनों ने अहिंसा कहा है।

व्याससभाव्य – में व्यास जी ने कहा है कि

अहिंसा सर्वदा सर्वभूतानामनभिदोह।

अर्थात – सभी प्राणियों के प्रति हर प्रकार से विद्रोह भाव का परित्याग करना अहिंसा है।

पातंजल योग सूत्र में अहिंसा के फल के बारे में लिखा है–

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याागः । 2/35

अर्थात – अहिंसा की पूर्णता और स्थिरता होने पर साधक के सम्पर्क में आने वाले सभी प्राणियों की हिंसा बुद्धि दूर हो जाती है। यह अहिंसा का मापदण्ड है।

ख. सत्य– सत्य का अर्थ है– मन, वचन और कर्म में एकरूपता। अर्थात अर्थानुकूल वाणी और मन का व्यसवहार होना, जैसा देखा और अनुमान करके बुद्धि से निर्णय किया अथवा सुना हो, वैसा ही वाणी से कथन कर देना और बुद्धि में धारण करना।

मनुस्मृति – में कहा है–

सत्यंम ब्रुयात प्रियं ब्रुयात मा ब्रुयात सत्यभ्मपियम्

अर्थात – सत्य बोले, परन्तुं प्रिय शब्दों में बोले, अप्रिय सत्य न बोलें। परन्तु प्रिय लगने के लिए असत्य भाषण न करें, ऐसा पुरातन विधान है। जैसे नेत्रहीन को अन्धा कह देना सत्य है, चोर को चोर कह देना भी सत्य है– किन्तु यह अप्रिय सत्य है।

मुण्डकोपनिषद कहता है –

सत्ययमेवजयते नानृतं।

अर्थात – सत्य की जीत होती है, असत्य की नहीं।

आयुर्वेद चरकसूत्र में कहा गया है–

'ऋतं ब्रुयात सत्य बोलना चाहिए।

महाभारत शांतिपर्व – सत्य बोलना अच्छा है, परन्तु सत्य में भी ऐसी बोली बोलना अच्छा होता है, जिससे सब प्राणियों का वास्तविक हित होता है वह हमारी नजर व मन में सत्य है।

पातंजल योग सूत्र– में सत्य के फल के बारे में कहा हैः

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम। 2/36

अर्थात – सत्य की प्रतिष्ठा होने पर वाणी और विचारों में क्रिया फल दान की शक्ति उत्पन्न– हो जाती है। ऐसा व्यक्ति जो कुछ भी बोलता है, वह फलित होने लगता है अर्थात वह वाक् सिद्ध हो जाता है।

ग. अस्तेय – स्तेय का अर्थ है– अधिकृत पदार्थ को अपना लेना। इसे भी बुद्धि वचन और कर्म से त्याग देना अस्तेय है।

शांडिल्योपनिषद के 1/1 श्लोक में कहा गया है–

अस्तेलयं नाम मनोवाक् कायकर्मभि परद्ध्येमषु निस्पृहता।

अर्थात – शरीर, मन और वाणी द्वारा दूसरों के द्रव्य की इच्छा न करना अस्तेय कहलाता है।

याज्ञवल्क्य संहिता में कहा गया है –

मनसा वाचा कर्मणा परद्रव्येषु निस्पृाह।

अस्तेवयनिति सम्प्रोयक्तं ऋषिभ्ज्ञि तत्व दर्शिभि।।

अर्थात – मन, वचन और कर्म से दूसरे के द्रव्य की इच्छा न करना अस्तेय है। तत्वदर्शी ऋषियों ने ऐसा ही कहा है।

व्यास भाष्य में महर्षि व्यास लिखते है कि–

स्तेयमशास्त्र।पूर्वकंद्रव्यारणांपरतस्वीकरणमृतत्प्रअतिषेध पुनरस्पृशहारूपमस्तेयमिति।

अर्थात – शास्त्रीय ढंग से अर्थात् धर्म के विरूद्ध अन्याय पूर्वक किसी दूसरे व्यक्ति के द्रव्य इत्यादि को ग्रहण करना स्तेय है, पर वस्तु में राग का प्रतिषेध होना ही 'अस्तेय' है।

योग सूत्र – में अस्तेय सिद्धि के विषय में कहा है –

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम। 2/37

अर्थात – अस्तेय की दृढ़ स्थिति होने पर सर्व रत्नों की प्राप्ति होती है।

घ. ब्रहमचर्य – मन को ब्रहम या ईश्वर परायण बनाये रखना ही ब्रहमचर्य है। वीर्य शक्ति की अविचल रूप में रक्षा करना या धारण करना ब्रहमचर्य है।

महर्षि व्यास ने लिखा है –

ब्रहमचर्य गुप्तेन्द्रियस्योरपस्थरस्य संयम।

अर्थात – गुप्त इन्द्रिय (उपस्थेन्द्रिय) के संयम का नाम ब्रहमचर्य है।

'शाडिल्योपनिषद में इसकी और सूक्ष्म व्याख्या करते हुए कहते है

ब्रहमचर्य नाम सर्वावस्थासु मनोवाक काय कर्मभि सर्वत्तमैथुन त्यागः।

अर्थात – सभी अवस्था में सर्वत शरीर, मन और वाणी द्वारा मैथुन का त्याग ब्रहमचर्य कहलाता है।

ब्रहमचर्य सिद्ध कर लेने वाले साधकों के संबंध में पातंजल योग सूत्र में कहा गया है–

ब्रहमचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः । 2/38

अर्थात – ब्रहमचर्य की प्रतिष्ठा होने पर साधक को वीर्य लाभ होता है। वीर्य लाभ होने से साधना के अनुकूल गुण समूह पैदा होते है। जिससे योगाभ्यासी को आत्मज्ञान प्राप्त होता है।

ड. अपरिग्रह – संचय वृत्ति का त्याग 'अपरिग्रह' है। विषयों के अर्जन में, रक्षण, उनका क्षय, उनके संग और उनमें हिंसादि दोष के विषयों को स्वीकार न करना ही अपरिग्रह है।

इन्द्रियाणां पसंगेन दोषमृच्छत्य संशयम।

सन्नियम्यण तु तान्येछव ततरू सिद्धिं नियच्छि्त।। मनुस्मृति 2/13

अर्थात – इन्द्रियों के विषयों में आशक्त होने से व्यक्ति निःसंदेह दोषी बनता है परन्तु इन्द्रियों को वश में रखने से विषयों के भोग से पूर्ण विरक्तं हो जाता है। ऐसे आचरण से अपरिग्रह की सिद्धि होती है।

पूर्ण अपरिग्रह को प्राप्त साधक में काल–ज्ञान संबंधी सिद्धि आ जाती है, पातंजल योग सूत्र का इस संबंध में कथन है–

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः । 2/39

अर्थात – अपरिग्रह के स्थिर होने से जन्म–जन्मान्तर का ज्ञान प्राप्त होता है। इसका अर्थ हुआ कि पूर्वजन्म– में हम क्या थे, कैसे थे। इस जन्म की परिस्थितिया ऐसी क्यों हुई एवं हमारा भावी जन्म कब, कहां, कैसा होगा। इस ज्ञान का उदय होना अपरिग्रह साधना द्वारा ही सम्भव होता है।

2. नियम – नियम का तात्पर्य आन्तरिक अनुशासन से है। यम व्यक्ति के जीवन को सामाजिक एवं बाह्व क्रियाओं में सामंजस्य पूर्ण बनाते है और नियम उसके आन्तरिक जीवन को अनुशासित करते हैं।

नियमों के अन्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणीधान आते हैं। अपने जीवन में इस अनुशासन को उत्पन्न और विकसित करना आवश्यक है। योग सूत्र में कहा है –

शौचसन्तोषतप स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः । 2/32

अर्थात– शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान ये 5 नियम है

क. शौच– शौच का अर्थ है परिशुद्धि, सफाई, पवित्रता। न खाने लायक चीज को न खाना, निन्दितों के साथ संग न करना और अपने धर्म में रहना शौच है। शौच मुख्यतः दो है बाह्य और आभ्यान्तर।

शौच या पवित्रता दो प्रकार की होती है।

1. बाह्य **2.** आभ्यान्तर शौच।

1. बाह्य शौच– जल व मिट्टी आदि से शरीर की शुद्धि, स्वार्थ त्याग, सत्याचरण से मानव व्यवहार की शुद्धि, विद्या व तप से पंचभूतों की शुद्धि, ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि ये सब बाह्व शुद्धि कहलाती है।

2. आन्तरिक शौच – अंहकार, राग, द्वेष, ईर्ष्या , काम, क्रोध आदि मलों को दूर करना आन्तरिक पवित्रता कहलाती है।

योग सूत्र – में इसके फल के विषय में कहा है कि–

शौचात्स्वागजुगुप्सा परैरसंसर्गः। 2/40

अर्थात – शौच की स्थिरता होने पर निजी अंग समूह के प्रति घृणा और परदेह संसर्ग की अनिच्छा होती है।

ख. सन्तोष – सन्तोष नाम सन्तुष्टि का है। अन्तःकरण में सन्तुष्टि व भाव उदय हो जाना ही सन्तोष है।

अर्थात – अत्यधिक पाने की इच्छा का अभाव ही सन्तोष है।

मनुस्मृति कहती हैं सन्तोष ही सुख का मूल है। इसके विपरित असंतोष या तृष्णा ही दुख का मूल है।

योग सूत्र – में सन्तोष का फल बताते हैं –

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभ। 2/42

अर्थात – चित्त में सन्तोष भाव दृढ़ प्रतिष्ठित हो जाने पर योगी को निश्चय सुख यानी आनन्द प्राप्त होता है।

ग. तप – अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म का पालन करना और उसके पालन में जो शारीरिक या मानसिक अधिक से अधिक कष्ट, प्राप्त हो, उसे सहर्ष करने का नाम ही 'तप' है।

तपो द्वन्दसहनम् – सब प्रकार के द्वन्दों को सहन करना तप है। तप के बिना साधना, सिद्धि नहीं होती है, अतः योग साधना के काल में सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, आलस तथा जड़तादि द्वन्दों को सहन करते हुए अपनी साधना में उसका रहना 'तप' कहा जाता है।

योग सूत्र – में तप का फल बताते हुए कहा है

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयान्तपसः। 2/43

अर्थात – तप के प्रभाव से जब अशुद्धि का नाश हो जाता है तब शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है। तप के द्वारा क्लेशों तथा पापों का क्षय नाश हो जाने पर शरीर में अणिमा, महिमादि सिद्धि आ जाती है, और इन्द्रियों में सूक्ष्मता अर्थात दूर दर्शन, दूर श्रवण दिव्य गन्ध, दिव्य रसादि सूक्ष्म विषयों को ग्रहण करने की शक्ति भी आ जाती है। अतः योगी के लिए तप साधना नितांत आवश्यक है।

घ. स्वायध्याय – स्वाध्याय का तात्पर्य है आचार्य विद्वान तथा गुरूजनों से वेद उपनिषद् दर्शन आदि मोक्ष शास्त्रों का अध्ययन करना, यह एक अर्थ है। स्वाध्याय का दूसरा अर्थ है स्वयं का अध्ययन करना यह भी स्वाध्याय ही है।

योग भाष्य – 2/1 में महर्षि व्यास जी ने लिखा है –

'स्वाध्यायय प्रणव श्रीरूद्रपुरूषसूक्तासदि मन्त्राणां जपमोक्ष्यशास्त्रा ध्यआयभ्चक' ।।

अर्थात – प्रणव अर्थात ओंकार मन्त्र का विधि पूर्वक जप करना रूद्र सूक्त् और पुरूषसूक्त आदि वैदिक मन्त्रों का अनुष्ठान पूर्व जप करना तथा दर्शनोपनिषद एवं पुराण आदि आध्यात्मिक मोक्ष शास्त्रों का गुरूमुख से श्रवण करना अर्थात अध्ययन करना स्वाध्याय है।

पं0 श्री राम शर्मा के अनुसार अच्छी पुस्तके जीवन देव प्रतिमायें है, जिनकी आराधना से तत्काल प्रकाश और उल्लास मिलता है।

पातंजल योग सूत्र में स्वाध्याय के फलों का वर्णन किया है —

स्वााध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः 2/44

अर्थात – स्वाध्याय से ईष्टदेवता की भलीभांति प्राप्ति (साक्षात्कार) हो जाती है।

शास्त्राभ्यास, मंत्रजप और अपने जीवन का अध्ययन रूप स्वाध्याय के प्रभाव से योगी जिस ईष्ट देव का दर्शन करना चाहता है, उसी का दर्शन हो जाता है।

ड. ईश्वर प्रणिधान — ईश्वर की उपासना या भक्ति विशेष को ईश्वर प्रणिधान कहते है।

परमेश्वर के निर्मित अर्पित कर देना ईश्वर प्रणिधान है।

अथर्ववेद कहता है हे वरणीय परमेश्वर। हम जिस शुभ संकल्प इच्छा से आप की उपासना में लगे हुए है आप उसमें पूर्णता प्रदान करें सिद्धि दें और हमारे समस्त कर्म तथा कर्मफल आप के निमित अर्पित है, इसी का नाम ईश्वर प्रणिधान है।

'ईश्वरप्रणिधानाद्वा' योग सूत्र 1/23

अर्थात – ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि, शीघ्र होने की बात कही है, और यही बात 2/45 सूत्र में कहा है

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात।

अर्थात – ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि हो जाती है। ईश्वर प्रणिधान से ईश्वर की अनुकम्पा होती है। उस अनुभव से योग के समस्त अनिष्ट दूर हो जाते है तब योग सिद्धि होता है, योगी शीघ्र ही योगसिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

3. आसन — आसन शब्द् संस्कृत भाषा के अस धातु से बना है जिनका दो अर्थ है। पहला है सीट (बैठने का स्थान) , दूसरा अर्थ शारीरिक अवस्था

शरीर मन और आत्मा जब एक संग और स्थिर हो जाता है, उससे जो सुख की अनुभूति होती है वह स्थिति आसन कहलाती है।

तेजबिन्दुपिनिषद में आसन के विषय में कहा है–

सुखेनैव भवेत् यस्मिन्न जस्रं ब्रहमचिन्तम

अर्थात– जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरन्तर परमब्रहम का चिन्तन किया जा सके उसे ही आसन समझना चाहिए।

योग सूत्र के अनुसार–

स्थिरसुखमासनम् 2/46 यो0सू0

अर्थात – स्थिर और सुख पूर्वक बैठना आसन कहलाता है।

4. प्राणायाम– प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है। प्राण + आयाम ।

प्राण का अर्थ होता है, जीवनी शक्ति, आयाम के दो अर्थ है। पहला– नियन्त्रण करना या रोकना तथा दूसरा लम्बा या विस्तार करना।

प्राणवायु का निरोध करना 'प्राणायाम' कहलाता है।

योग सूत्र में प्राणायाम को इस प्रकार प्रतिपादित किया है –

''तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद् प्राणायाम। 2/49

अर्थात – उसकी (आसनों की) स्थिरता होने पर श्वास–प्रश्वास की स्वाभाविक गति के नियमन करना ''प्राणायाम है।

5. प्रत्याहार – पातंजल योग में प्राणायाम के पश्चात प्रत्याहार का कथन एवं विवेचन उसकी उपयोगिता की दृष्टि से किया गया है। प्रत्याहार का सामान्य अर्थ होता है, पीछे हटना उल्टा होना, विषयों से विमुख होना। इसमें इन्द्रिया अपने बहिर्मुख विषयों से अलग होकर अन्तर्मुख हो जाती है, इसलिए इसे प्रत्याहार कहा गया है। इन्द्रियों के संयम को भी प्राणायाम कहते है।

त्रिशिखिब्राहमणोपनिषद के अनुसार –

चित्तिस्थ्योन्तुर्मुखी भाव प्रत्यााहारस्तु सत्तयम

अर्थात – चित्त का अन्तर्मुखी भाव होना ही प्रत्यााहार है।

महर्षि पतंजलि ने प्रत्याहार का लक्षण निम्न प्रकार से प्रतिपादित किया है।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्त स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार्।

अर्थात – अपने विषयों के साथ इन्द्रियों का संबंध न होने पर, चित्त के स्वरूप का अनुकरण करना अर्थात् चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाना प्रत्याहार कहलाता है।

प्रत्याहार का फल बतलाते हुए महर्षि पतंजलि लिखते है–

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् 2/55 यो0 सू0

अर्थात – उस प्रत्याहार से इन्द्रियों की सर्वोत्कृष्ट वश्यता होती है अर्थात प्रत्याहार से इन्द्रियां एकदम वशीभूत हो जाती है।

9.3.2 अन्तरंग साधन

महर्षि पतंजलि ने निम्न तीन अन्तरंग साधन बताये है।

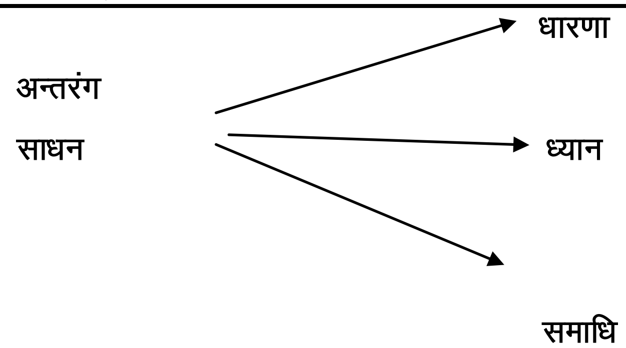

1. धारणा – महर्षि पतन्जलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग के अन्तरंग यह योग का छठा अंग है। मन (चित्त) को एक विशेष स्थान पर स्थिर करने का नाम 'धारणा' है। यह वस्तुतः मन की स्थिरता का घोतक है।

हमारे सामान्य दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार के विचार आते जाते रहते है। दीर्घकाल तक स्थिर रूप से वे नहीं टिक पाते और मन की सामान्य एकाग्रता केवल अल्प समय के लिए ही अपनी पूर्णता में रहती है। इसके विपरीत धारणा में सम्पूर्णत चित्त की एकाग्रता की पूर्णता रहती है।

महर्षि पतंजलि द्वारा धारणा का निम्न लक्षण बतलाया गया है–

"देशबन्धश्चितस्य धारणा"। 3/1 यो0 सू0

अर्थात – (बाहर या शरीर के भीतर कही भी) किसी एक स्थान विशेष (देश) में चित्त को बांधना धारणा कहलाता है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब किसी देश विशेष में चित्त की वृत्ति स्थिर हो जाती है और तदाकार रूप होकर उसका अनुष्ठान होने लगता है तो वह 'धारणा' कहलाता है।

2. ध्यान – धारणा की उच्च अवस्था ध्यान है ध्यान शब्द की उत्पत्ति ध्येचित्तायाम् धातु से होती है जिसका अर्थ होता है, चिन्तन करना। किन्तु यहाँ पर ध्यान का अर्थ चिन्तन करना नहीं अपितु चिन्तन का एकाग्रीकरण अर्थात् चित्त को एक ही लक्ष्य पर स्थिर करना।

सामान्यतः ईश्वर या परमात्मा में ही अपना मनोनियोग इस प्रकार करना कि केवल उसमें ही साधक निगमन हो और किसी अन्य विषय की ओर उसकी वृत्ति आकर्षित न हो 'ध्यान' कहलाता है। योग शास्त्रो के अनुसार जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाये उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना अर्थात् केवल ध्येय मात्र में एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी दूसरी वृत्ति का नहीं उठना 'ध्यान' कहलाता है।

महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र में ध्यान को इस प्रकार प्रतिपादित किया है।

"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" 3/2 यो0 सू0

अर्थात्– इस देश में ध्येय विषयक ज्ञान या वृत्ति का लगातार एक जैसा बना रहना ध्यान है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिसमें धारणा की गई उसमें चित्त जिस वृत्ति मात्र से ध्येय में लगता है, वह वृत्ति जब इस प्रकार समान प्रवाह से लगातार उदित होता रहे कि कोई दूसरी वृत्ति बीच में न आये उसे 'ध्यान' कहते है।

3. समाधि – अष्टांग योग में समाधि का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है। साधना की यह चरम अवस्था है, जिसमें स्वयं योगी का बाह्य जगत के साथ संबंध टूट जाता है। यह योग की एक ऐसी दशा है, जिसमें योगी चरमोत्कर्ष की प्राप्ति कर मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। और यही योग साधना का लक्ष्य है। अतः मोक्ष्य प्राप्ति से पूर्व योगी को समाधि की अवस्था से गुजरना पड़ता है। योग शास्त्र में समाधि को मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन बताया गया है, योग भाष्य में सम्भवत इसलिए योग को समाधि कहा गया है।'**योगः समाधि**'' पातंजलि योगसूत्र में चित्त की वृतियो के निरोध को योग कहा गया है। योगश्चितवृत्ति निरोध। समाधि अवस्था में भी योगी की समस्त प्रकार की चित्त वृत्तियॉ निरूद्ध हो जाती है।

महर्षि पतंजलि ने समाधि का स्वरूप निम्न प्रकार से बताया है–

''तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यनमिव समाधिः ।'' 3/3 यो0सू0

अर्थात् – जब (ध्यान में) केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीती होती है और चित्त का निज स्वथप शून्य सा हो जाता है, तब वह (ध्यान ही) समाधि हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. सत्य/असत्य बताये

(क) यम का वर्णन अन्तरंग साधन में मिलता है।

(ख) नियमों की संख्या छः बताई है।

(ग) धारणा की उच्च अवस्था का नाम ध्यान है।

(घ) अस्तेय की प्रतिष्ठा होने पर सारे रत्नों की प्राप्ति हो जाती है।

9.4 कर्मयोग

कर्म शब्द कृ धातु से बनता है। कृ धातु में 'मन' प्रत्यय लगने से कर्म शब्द की उत्पत्ति होती है। कर्म का अर्थ है क्रिया, व्यापार, भाग्य आदि। हम कह सकते हैं कि जिस कर्म में कर्ता की क्रिया का फल निहित होता है वही कर्म है।

कर्म करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। तथा कर्म के बिना मनुष्य का जीवित रहना असम्भव है। कर्म करने की इस प्रवृत्ति के संबन्ध में गीता में कहा गया है–

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। (गीता 3/5)

अर्थात् इस विषय में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता कि मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता, क्योंकि सभी मानव प्रकृतिजनित गुणों के कारण कर्म करने के लिए बाध्य होते हैं। मनुष्य को न चाहते हुए भी कुछ न कुछ कर्म करने होते हैं और ये कर्म ही बन्धन के कारण होते हैं। साधारण अवस्था में किये गये कर्मों में आसक्ति बनी रहती है, जिससे कई प्रकार के संस्कार उत्पन्न होते हैं। इन्हीं संस्कारों के कारण मनुष्य जीवन–मरण के चक्र में फंसा रहता है। जबकि ये कर्म यदि अनासक्त भाव से किये जाते हैं तो यह मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बन जाते हैं।

कर्म से व्यक्ति बंधन में बंधता है किन्तु गीता ने कार्य में कुशलता को योग कहा है। योग की परिभाषा देते हुए गीता में कहा है–

"योगः कर्मसु कौशलम" (गीता 2/50)

अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है। कर्मयोग साधना में मनुष्य बिना कर्म बंधन में बंधे कर्म करता है तथा वह सांसारिक कर्मों को करते हुए भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

कर्मयोग का गूढ़ रहस्य अर्जुन को बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन ! शास्त्रों के द्वारा नियत किये गये कर्मों को भी आसक्ति त्यागकर ही करना चाहिए क्योंकि फलासक्ति को त्यागकर किये गये कर्मों में मनुष्य नहीं बंधता। इसीलिए इस प्रकार वे कार्य मुक्तिदायक होते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि फल की इच्छा का त्याग करने पर कर्मों की प्रवृत्ति नहीं रहेगी, जबकि ऐसा नहीं है क्योंकि कर्म तो कर्तव्य की भावना से किये जाते हैं तथा यही कर्मयोग भी सीखाता है।

कर्मयोग की साधना में अभ्यासरत साधक धीरे–धीरे सभी कर्मों को भगवान को अर्पित करने लगता है, और साधक में भक्ति भाव उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था में साधक जो भी कर्म करता है वह परमात्मा को अर्पित करते हुए करता है। साधक परमात्मा में अपनी श्रद्धा बनाए रखते हुए उत्साह के साथ कर्म करता है। इस सम्बन्ध में गीता में कहा गया है–

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम।। (गीता 9/27)

अर्थात् हे अर्जुन! तू जो भी कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दानादि देता है, जो तप करता है, वह सब मुझको अर्पण कर।

ईश्वर के प्रति समर्पित कर्म व उसके फल सम्बन्ध को बताते हुए कहा गया है–

'ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्र मिवाम्भसा।। गीता 5/10

अर्थात् ब्रह्म को अर्पित करके अनासक्ति पूर्वक कर्म करने वाला उसके फल से वैसे ही अलग रहता है जैसे जल में कमल का पत्ता।

कर्मयोग की साधना में रत व्यक्ति में उच्च अवस्था की स्थिति आने पर स्वयं कर्ता की भावना समाप्त हो जाती है। इस अवस्था में साधक अनुभव करता है कि मेरे द्वारा जो भी कर्म किये जा रहे हैं, उन सबको करने वाले ईश्वर ही हैं। इस प्रकार से साधक कर्म करता हुआ भी बंधन से मुक्त रहता है। उसके द्वारा किये गये कर्म से किसी भी प्रकार के संस्कार उत्पन्न नहीं होते। इस प्रकार के कर्म मुक्ति को दिलाने वाले होते हैं।

कर्मयोग की साधना से साधक के लौकिक व पारमार्थिक दोनों पक्षों का उत्थान होता है। कर्मयोग के मार्ग से ही साधक गृहस्थ जीवनयापन करते हुए भी साधना कर सकता है तथा मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

9.4.1 कर्म के भेद –

प्रिय विद्यार्थियों अभी तक आपने कर्म शब्द की उत्पत्ति के साथ–साथ निष्काम कर्म के बारे में जाना और यह भी समझा कि अपने समस्त कर्मो को भगवान में अर्पित कर देना चाहिए। अक्सर कई योग साधकों के मन में प्रश्न उठते है कि

1– कर्म के भेद कौन–कौन से है।

2– क्या पूजा–पाठ, सन्यास भी कर्म है।

3– निषिद्ध कर्म क्या है।

4– वहित कर्म क्या है।

5– भगवत गीता में कितने प्रकार के कर्म बताये हैं।

अगले पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आप निश्चित रूप से उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जानने में सक्षम हो जायेंगे।

कर्म मुख्य रूप से दो प्रकार के होते है –

क. विहित कर्म

ख. निषिद्ध कर्म

क. विहित कर्म – विहित कर्म अर्थात अच्छे कर्म, सुकृत कर्म। विहित कर्म के भी चार भेद है –

विहित कर्म

नित्यकर्म | नैमित्तिक कर्म | काम्य कर्म | प्रायश्चित कर्म

अ. नित्य कर्म – नित्य कर्म का अर्थ है, प्रतिदिन किये जाने वाला कर्म जैसे सन्ध्या पूजा, अर्चना, वन्दना इत्यादि।

ब. नैमित्तिक कर्म – जो कर्म किसी प्रयोजन के लिए किये जाते है उदाहरणार्थ, किसी त्यौहार या पर्व आ जाने पर अनुष्ठान, किसी की मृत्यु हो जाने पर श्राद्ध, तर्पण इत्यादि, जैसे पुत्र के जन्म होने पर जातकर्म, बड़े होने पर यज्ञोपवीत इत्यादि।

स. काम्य कर्म – ऐसे कर्म जो किसी कामना या किसी प्रयोजन के लिए किये जाते है। जैसे नौकरी प्राप्ति के लिए, पुत्र की प्राप्ति के लिए, स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यज्ञ, वर्षा को रोकने के लिए, अकाल पड़ने पर वर्षा करने के लिए हवन या अनुष्ठान, पुण्यफल की प्राप्ति की इच्छा के लिए दान इत्यादि ये काम्य कर्म है।

द. प्रायश्चित कर्म – प्रायश्चित कर्म जैसा कि नाम से स्पष्ट होता है कि अगर व्यरक्ति से कोई अनैतिक काम या पाप हो जाये तो उसके प्रायश्चित के लिए वो जो कर्म करता है उसके प्रायश्चित कर्म कहते है तथा जन्म –जन्मान्तरों के पापों का क्षय करने के लिए तपचर्यादि इत्यादि प्रायश्चित कर्म कहलाते है।

ख. निषिद्ध कर्म – निषिद्ध कर्म अर्थात जो कर्म शास्त्र के अनुकूल नहीं है, चोरी, हिंसा, झूठ, व्याभिचार इत्यादि कर्म निषिद्धकर्म है। पाठको हम जो भी कर्म करते है हमारा मन (आत्म, तत्व) उसे करने या न करने के लिए प्रेरित करता है कोई व्यक्ति उस आत्मा की आवाज के अनुसार कर्म करता है और कोई अनसुना करता है। अगर आत्मा की आवाज अर्थात परमेश्वर का भय न करते हुए हम जो कर्म करते है वह निषिद्ध कर्म है।

9.4.2 गीता के अनुसार कर्म –

भगवदगीता में तीन प्रकार के कर्म बताये है जो इस प्रकार है –

क. कर्म – शास्त्र के अनुकूल, वेदों के अनुकूल किये गये कर्म।

ख. अकर्म – अकर्म का अर्थ है कर्म का अभाव यानि तुष्णा अभाव।

ग. विकर्म – अर्थात जो निषिद्ध (पाप) कर्म है वह विकर्म है।

9.4.3 योग सूत्र के अनुसार कर्म –

महर्षि पतंजलि ने कैवल्यपाद के सातवें सूत्र में कर्म के भेद बताये है।

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् योगसूत्र 4/7

अर्थात शुक्लकर्म, कृष्णकर्म, शुक्लकृष्णकर्म, तथा अशुक्लाकृष्णकर्म ये कर्म के चार भेद है –

क. शुक्लकर्म – जो कर्म श्रेष्ठ है अर्थात वेदों में बताई गई विद्याओं के आधार पर जो कर्म किये जाते है। इस शुक्ल कर्म से स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है।

ख. कृष्ण कर्म – जो कर्म पाप कर्म है उन्हे कृष्ण कर्म कहा है। अर्थात शास्त्र विरूद्ध पापकर्मो को कृष्णकर्म कहा गया है। इन कृष्ण कर्मो से दुख तथा नरक की प्राप्ति होती है तथा इन कर्मो के फलों को जन्म जन्मान्तर तक भोगना पड़ता है।

ग. शुक्लकृष्णकर्म – ऐसे कर्म जो पाप व पुण्य के मिश्रण हो। कहा गया है कि शुक्ल कृष्णकर्म से पुनः मनुष्य को जन्म की प्राप्ति होती है।

घ. अशुक्लकृष्णकर्म – जो न तो पाप कर्म हो न पुण्य कर्म और न पाप–पुण्य मिश्रित कर्म हो इन सब से भिन्न ये कर्म निष्काम कर्म है क्योंकि ये कर्म किसी भी कामना के नहीं किये जाते है। इन कर्मो को करने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तःकरण शुद्ध पवित्र तथा दर्पण की भॉति स्वच्छ छवि वाला निर्मल बन जाता है। शीघ्र ही ऐसे साधक को वास्तविक तत्व ज्ञान (आत्मा के ज्ञान) की प्राप्ति होती है या अन्त में निश्चित उसे कैवल्य की प्राप्ति होती है।

4.4.4 वेदान्त के अनुसार कर्म –

वेदान्त दर्शन में कर्म के तीन भेद बताये गये है–

क. संचित कर्म – संचित कर्म का अर्थ है कि पूर्वजन्म में हमने जो अनेको शरीर धारण किये है उन शरीरों में हमने जो कर्म किये वो संचित कर्म कहलाते है। हमारे जन्म जन्मान्तरों के संस्कार चित्त में संचित पड़े रहते हैं, इन्हीं कर्म–संस्कारों के समूहों को संचित कर्म कहते है।

ख. प्रारब्ध कर्म – प्रारब्ध कर्म ऐसे कर्म है जो संचित कर्मों में अति प्रबल है ये कर्म इतने बलवान होते है कि कर्मों का फल भोगने के लिए अगले जन्म में जाते है। पाठको यह निश्चित है कि हमारे सुख या दुख की उत्पत्ति प्रारब्ध कर्म के अनुसार ही होती है।

ग. क्रियमान कर्म – इन्हें आगामी कर्म के नाम से भी जाना जाता है। आगामी अर्थात आगे किये जाने वाला कर्म, व्यक्ति ने जिन कर्मो का आरम्भ अभी नही किया है वही आगामी कर्म है जो भविष्य में फल प्रदान करते है। आगामी कर्म मनुष्य के अधीन है इनको चाहे तो हम बना सकते है चाहे तो बिगाड़ सकते है।

अभ्यास प्रश्न

2. सत्य/असत्य बताइये

क. कर्म करना व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

ख. योगः कर्मसु कौशलम् यह योगसूत्र से लिया है।

ग. विहित कर्म के चार भेद है।

घ. कृष्ण कर्म का अर्थ पाप कर्म से है।

ड. वेदान्त के अनुसार कर्म के दो प्रकार है।

10.5 सारांश

योग की अन्तिम पराकाष्ठा समाधि की प्राप्ति हैं। इस समाधि की प्राप्ति के लिए अष्टांग योग तथा कर्मयोग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। अष्टांग योग में साधक बहिरंग व अन्तरंग साधनों का उपयोग करते हुए आठ सीढ़ियों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि) का उपयोग कर कैवल्य की प्राप्ति करता है। कर्मयोग के शास्त्रों में निष्काम कर्म की बात की है। कोई भी व्यक्ति किसी भी काल में बिना कर्म किये नहीं रह सकता है क्यों कि समस्त समुदाय प्रकृति जनित गुणों के द्वारा कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है। कर्म ही बन्धन के कारण है तथा मुक्ति के भी। अगर साधक निष्काम कर्म करे, तो वह निश्चित कर्मयोग की उच्च अवस्था में पहुँचकर आत्मा व परमात्मा का मिलन अवश्य करता है। साधना चाहे जो भी हो पर निष्कर्ष निकलता है, कि योग का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है।

9.6 शब्दावली

जिज्ञासु – जानने की इच्छा रखने वाला

अवांछनीय – गलत, गन्दे

निवृति – दूर करना, निकालना

अस्तेय – चोरी ना करना

सत्य – इन्द्रिय जनित ज्ञान

शौच – शुद्धता

स्वाध्याय – अपना अध्ययन, अच्छी पुस्तकों का अध्ययन

तृष्णा – असंतोष

प्रत्याहार– इन्द्रिय संयम

आरण्ययक –जंगलों में लिखे गये साहित्य

काया – शरीर

विहित कर्म – अच्छे व सुकृत कर्म

काम्य – कामना, इच्छा

विकर्म – पाप कर्म

शुक्ल कर्म – श्रेष्ठ कर्म

कृष्ण कर्म – पाप कर्म

तत्व ज्ञान – आत्मा का ज्ञान

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क. असत्य ख. असत्य ग. सत्य घ. सत्य
2. क. सत्य ख. असत्य ग. सत्य घ. सत्य ड. असत्य

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 सरस्वती स्वामी विज्ञानानन्द –योग विज्ञान (2007) योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेश।

2 महर्षि पतंजलि –योग दर्शन (2001) गीताप्रेस गोरखपुर ।

3 शिवानन्द स्वामी – श्रीमदभगवद्गीता (2005) द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर ऋषिकेश।

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. योग के अन्तंरंग पक्षों की विस्तारपूर्वक चर्चा करें।
2. अष्टांग योग क्या है। बहिरंग पक्षो की विस्ताचरपूर्वक चर्चा कीजिए।
3. सिद्ध कीजिए कि यम व नियम योग की आधारशिला है।
4. कर्मयोग साधना का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
5. कर्मयोग क्या है? योगसूत्र के अनुसार कर्म के भेदों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

इकाई 10 – भक्तियोग एवं ज्ञान योग

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 भक्तियोग

10.3.1 नवधा भक्ति

10.3.2 रागात्मिका भक्ति

10.3.3 पराभक्ति

10.4 ज्ञान योग

10.4.1 ज्ञानयोग क्या् है।

10.4.2 ज्ञानयोग की साधना

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने ज्ञानयोग तथा कर्मयोग के बारे में अध्ययन किया। जैसा कि स्पाष्ट किया जा चुका है कि समाधि (कैवल्य) की प्राप्ति के लिए अनेकानेक साधन योग शास्त्रों में बताये गये है। यह साधक की इच्छा है कि वह अपनी रूचि के अनुसार कौन सा मार्ग चुनता है। व साधक भले ही कोई भी मार्ग चुने उसकी साधना की अन्तिम परिणति समाधि की प्राप्ति ही है। प्रस्तुत इकाई में आप भाव प्रधान साधको के लिए वर्णित भक्ति योग तथा अधम कोटि के जिज्ञासु साधको के लिए ज्ञान योग की साधना का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप

- भक्तियोग को विस्तार से समझ सकेंगे।
- नवधा भक्ति की नौ धाराओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- ज्ञानयोग के अति महत्वपूर्ण पक्षों को समझ सकेंगे।
- षट्सम्पति के व्यवहारिक पक्षों की अवधारणा का अध्ययन करेगें।
- ज्ञानयोग की सर्वसुलभ साधना का वर्तमान परिपेक्ष्य में विश्लेषण कर सकेंगे।

10.3 भक्तियोग

जिज्ञासु पाठको भक्ति शब्द से आप निश्चित परिचित होंगे। आपने–अपने घर के मन्दिर में, उपासना गृहों में तीर्थो में, लोगों को पूजा पाठ करते देखा होगा। भारतीय चिन्तन में ज्ञान तथा कर्म के साथ भक्ति को कैवल्य प्राप्ति का साधन माना है। आपको कुछ प्रश्न अवश्य उत्तर जानने के लिए प्रेरित कर रहे होंगे जैसे

- भक्ति क्या है।
- भक्ति के भेद क्या है।
- भक्त के क्या कोई प्रकार होते है।
- भक्ति से कैसे समाधि की सिद्धि होती है।

मुझे विश्वास है कि आगामी पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आपको उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर मिल जायेंगे।

भक्तियोग प्रेम की उच्च्व पराकाष्ठा है। ईश्वर के प्रति अत्याधिक प्रेम ही भक्ति है जब व्यक्ति संसार के भौतिक पदार्थो से मोह त्याग कर अनन्य भाव से ईश्वर की उपासना करता है तो वह भक्ति कहलाती है।

प्रश्न उठता है कि भक्ति शब्द संस्कृत व्याकरण के किस धातु से बना है।

'भज् सेवायाम धातु से 'क्तिन प्रत्यय लगाकर भक्ति शब्द बनता है जिसका अर्थ सेवा, पूजा उपासना और संगतिकरण करना आदि होता है। भक्ति भाव से ओतप्रोत साधक पूर्ण रूप से ब्रह्म, ईश्वर के भाव में भावित होकर सर्वतोभावेन तदरूपता की अनुभूति को अनुभव करता है। इसलिए कहा गया है–

'भक्ति नाम प्रेम विशेषः'

अर्थात् ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम विशेष का नाम ही भक्ति है।

भक्ति योग का मार्ग भाव–प्रधान साधकों के लिए अधिक उपयुक्त माना गया है। इस मार्ग में साधक का चित्त आसानी से एकाग्र हो जाता है। यह मार्ग अति सरल होने के कारण जनसाधारण में काफी लोकप्रिय व प्रचलित है।

भक्ति योग की परिभाषा देते हुए नारद भक्ति सूत्र में कहा गया है–

'सा तस्मिन् परम प्रेमरूपा'1/2

अर्थात् प्रभु के प्रति परम प्रेम को भक्ति कहते हैं। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति को परिभाषित करते हुए कहा गया है–

सा भक्तिः परानुरक्तिरीश्वरे' 1/2

अर्थात् ईश्वर में परम अनुरक्ति भक्ति है। इस प्रकार प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम में डूब जाना भक्ति कहलाता है। जैसा की स्पष्ट हो चुका है कि अपने आराध्य से अन्नय प्रेम का नाम भक्ति है। यह तो निश्चित है कि साधक ईश्वर की भक्ति किसी प्रयोजन से करता है गीता में भक्ति के प्रयोजन को भक्त के भेद के परिपेक्ष्य में आप समझ सकते है।

चतुर्विधा भजन्ते मां जतारू सुकृतिनोडर्जुन।

आर्तोजिज्ञासुर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। गीता (7/16)

अर्थात हे भरतवंशी अर्जुन। चार प्रकार के पुण्यशाली मनुष्य मेरा भजन करते है यानि उपासना करते है। वे है आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी।

1. आर्त भक्त– पाठको अपने मानस पटल पर द्रोपदी के चीर हरण की कहानी को लाइये जब द्रोपदी ने देखा कि दुःसासन द्वारा चीर हरण किया जा रहा है, तो उसने आर्त भाव से भगवान कृष्ण को पुकारा है और भगवान कृष्ण स्वयं उसकी रक्षा के लिए आये। कहने का तात्पर्य है कि आर्त भक्त वो कहलाते है जब वे गम्भीर संकट में फंस जाते है तो वे अपने आराध्य को आर्त भाव से पुकारते है और उसकी शरण में जाते है।

2. जिज्ञासु भक्त – जिज्ञासु जैसा नाम से स्पष्ट है कि जिज्ञासा रखने वाले अर्थात किसी वस्तु को जानने की इच्छा रखने वाले। अब प्रश्न उठता है कि वह वस्तु क्या है – वह

है आत्मा को जानने की इच्छा, ब्रहम को जानने की इच्छा ऐसे भक्त जिज्ञासु भक्त कहलाते है।

उदाहरण के रूप में आप जाने कि एक बार राजा चण्डकपालि, घेरण्ड ऋषि के आश्रम में जाकर कहने लगें कि तत्व ज्ञान का कारण जो घटस्थ योग है उसके बारे में मुझे बतायें। महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डकपालि के प्रश्न की प्रशंसा करते हुए उसे आत्म कल्याण के लिए घटस्थ योग की शिक्षा दी। हम कह सकते है कि राजा चण्डकपालि जिज्ञासु भक्त थे।

नोट – स्मरण रहे कि हठयोग की महत्वपूर्ण पुस्तक घेरण्ड संहिता की रचना राजा चण्डकपालि व घेरण्ड ऋषि के संवाद का प्रतिफल है।

3. अर्थाथी भक्त– समस्त संसार के व्यक्ति इस श्रेणी में आते है ऐसे भक्त. किसी सांसारिक वस्तु , मकान, जमीन, धन, स्त्री ,वैभव, मान–सम्मान, परीक्षाओं में सफलता, विवाह के लिए अपने आराध्य को भजते है। ऐसे भक्त अर्थाथी भक्त कहलाते है।

4. ज्ञानी भक्त– ज्ञानी भक्त ऐसे भक्त है जो आत्म–कल्याण, ब्रहम की प्राप्ति के लिए अपने आराध्य को भजते है।

उपरोक्त चार प्रकार के भक्तो में ज्ञानी भक्त श्रेष्ठ है।

10.3.1 नवधा भक्ति–

नवधा भक्ति, भक्ति योग का बड़ा महत्वपूर्ण पक्ष है। नौ प्रकार से भगवान की भक्ति की जाती है। भगवत पुराण में कहा है।

श्रवणं, कीर्तनं, विष्णो स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्य साख्यमात्मैनिवेदनम् ।।

अर्थात – श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन दास्य, साख्य और आत्मानिवेदन ये भक्ति के नौ भेद है।

1. **श्रवण भक्ति**– परमपिता परमेश्वर, अपने आराध्य ईष्ट के दिव्य गुणों व लीला आदि के विषय में सुनना श्रवण भक्ति कहलाती है।
2. **कीर्तन भक्ति**–कीर्तन से आप भली भॉति परीचित होंगे। भगवान के दिव्य गुणों, लीला का गायन इत्यादि कीर्तन भक्ति कहलाती है।
3. **स्मरण भक्ति**– सर्वत्र भगवान का स्मरण करना। अपने आराध्य की लीला, गुणों का निरन्तर अनन्य भाव से स्मरण करना स्मरण भक्ति कहलाती है।
4. **पादसेवन भक्ति–** भगवान के चरणों की सेवा करना पाद सेवन भक्ति कहलाती है। यह भक्ति एक तो भगवान के चरणों का चिन्तन करते हुए तथा दूसरी उनकी प्रतिमा में चरणों को धोकर श्रद्धाभाव से साधना करते हुए की जाती है।

5. **अर्चन भक्ति**– अर्चन भक्ति का अर्थ है पूजन करना यह पूजन मानसिक रूप से या स्थूल रूप से अपने आराध्य की हो सकती है।
6. **वन्दन भक्ति**– भाव भरे मन से भगवान की वन्दना करना वन्दन भक्ति का उदाहरण है। वैदिक ऋचाओं, भक्तों के द्वारा भगवान की स्तुति करना वन्दन भक्ति का उदाहरण है।
7. **दास्य भक्ति**– अपने आप को भगवान का दास समझना, अपने आप को भगवान का सेवक समझना दास्य भक्ति का उदाहरण है। जैसे हनुमान जी श्री रामचन्द्र जी के प्रति रखते थे।
8. **साख्य भक्ति**– साख्य का अर्थ है मित्र अपने आराध्य को अपना मित्र समझना जैसे सुदामा–कृष्ण , अर्जुन–कृष्ण इस भक्ति के उदाहरण है।
9. **आत्म निवेदन भक्ति**– आत्मनिवेदन भक्ति अपने को भगवान के स्वरूप में अर्पण कर देना कहलाती है।

10.3.2 रागात्मिका भक्ति –

जब नवधा भक्ति अपनी चरम अवस्था में होती है तब रागात्मिका भक्ति की शुरूवात होती है। जब नवधा भक्ति अपनी चरम अवस्था को पार कर जाती है और अन्तःकरण में एक अलौकिक भगवत प्रेम भाव उत्पन्न होने लगे तो रागात्मिका भक्ति एक आनुभूतिक अवस्था है। ऐसी अवस्था में साधक अपने आराध्या की झलक का अनुभव कर सकता है। उसे अपने आराध्य दिखाई देने लगते है वह भी सजीव। उनकी झलक वह कभी आसमान में, कभी पेड़ों में, कभी जलाशय में तो कभी अपने मन्दिर में उसको उनकी प्रतिमा सजीव दिखाई देने लगती है।

10.3.3 पराभक्ति –

पराभक्ति रागात्मिका भक्ति की चरम अवस्था है। यह साधक की उत्कृष्ट और अन्तिम पराकाष्ठा है। पराभक्ति में द्वैत नहीं रहता है इस अवस्था में उपासक और आराध्य एक हो जाते है और साधक को एक मात्र ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सत्य/असत्य बताइयें।

   क. ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम ही भक्ति है।

   ख. पराभक्ति, नवधा भक्ति की उच्च्व अवस्था है।

   ग. नवधा भक्ति के 10 भेद बताये गये है।

   घ. ब्रहम का साक्षात्कार पराभक्ति से होता है।

   ड. रागात्मिका भक्ति में अपने आराध्य की छवि दिखाई देने लगती है।

10.4 ज्ञान योग

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व हमें जानना है कि भक्तियोग क्या है? इसके कितने भेद है तथा किस प्रकार साधक भक्ति के माध्यम से अपने लक्ष्य तक पहुँचता है। अब हम चर्चा करते हैं ज्ञानयोग के विषय में। जैसा कि आप जानते हैं कि अध्यात्म के क्षेत्र में साधना के अनेक मार्ग है। साधक अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए किस साधन या मार्ग का प्रयोग करता है, उसी के अनुसार आपकी साधना का नाम होता है जैसे भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, हठयोग, राजयोग, लययोग, मंत्र योग इत्यादि। ज्ञानयोग में साधक ज्ञान के माध्यम से बह्रा का साक्षात्कार करता है, अतः इसे ज्ञानयोग साधना का नाम दिया दिया। यद्यपि गीता में सांख्ययोग को भी ज्ञानयोग की संज्ञा दी गई है, किन्तु मुख्य रूप से ज्ञानयोग का आशय ''वेदान्त की साधना'' से है।

ज्ञानयोग की मूल मान्यता यह है कि जीव तथा ब्रह्म मूलतः एक ही है। अत: ब्रह्म ही एकमात्र सत्य, नित्य है। इसके अतिरिक्त सब कुछ असत्य एवं अनित्य है।

10.4.1 ज्ञानयोग क्या है ?

प्रिय पाठको, यदि हम इस तथ्य पर विचार करें कि यह ज्ञानयोग वस्तुतः है क्या? तो हम कह सकते हैं कि यह ध्यानात्मक सफलता की एक ऐसी प्रक्रिया है, जो हमे अपनी आन्तरिक प्रकृति के अत्यधिक पास लाकर हमारी आत्मिक ऊर्जा का हमें भान कराती है अर्थात स्वयं में छिपी हुई अनंत संभावनाओं का साक्षात्कार कर ब्रह्म में लीन होना ही 'ज्ञानयोग' है।

इसे परिभाषित करते हुये कहा गया है–

"ज्ञानयोग गहन आत्मान्वेषण के भाव से निर्देशित एक ध्यान योग है।"

(परमहंस निरघनानंद, योग दर्शन, 1994,पृष्ठ सं0 73)

10.4.2 ज्ञानयोग की साधना

प्रिय पाठको, ज्ञानयोग की साधना के किन साधनों एवं गुणों की आवश्यकता होती है, उन्हें दो भागों में वर्गीकृत किया गया है ।

(क) बहिरंग साधना

(ख) अन्तरंग साधना

अब आइये, यह जाने कि ये बहिरंग और अन्तरंग साधन क्या है ?

(क) बहिरंग साधन– जब साधक ज्ञानयोग के मार्ग अग्रसर होता है तो प्रारंभ में उसे कुछ नियमों का पालन करना आवश्यक होता है, उन्हीं नियमों की बातों को 'बहिरंग साधन'

कहते है। इन बहिरंग साधनों की संख्या चार होने की वजह से ''साधन चतुष्टय '' भी कहा जाता है, इन साधनों का विवेचन निम्नानुसार है –

(अ) विवेक

(ब) वैराग्य

(स) षट्सम्पत्ति

(द) मुमुक्षुत्व

(अ) विवेक – प्रिय पाठकों, विवेक का आशय है अच्छे–बुरे, सही–गलत, नित्य–अनित्य का यथार्थ बोध अर्थात ज्ञानयोग के अनुसार नित्य वस्तु को नित्य और अनित्य वस्तु को अनित्य मानना ही ''नित्यानित्यवस्तु विवेक'' है। इसके अनुसार एकमात्र ब्रह्म ही सत्य एवं नित्य है तथा इसके अलावा अन्यन सभी वस्तुए मिथ्या एवं अनित्य है। जैसा कि कहा गया है–

''नित्व्वस्वेंक ब्रह्म तद्व्यनिरिक्तं सर्वमनित्यत्यम।

अयमेव नित्यानित्य वस्तुविवेक'' (तथ्य बोध)

रामानुजाचार्य के अनुसार ज्ञानयोग के साधक को इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि वह क्या न खायें और क्या न खायें क्यों कि अन्न का प्रभाव हमारे मन पर भी पड़ता है। साधक को राजसिक एवं तामसिक भोजन को त्याग कर सात्विक भोजन ग्रहण करना चाहिए।

(ब) वैराग्य– बहिरंग साधनों में दूसरा प्रमुख साधन है वैराग्य। वैराग्यं का आशय है कि इहलौकिक एवं पारलौकिक सभी प्रकार के भाग, ऐश्वर्य एवं स्वर्गीय सुखों की मिथ्या एवं अनित्य मानकर उनके भोगने की इच्छा का पूरी तरह परित्याग कर देना। वैराग्य के बिना साधक अपनी साधना में प्रगति नहीं कर सकता। भगवद्गीता एवं महर्षि पतंजलि के योगसूत्र में भी वैराग्य की महिमा को स्वीकार किया गया है।

(स) षट्सम्पत्ति – ज्ञानयोग के साधक को छः बातों का पालन करना आवश्यक होता है। ये छः बातें अथवा गुण या नियम एक प्रकार से ज्ञानयोगी की सम्पत्ति होते हैं। अतः इन्हें ''षट्सम्पति'' कहा जाता है। ये निम्न हैं –

1. शम
2. दम
3. उपरति
4. तितिक्षा
5. श्रद्धा
5. समाधान

1. **शम**– 'शम' शब्द का अर्थ है शमन अर्थात् शान्त करना। अब प्रश्न यह उठता है कि यहा पर किस चीज का शमन करना है तो इसका उत्तर है कि अन्तर इन्द्रिय 'मन' का निग्रह करना मन का संयम करना साधक के लिए एक अत्यधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस मन को कैसे साधा जा सकता है, इस विषय में गीता में कहा गया है –

"असंशयं महाबाहो, मनोदुर्निग्रहं चलम।

अभ्यासेन तु कैन्तेयवैराग्येनि च गृहचते।।"

अर्थात् ''हे महाबाहो अर्जुन, निश्चय ही मन बड़ा चंचल है। किन्तु अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा इसे वश में किया जा सकता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।''
इस प्रकार स्पष्ट है कि मन के निग्रह का नाम ही 'शम' है।

2. **दम**– 'दम' का शाब्दिक अर्थ है दमन करना अर्थात चक्षु इत्यादि इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर चित्त को आत्मा में स्थिर करना ही दम है।

3. **उपरति**– कर्मफलों का परित्याग करते हुए आसक्ति रहित होकर कर्म करना तथा उन्हें ईश्वर को समर्पित करना ही उपरति है।

4. **तितिक्षा** – साधना के मार्ग में आने वाले सभी प्रकार के कष्टों को बिना किसी प्रतिक्रिया के प्रसन्ता पूर्वक सहन करते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति होती होना निरन्तर साधना करने का नाम ही तितिक्षा है।

5. **श्रद्धा**– गुरू वाक्य एवं शास्त्र वाक्य (वेद–वेदान्त इत्यादि के वाक्य) में अटूट निष्ठा एवं विश्वास का नाम ही क्षद्धा है।

6. **समाधान**– चित्त को सर्वदा ब्रह्म में स्थिर एवं एकाग्र करने का नाम ही समाधान है न कि चित्तं की इच्छापूर्ति का नाम समाधान है।

(द) मुमुक्षुत्व– दुख रूपी संसार सागर को पार करके मोक्ष रूप अमृत को प्राप्त करने की साधक की जो तीव्र अभिलाषा (इच्छा) होती है, उसे ही 'मुमुक्षुत्व' कहा जाता है। प्रिय पाठकों, इस प्रकार आपने जाना कि किस प्रकार साधक में विवेक से वैराग्य और वैराग्य से मोक्ष की इच्छा प्रबल होने लगती है। आपने जाना होगा कि ज्ञानयोग की साधना के बहिरंग साधन कौन–कौन से है। अब हम चर्चा करते हैं, अन्तरंग साधनों के विषय में।

(ख) अन्तरंग साधन– बहिरंग साधनों के समान अन्तरंग साधनों की संख्या भी चार ही है, जो निम्न है–

1 श्रवण
2 मनन
3 निदिध्यासन
4 समाधि

1 श्रवण– शास्त्रों में आत्मा–ब्रह्म के बारे में भिन्न–भिन्न प्रकार से वर्णन होने के कारण हो सकता है कि साधक को अनेक प्रकार के संशय उत्पन्न हो जाये कि ठीक या यथार्थ क्या है? ये मार्ग अथवा कथन सत्य है या दूसरा। अतः इस संशय को दूर करने हेतु एक उपाय बताया गया, जिसका नाम है श्रवण।

श्रवण का अर्थ है संशय को दूर करने के लिए साधक का सर्वप्रथम गुरू के मुख से ब्रह्म के विषय में सुनना।

2 मनन – श्रवण के बाद दूसरा अन्तरंग साधन है 'मनन'। मनन का अर्थ है ईश्वर के विषय में गुरूमुख से जो कुछ सुना है, उसको अपने अन्तःकरण में स्थापित कर लेना। सम्यक प्रकार से बिठा लेना।

3 **निदिध्यासन–** निदिध्यासन का आशय है अनुभव करना अथवा बोध होना या आत्म साक्षात्कार करना। देह से लेकर बुद्धि तक जितने भी जड़ पदार्थ है, उनमें पृथकत्व की भावना को हटाकर सभी में एकमात्र ब्रह्म को ही अनुभव करना निदिध्यासन है।

निदिध्यासन के 15 अंग माने गये है। जो निम्न है–

1 यम	2. नियम	3. त्याग	4. मौन	5. देश
6 काल	7. आसन	8. मूलबन्ध	9 देहस्थिति	10.दृगस्थिति
11. प्राणायाम	12. प्रत्याहार	13. धारणा	14 ध्यान	15. समाधि

4 **समाधि–** ध्याता, ध्येय एवं ध्यान का भेद मिटकर एकमात्र ध्येय की प्रतीति होना तथा आत्म स्वरूप में प्रतिष्ठित होने का नाम ही समाधि है।

उपर्युक्त विवेचन से आपने जान ही लिया होगा कि ज्ञानयोग की साधना एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उच्चकोटि की साधना है। जिसमें अज्ञान की निवृत्ति तथा ज्ञान के माध्यम से परमात्मा का साक्षात्कार किया जाता है। एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है, शेष अन्य सभी असत्य एवं मिथ्या है यही ज्ञानयोग की आधारभूत अवधारणा है।

अभ्यास प्रश्न –

1 सत्य–असत्य कथन की पहचान कीजिए।

क. ज्ञानयोग के अनुसार जीव एवं ब्रह्म के एकत्व की अनुभूति ही मोक्ष है।

ख. वैराग्य ज्ञानयोग का अन्तरंग साधन है।

ग. वैराग्य ज्ञानयोग का बहिरंग साधन है।

घ. मन का निग्रह करना ही शम है।

ड. मन का निग्रह करना दम है।

10.5 सारांश

भक्तियोग जहा एक ओर भाव प्रधान साधको के लिए एक उत्तम साधना पद्धति है, वही दूसरी ओर ज्ञानयोग जिज्ञासु साधकों के लिए समाधि प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। भक्तियोग की साधना में साधक ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम रखकर अपने अभीष्ठ की प्राप्ति करता है। साधक भक्योिग साधना में नवधा भक्ति, रागात्मिका भक्ति या उच्च अवस्था की पराभक्ति का सहारा लेता है। ज्ञानयोग में भी साधक बहिरंग व षट्सम्पत्ति इत्यादि का उपयोग कर कैवल्य की प्राप्ति करता है। साधना चाहे जो भी हो पर निष्कर्ष निकलता है, कि योग का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है।

10.6 शब्दावली

आराध्य – ईष्ट, ईश्वर परमात्मा जिनकी आप पूजा करते है।

अर्थाथी– धन, वैभव की इच्छा वाला।

जिज्ञासु – जानने की इच्छा रखने वाला

अवांछनीय – गलत, गन्दे

निवृति – दूर करना, निकालना

मित – मीठा

ब्रुयात – बोलना

पुरातन – प्राचीन

अस्तेय – चोरी ना करना

सत्य– इन्द्रिय जनित ज्ञान

शौच – शुद्धता

स्वाध्याय – अपना अध्ययन, अच्छी पुस्तकों का अध्ययन

प्रत्याहार– इन्द्रिय संयम

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क. सत्य ख. असत्य ग. असत्य घ. सत्य ङ. सत्य

2. क. सत्य ख. असत्य ग. सत्य घ. सत्य ङ. असत्य

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 पातंजल योग दर्शन – स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती (1999) योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेष

2 योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती (2007) योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेष।

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. नवधा भक्ति की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

2. ज्ञानयोग क्या है। बहिरंग पक्षों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

3. टिप्पणी लिखिए

क. भक्तियोग **ख.** ज्ञानयोग

इकाई 11 हठयोग

इकाई की संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 हठयोग की अवधारणा

11.4 हठयोग का उद्देश्य

11.5 हठयोग के प्रमुख ग्रन्थों का सामान्य परिचय

11.4.1 हठ प्रदीपिका

11.4.2 घेरण्ड संहिता

11.4.3 शिव संहिता

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

भारतीय चिन्तन में अनवरत आत्मज्ञान तथा सत्य की खोज पर वैचारिक मथंन परम्परागत होता रहा है। यह सत्य है कि भारतीय संस्कृति यथार्थ के ज्ञान, सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तथा मानव कल्याण के उपायों की खोज में हमेशा रही है। योग विद्या के माध्यम से वास्तव में आत्म तत्व का ज्ञान होता है तथा साधक अपने चरम लक्ष्य कैवल्य (समाधि) की प्राप्ति करता है। योग में साधक की साधना की दृष्टि से अलग–अलग साधनाए बताई गई है। जिस प्रकार अलग–अलग नदियां आपस में मिलकर समुद्र में मिल जाती है ठीक उसी प्रकार योग में वर्णित विविध साधना पद्धतियॉ (ज्ञानयोग, कर्मयोग, राजयोग, भक्तियोग, हठयोग इत्यादि) का ध्येय मोक्ष की प्राप्ति ही है।

प्रस्तुत इकाई में योग के महत्वपूर्ण पक्ष हठ–योग की विविध साधनाओं का वर्णन किया जा रहा है। प्रिय पाठको हठयोग की अनेकानेक ग्रन्थों में से महत्वपूर्ण हठप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, तथा शिव संहिता के वर्ण्यं विषयों का अध्ययन हम प्रस्तुत इकाई में करेंगे।

पाठकों स्मरण रहे हठयोग में से अभ्यास दिखने में कुछ आसान लगते है पर इनके कभी–कभी कुप्रभाव भी होते है अतः जिज्ञासु पाठकों को चाहिए कि पुस्तकों में पढ़कर इन अभ्यासों को बिल्कुल न करें एक श्रेष्ठ मार्गदर्शन में ही इनके अभ्यास करने चाहिए।

11.2 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई में आप हठयोग की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- हठयोग की साधना के महत्वपूर्ण उद्देश्य की विवेचना कर सकेगें।
- हठयोग के विविध ग्रन्थों के बारे में अध्ययन करेंगे।
- हठप्रदीपिका में वर्णित साधनाओं को जान सकेंगे।
- घेरण्ड संहिता में वर्णित साधनाओं को आत्मसात करेंगे।
- विविध हठयोग के ग्रन्थों में वर्णित साधनाओं का तुलनात्मक विश्लेषण कर सकेंगे।

11.3 हठयोग की अवधारणा

जिज्ञासु पाठकों तथा आम नागरिकों के मन में निम्न प्रश्नों के उत्तर जानने की अभिलाषा अक्सर रहती है।

- हठयोग क्या है ?
- क्या जिद पूर्वक करने की क्रिया हठयोग है ?

- क्या हठयोगियों को ही हठयोग की साधना करनी चाहिए ?
- हठयोग की साधना का क्या उद्देश्य है ?
- हठयोग के प्रमुख ग्रन्थ कौन–कौन से है ?
- हठयोग के प्रमुख ग्रन्थों में किस प्रकार की साधनाओं का वर्णन किया है ?

अगले पृष्ठों का सम्यक अध्ययन करने के बाद आप निश्चित रूप से उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जानने में सक्षम हो जाएगें।

सामान्य रूप से हठयोग का अर्थ व्यक्ति जिदपूर्वक हठपूर्वक किए जाने वाले अभ्यास से लेता है अर्थात किसी अभ्यास को जबरदस्ती करने के अर्थ में हठयोग जिदपूर्वक जबरदस्ती की जाने वाली क्रिया है। हठयोग शब्द पर अगर विचार करें तो दो शब्द हमारे सामने आते है ह और ठ।

ह का अर्थ है– हकार अर्थात सूर्य नाडी। (पिंगला)

ठ का अर्थ है– ठकार अर्थात चन्द्र नाडी। (इड़ा)

हठयोग के इसी हकार तथा ठकार शब्द को संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ ने भी स्वीकार किया है। भलेही हठयोग के परिपेक्ष्य में यह अवश्य प्रतीत होता है कि हठपूर्वक (जिदपूर्वक) की जाने वाली क्रिया हठयोग है। परन्तु स्पष्ट है कि हठयोग की क्रिया एक उचित तथा श्रेष्ठ मार्गदर्शन में की जाये तो साधक सहजतापूर्वक इसे कर सकता है। इसके विपरीत अगर व्यक्ति मार्गदर्शन पुस्तकों में पढ़कर करता है तो इस साधना के विपरीत तथा नकारात्मक परिणाम होते है।

प्रिय विद्यार्थियों यह सच है कि हठयोग की कुछ क्रियायें कठिन अवश्य कही जा सकती है। इन्हे करने के लिए निरन्तरता और दृढता आवश्यक है प्रारम्भ में साधक हठयोग की क्रिया के अभ्यास को देखकर जल्दी करने के लिए अपने को तैयार नहीं करता इसलिए एक सहनशील, परिश्रमी, जिज्ञासु और तपस्वी व्यक्ति ही इस साधना को कर सकता है। अब हम हठयोग की विविध परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे। विविध ग्रन्थों में हठयोग को इस प्रकार परिभाषित किया है।

सिद्ध–सिद्धान्त संग्रह के अनुसार –

हकार कीर्तितः सूर्यस्य ठकार चेन्द्रउच्यते ।

सूर्याचन्द्र मसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते ।।

अर्थात हकार (सूर्य) तथा ठकार (चन्द्र) नाडी के योग को हठयोग कहते है।

योगशिखोपनिषद् में भी हकार को सूर्य तथा ठकार को चन्द्र मानकर सूर्य और चन्द्र के संयोग को हठयोग कहा गया है।

हकारेण तु सूर्य स्याकत् सकारेणेन्दुदरूच्यकते।

सूर्याचन्द्र मसोरैक्यंस हढ इव्यकमिधीयते ।।

योगशिखोपनिषद में योग की परिभाषा देते हुए कहा है कि अपान व प्राण, रज व रेतस सूर्य व चन्द्र तथा जीवात्मा व परमात्मा का मिलन योग है। यह परिभाषा भी हठयोग की सूर्य व चन्द्र के मिलन की स्थिति को प्रकट करती है –

योऽपानप्राणयोरैक्यं स्वरजो रेतसोस्तथा।।

सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः।

एवं तु द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते।।

ह (सूर्य) का अर्थ सूर्य स्वर, दायाँ स्वर, पिंगला स्वर अथवा यमुना तथा ठ (चन्द्र) का अर्थ चन्द्र स्वर, बाँया स्वर, इड़ा स्वर अथवा गंगा लिया जाता है। दोनों के संयोग से अग्नि स्वर, मध्य स्वर, सुषुम्ना स्वर अथवा सरस्वती स्वर चलता है, जिसके कारण ब्रह्मनाड़ी में प्राण का संचरण होने लगता है। इसी ब्रह्मनाड़ी के निचले सिरे के पास कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में स्थित है। जब साधक प्राणायाम करता है तो प्राण के आघात से सुप्त कुण्डलिनी जाग्रत होती है तथा ब्रह्मनाड़ी में गमन कर जाती है जिससे साधक में अनेकानेक विशिष्टताएँ आ जाती हैं। यह प्रक्रिया इस योग पद्धति में मुख्य है। इसलिए इसे हठयोग कहा गया है। यही पद्धति आज आसन, प्राणायाम, षट्कर्म, मुद्रा आदि के अभ्यास के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय हो रही है। महर्षि पतंजलि के मनोनिग्रह के साधन रूप में इस पद्धति का प्रयोग अनिवार्यतः उपयोगी बताया गया है। हठ प्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम ने हठयोग को परिभाषित करते हुए कहा है कि हठपूर्वक मोक्ष का भेद हठयोग से किया जा सकता है।

उद्घाटयेत् कपाटं तु तथा कुचिंकया हठात।

कुण्डटलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं विभेदयेत।। ह0प्र0 3/101

अर्थात जिस प्रकार चाभी से हठात किवाड़ को खोलते है उसी प्रकार योगी कुण्डलिनी के द्वार (हठात) मोक्ष द्वार का भेदन करते है।

विविध परिभाषाओं के अवलोकन के बाद अब एक प्रश्न आपका अवश्य होगा कि हठयोग के क्या उद्देश्य हैं। स्वात्माराम योगी द्वारा यह घोषणा कर दी गई है कि 'केवल राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते' अर्थात् केवल राजयोग की साधना के लिए ही हठविद्या का उपदेश करता

हूँ। हठप्रदीपिका में अन्यत्र भी कहा है कि आसन, प्राणायाम, मुद्राएँ आदि राजयोग की साधना तक पहुँचाने के लिए हैं–

पीठानि कुम्भकाश्चित्रा दिव्यानि करणानि च।

सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोग फलावधि।। ह०प्र० 1/67

यह हठयोग भवताप से तप्त लोगों के लिए आश्रय स्थल के रूप में है तथा सभी योगाभ्यासियों के लिए आधार है–

अशेषतापतप्तानां समाश्रयमठो हठः

अशेषयोगयुक्तानामाधारकमठो हठः।। ह०प्र० 1/10

इसका अभ्यास करने के पश्चात अन्य योगप्रविधियों में सहज रूप से सफलता प्राप्त की जा सकती है। कहा गया है कि यह हठविद्या गोपनीय है और प्रकट करने पर इसकी शक्ति क्षीण हो जाती है–

हठविद्यां परं गोप्या योगिनां सिद्धिमिच्छताम्।

भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या तु प्रकाशिता।। ह०प्र० 1/11

इसलिए इस विद्या का अभ्यास एकान्त में करना चाहिए जिससे अधिकारी– जिज्ञासु तथा साधकों के अतिरिक्त सामान्य जन इसकी क्रियाविधि को देखकर स्वयं अभ्यास करके हानिग्रस्त न हों। साथ ही अनधिकारी जन इसका उपहास न कर सकें।

प्रिय पाठको स्मरण रहे कि – जिस काल में हठप्रदीपिका की रचना हुई थी, वह काल योग के प्रचार–प्रसार का नहीं था। तब साधक ही योगाभ्यास करते थे। सामान्यजन योगाभ्यास को केवल ईश्वरप्राप्ति के उद्देश्य से की जाने वाली साधना के रूप में जानते थे। आज स्थिति बदल गई है। योगाभ्यास जन–जन तक पहुँच गया है तथा प्रचार–प्रसार दिनों–दिन प्रगति पर है। लोग इसकी महत्ता को समझ गए हैं तथा जीवन में ढालने के लिए प्रयत्नशील हो रहे हैं।

11.4 हठयोग का उददेश्य

हठयोग के उद्देश्य के दृष्टिकोण से विचार करने पर हम देखते हैं कि 'राजयोग साधना की तैयारी के लिए तो हठयोग उपयोगी है ही', इस मुख्य उद्देश्य के साथ अन्य अवान्तर उद्देश्य भी कहे जा सकते हैं जैसे– स्वास्थ्य का संरक्षण, रोग से मुक्ति, सुप्त चेतना की जागृति, व्यक्तित्व विकास, जीविकोपार्जन तथा आध्यात्मिक उन्नति। इनकी विस्तृत विवेचना इस प्रकार है।

1. **स्वास्थ्य का संरक्षण–** शरीर स्वस्थ रहे। रोगग्रस्त न हो। इसके लिए भी हम हठयौगिक अभ्यासों का आश्रय ले सकते हैं। 'आसनेन भवेद् दृढम, 'षट्कर्मणा शोधनम' आदि

कहकर आसनों के द्वारा मजबूत शरीर तथा षट्कर्मों के द्वारा शुद्धि करने पर दोषों के सम हो जाने से व्यक्ति सदा स्वस्थ बना रहता है। विभिन्न आसनों के अभ्यास से शरीर की मांसपेशियों को मजबूत बनाया जा सकता है तथा प्राणिक ऊर्जा के संरक्षण से जीवनी शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। शरीर में गति देने से सभी अंग–प्रत्यंग चुस्त बने रहते हैं तथा शारीरिक कार्यक्षमता में वृद्धि होती है जिससे शरीर स्वस्थ रहता है। अतः हम कह सकते है कि स्वास्थ्य संरक्षण में हठयोग का महत्वपूर्ण स्थान है।

2. रोग से मुक्ति– अब इन हठयोग के अभ्यासों को रोग–निवारण के लिए भी प्रयुक्त किया जा रहा है। कहा भी है–

'आसनेन रुजो हन्ति'। घेरण्ड संहिता

'कुर्यात् तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम। ह०प्र० 1/17

विभिन्न आसनों का शरीर के विभिन्न अंगों पर जो प्रभाव पड़ता है, उससे तत्सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। जैसे मत्स्येन्द्रासन का प्रभाव पेट पर अत्यधिक पड़ता है तो उदरविकारों में लाभदायक है। जठराग्नि प्रदीप्त होने के कारण कब्ज, अपच, मन्दाग्नि आदि रोग दूर होते हैं।

इसी प्रकार षट्कर्मों का प्रयोग करके रोगनिवारण किया जा सकता है। जैसे धौति के द्वारा कास, श्वास, प्लीहा सम्बन्धी रोग, कुष्ठ रोग, कफदोष आदि नष्ट होते हैं।

नेति के द्वारा दृष्टि तेज होती है, दिव्य दृष्टि प्रदान करती है और स्कन्ध प्रदेश से ऊपर होने वाले रोगसमूहों को शीघ्र नष्ट करती है।

कपालशोधिनी चौव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।

जत्रूर्ध्वजातरोगोघं नेतिराशु निहन्ति च।। ह०प्र० 2/31

आधुनिक वैज्ञानिक युग में यद्यपि आयुर्विज्ञान की नई वैज्ञानिक खोज हो रही है। फिर भी अनेक रोग जैसे– मानसिक तनाव, मधुमेह, प्रमेह, उच्च रक्तचाप, निम्न रक्तचाप, साइटिका, कमरदर्द, सर्वाइकल स्पोंडोलाइटिस, आमवात, मोटापा, अर्श आदि अनेक रोगों को योगाभ्यास द्वारा दूर किया जा रहा है।

3. सुप्त चेतना की जागृति –

हठयोग के अभ्यास शरीर को वश में करने का उत्तम उपाय हैं। जब शरीर स्थिर और मजबूत हो जाता है तो प्राणायाम द्वारा श्वास को नियंत्रित किया जा सकता है। प्राण नियंत्रित होने पर मूलाधार में स्थित शक्ति को ऊर्ध्वगामी कर सकते हैं। प्राण के नियंत्रण से मन भी नियंत्रित हो जाता है। अतः मनोनिग्रह तथा प्राणापान–संयोग से शक्ति जाग्रत होकर

ब्रह्मनाड़ी में गति कर जाती है जिससे साधक को अनेक योग्यताएँ स्वतः प्राप्त हो जाती हैं। अतः हम कह सकते है कि हठयोग के अभ्यास से सुप्त चेतना की जागृति होती है।

4. व्यक्तित्व विकास– साधक इन अभ्यासों को अपनाकर निज व्यक्तित्व का विकास करने में समर्थ होता है। उसमें मानवीय गुण स्वतः आ जाते हैं। शरीर गठीला, निरोग, चुस्त, कांतियुक्त तथा गुणों से पूर्ण होकर व्यक्तित्व का निर्माण करता है। ऐसे गुणों को धारण करके उसकी वाणी में मृदुता, आचरण में पवित्रता, व्यवहार में सादगी, स्नेह, आदि का समावेश हो जाता है।

5. जीविकोपार्जन – देश ही नहीं, विदेश में भी आज योगाभ्यास जीविकोपार्जन का एक सशक्त माध्यम बन गया है। देश में ही अनेक योग प्रशिक्षण केन्द्र, चिकित्सालय, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय योग के प्रचार–प्रसार में लगे हैं। रोगोपचार के लिए व्यक्तिगत रूप से लोग योग प्रशिक्षक को बुलाकर चिकित्सा ले रहे हैं तथा स्वास्थ्य–संरक्षण हेतु प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। विदेश में तो भारत से भी अधिक जागरूकता है। अतः जीविकोपार्जन के लिए भी इसे अपनाया जा रहा है।

6. आध्यात्मिक उन्नति– कुछ लोग वास्तव में जिज्ञासु हैं जो योग द्वारा साधना में सफल होकर साक्षात्कार करना चाहते हैं। उनके लिए तो योग है ही। साधक साधना के लिए आसन–प्राणायामादि का अभ्यास करके दृढ़ता तथा स्थिरता प्राप्त करके ध्यान के लिए तैयार हो जाता है। ध्यान के अभ्यास से समाधि तथा साक्षात्कार की अवस्था तक पहुँचा जा सकता है। अतः आध्यात्मिक उन्नति हेतु भी हठयोग एक साधन है।

अर्थात् पूर्व में बताई गई विधि से यदि बोधिप्राप्त न हो तो हठयोग का आश्रय लेना चाहिए। राजयोग साधना का आधार होने के कारण इसे भी राजयोग के समकक्ष स्थान प्राप्त है। अतः हम कह सकते है कि आध्यात्मिक उन्नति का राजयोग महत्वपूर्ण सोपान है।

11.5 हठयोग के प्रमुख ग्रन्थों का सामान्य परिचय

हठयोग के ग्रन्थों के अध्ययन से पूर्व यह आवश्यक है कि हठयोग की परम्परा कहां से शुरू हुई इस प्रश्न के उत्तर आपको कहानी को पढ़कर स्वतः ही आ जायेगा। एक बार भगवान शिव, मॉ पार्वती को लेकर भ्रमण पर निकले थे। भ्रमण के दौरान दोनों एक सरोवर के किनारे बैठ जाते है मॉ पार्वती की इच्छा पर भगवान शिव उन्हें हठयोग की शिक्षा देते है। भगवान शिव द्वारा दी गई यह शिक्षा सरोवर में एक मछली सुन लेती है जब भगवान शिव को इस बात का आभास होता है तो वह उस मछली को मत्स्येन्द्र नाथ बना देते है। स्वयं हठप्रदीपिका के प्रणेता स्वात्मा राम जी हठप्रदीपिका की शुरूवात करते कहते है

'श्रीआदिनाथाय नमोऽस्तुतस्मैयेनोपदिष्टार हठयोगविद्या'' ह०प्र० 1/1

अर्थात् उन सर्वशक्तिमान आदिनाथ को नमस्कार है जिन्होंने हठयोगविद्या की शिक्षा दी थी। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि भगवान शिव ही हठयोग के आदि प्रणेता है।

पुनः स्वात्माराम कहते है–

हठविद्या हि मत्ये्वान्द्रागोरक्षाद्या विजानते ।

स्वादत्मावरामोऽथवा योगी जानीते तत्प्रसादतरू ।। ह०प्र० 1/4

अर्थात मत्येन्द्रनाथ, गोरक्ष आदि योगी हठविद्या के मर्मज्ञ थे और उन्हीं की कृपा से योगी स्वात्माराम ने इसे जाना अब हम आपके अवलोकनार्थ हठयोग के प्रमुख ग्रन्थों का सामान्य परिचय देते है।

11.5.1 हठ प्रदीपिका –

हठप्रदीपिका स्वामी स्वात्माराम द्वारा प्रतिपादित हठयोग का एक ग्रन्थ है। अगर आपने इतिहास का अध्ययन किया है तो 10वीं तथा 15वीं शताब्दी में अपने मुट्ठी भर स्वार्थ के लिए कई लोग हठयोग व राजयोग के सम्बन्ध में भ्रान्तियॉ फैलाते रहे। कई लोगों का मत था कि हठयोग व राजयोग दो अलग–अलग मार्ग है इन दोनों रास्तों का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है। इन भ्रामक तत्वों ने वेश–भूषा, इत्यादि आडम्बरों पर जोर देकर भ्रान्तियॉ फैलाई थी परन्तु इस शस्य श्यामला धरती पर जब भी विकृतियॉ पैदा हुई और अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँची तब कोई न कोई महापुरूष का अवतरण हुआ है। स्वात्माराम नाम के इस महापुरूष ने ऐसे समय में हठप्रदीपिका नामक प्रमाणिक वैज्ञानिक पुस्तक लिखकर हठयोग के वास्तविक स्वरूप को हमारे सामने रखा। स्वात्माराम जी ने कहा–

केवलं राजयोगाथहठविद्योपदिश्यसते । ह०प्र० 1/2

अर्थात केवल राजयोग की प्राप्ति के लिए हठयोग का उपदेश दिया जा रहा है।

11.5.2 घेरण्ड संहिता –

घेरण्ड संहिता की रचना स्वात्माराम जी ने की थी, कहा जाता है कि एक राजा चण्डकपालि महर्षि घेरण्ड की कुटी में गये और प्रणाम कर एक प्रश्न किया–

घटस्थ योगं योगेश तत्वाज्ञानस्य कारणम।

इदानीं श्रोतुमिच्छोमि योगेश्वर वद प्रभो ।। घे०सं० 1/2

अर्थात हे योगेश्वर, तत्व ज्ञान का कारण जो धटस्थ योग है, उसे मैं जानने का इच्छुक हूँ हे प्रभु कृपा करके उसे मेरे प्रति कहिए। ततपश्चात महर्षि घेरण्ड कहते है–

साधु–साधु महाबाहो यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।

कथयामि च ते वत्स सावधानोवधारय ।। घे० सं० 1/3

अर्थात हे महाबाहों, तुम्हारे प्रश्न के लिए मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। हे वत्स, तुमने जिस विषय की जिज्ञासा की है उसे मैं तुम्हारे प्रति कहता हूँ।

इस प्रकार राजा चण्डकपालि प्रश्न पूछते है और महर्षि घेरण्ड उत्तर देते है। इस प्रश्न उत्तर की शैली में पूरी घेरण्ड संहिता लिखी गई है। महर्षि घेरण्ड कौन थे इस बात का किसी को पता नहीं है सर्वप्रथम प्रति 1804 की है। मालूम पड़ता है कि महर्षि घेरण्ड एक वैण्णव संत रहे होंगे उन्होंने कई श्लोकों में विष्णु की चर्चा की है। शायद ऐसा हो कि वैष्णव सन्त होने के साथ–साथ इन्होंने हठयोग को अपनाया हो। घेरण्ड संहिता को लोग सप्तांग योग के नाम से भी जानते है।

11.5.3 शिव संहिता –

शिव संहिता योग का एक मुख्य ग्रन्थ है, कहा जाता है कि स्वयं आदिनाथ शिव ने इसकी रचना की थी। शिव संहिता पर अनेकानेक विद्वानों ने भाषानुवाद किया है। शिव संहिता को 'पंच प्रकरण' भी कहा जाता है। शिव संहिता में योग की विविध विषयवस्तु का वर्णन मिलता है इनमें साधक की दिनचर्या तथा साधना पद्धति का ज्ञान व विज्ञान निहित है। नाडी ज्ञान, चक्र तथा कुण्डलिनी का इसमें वृहद वर्णन मिलता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. सत्य/असत्य बताइए –

(क) हठयोग का उद्देश्य राजयोग की प्राप्ति है।

(ख) शिव संहिता हठयोग का ग्रन्थ नहीं है।

(ग) हठयोग का अभ्यास पुस्तकों में पढ़कर कर सकते है।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करें–

(क) घेरण्ड संहिता के प्रतिपादक.............. है।

(ख) स्वात्माराम जी ने .... नामक पुस्तक लिखी।

(ग) हकार का सम्बन्ध .... नाड़ी से है।

(घ) पिंगला को .... नाड़ी भी कहते है।

3. एक शब्द में उत्तर दीजिए

(क) हठ प्रदीपिका में कुल कितने अध्याय है।

(ख) घेरण्ड संहिता में कुल कितने अध्याय है।

(ग) गोरक्षनाथ के गुरू कौन थे।

(घ) किस राजा को महर्षि घेरण्ड ने हठयोग की शिक्षा दी।

4. बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) ठकार का सम्बन्ध है।

(अ) सूर्य नाड़ी

(ब) चन्द्र नाड़ी

(स) अ व ब दोनों

(द) इनमें से कोई नहीं

(ख) हठयोग के आदि वक्ता माने जाते है।

(अ) ब्रहमा

(ब) विष्णु

(स) शिव

(द) इन्द्र

(ग) निम्न पुस्तकों में से बेमेल छॉटिए–

(अ) शिव संहिता

(ब) गीता

(स) हठप्रदीपिका

(द) घेरण्ड संहिता

11.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने हठयोग की अवधारणा के अध्ययन के साथ–साथ हठयोग के प्रमुख ग्रन्थों का सामान्यग अध्यंयन किया। आपने जाना कि हठयोग के प्रमुख ग्रन्थों के वण्य विषय क्या है। हठयोग के ग्रन्थों की विषयवस्तु भलहि विविध ग्रन्थों में अलग–अलग है पर उसका उद्देश्य निश्चित राजयोग की प्राप्ति है स्वात्माराम जी ने हठयोग प्रदीपिका में कहा है कि 'केवलं राजयोगाय हठविदद्पदिश्याते' देते हुए यह अंगित भी किया है कि राजयोग की प्राप्ति के लिए हठयोग का उद्देश्य देते है।

हठयोग में निहित विविध क्रियाओं, अभ्यासों तथा दार्शनिक चिन्तन को अगर व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में लागू करें तो हमारा विश्वास है कि निश्चित समग्र स्वास्थ्य की परिकल्पना अवश्य साकार होगी।

11.7 शब्दावली

यथार्थ – सत्य

कैवल्य – समाधि

ध्यैय – उद्देश्य

हकार – सूर्य नाड़ी, पिंगला

ठकार – चन्द्र नाड़ी, इड़ा

कुण्डलिनी – मूलाधार चक्र के पास 3 फेरे लगाये हुई एक शक्ति

क्षीण – खत्म, कम

त्रिदोष – वात, पित्त, कफ

प्रमेह – मधुमेय, शुगर, डायबिटीज

अर्श – बवासीर

बोध – ज्ञान

गोरक्ष – राख, एक ऋषि का नाम

घट – घड़ा

वृहद – बड़ा, विस्तार

लाघव – हल्कापन

पूरक – श्वास लेना

रेचक – श्वास छोड़ना

कुम्भक – श्वास रोकना (हठप्रदीपिका में प्राणायाम को कुम्भक कहा है)

शोधन – शुद्धिकरण, सफाई करना

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1– सत्य/असत्य कथन

(क) सत्य (ख) असत्य (ग) असत्य

2– रिक्त स्थान की पूर्ति के उत्तर–

(क) महर्षि घेरण्ड (ख) हठप्रदीपिका

(ग) सूर्य (घ) सूर्य

3– एक शब्दे में उत्तर –

(क) चार (ख) सात

(ग) मत्येन्द्रनाथ (घ) राजा चण्डकपालि

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. महर्षि पतंजलि (2001) पातंजल योग सूत्र गीता प्रेस गोरखपुर ।

2. राघवेन्द्र शर्मा राघव (2006) शिव संहिता चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली ।

3. स्वात्मारामसुरी (2001) हठप्रदीपिका कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग, मन्दिर समिति लोनावाला।

4. महर्षि घेरण्ड (2003)– घेरण्ड संहिता कैवल्यधाम लोनावाला ।

5. प्रो0 ईश्वर भारद्वाज, डा0 भानु जोशी (2011)–योग का स्वरूप, प्रकाशन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी।

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

1–घेरण्ड संहिता के वर्ण्य विषयों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

2–हठप्रदीपिका में वर्णित अध्यायों की विषयवस्तु लिखिए।

3–हठयोग के प्रमुख ग्रन्थों का नाम लिखते हुए किसी भी एक ग्रन्थ की विषय वस्तु पर प्रकाश डालिए।

इकाई–12 मन्त्र योग एवं क्रियायोग

इकाई की संरचना

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 मंत्रयोग की अवधारणा उद्देश्य
12.4 मंत्रजप के प्रकार
12.4.1 नित्यजप
12.4.2 नैमित्तिक जप
12.4.3 काम्य जप
12.4.4 निषिद्ध जप
12.4.5 प्रायश्चित जप
12.4.6 अचल जप
12.4.7 चल जप
12.4.8 वाचिक जप
12.4.9 मानस जप
12.4.10 अखण्ड जप
12.4.11 अजपा जप
12.4.12 उपांशु जप
12.4.13 भ्रमर जप
12.4.14 प्रदक्षिणा जप
12.5 मंत्रयोग की उपयोगिता तथा महत्व
12.6 क्रियायोग की अवधारणा
12.7 क्रियायोग के साधन
12.7.1 तप
12.7.2 स्वाध्याय
12.7.3 ईश्वर प्रणिधान
12.8 क्रियायोग का उद्देश्य
12.9 सारांश
12.10 शब्दावली
12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.12 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना–

शास्त्रों के अनुसार अनेक प्रकार के योग बताए गये हैं, इन सभी योग की साधना सबसे सरल और सुगम है। मंत्र योग की साधना कोई भी श्रद्धा पूर्वक व निर्भयता पूर्वक कर सकता है। श्रद्धापूर्वक की गयी साधना से शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर अभीष्ट की प्राप्ति की जा सकती है। अपने लक्ष्य को मंत्र योग द्वारा शीघ्रता से प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान समय में सम्पूर्ण संसार में लगभग 90 प्रतिशत साधक मंत्र योग के अनुयायी हैं। अतः जिन साधकों को अन्य योग साधना कठिन प्रतीत हो उन साधको को मंत्रयोग की साधना से अभीष्ट सिद्धि मिल सकती हैं। सामान्य व्यक्ति साधना आरम्भ करना चाहते है उनके लिए साधनपाद में महर्षि पतंजलि सर्वप्रथम क्रियायोग को बतलाते है'–

महर्षि पतंजलि की दृष्टि में क्रियायोग वह है कि जिन क्रियाओं से योग सधे, और यह क्रियायोग समाधि की सिद्धि देने वाले है।

12.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई में आप–

- मंत्र योग की अवधारणा को समझ सकेगें।
- मंत्र जप के प्रकारों को समझ सकेगें ।
- क्रियायोग के बारे में जान सकेगें।

12.3 मंत्रयोग की अवधारणा, उद्देश्य

वह शक्ति जो मन को बन्धन से मुक्त कर दे वही मंत्र योग है। मंत्र को सामान्य अर्थ ध्वनि कम्पन से लिया जाता है। मंत्र विज्ञान ध्वनि के विद्युत रुपान्तर की साधना है, अनोखी विधि है।

'मंत्रजपान्मनोलयो मंत्रयोगः'।

अर्थात् अभीष्ट मंत्र का जप करते–करते मन जब अपने आराध्य अपने ईष्टदेव के ध्यान में तन्मयता को प्राप्त कर लय भाव को प्राप्त कर लेता है, तब उसी अवस्था को मंत्रयोग के नाम से जाना जाता है।

शास्त्रों में वर्णन मिलता है–

'मननात् तारयेत् यस्तु स मंत्र परकीर्तितः।'

अर्थात् यदि हम जिस ईष्टदेव का मन से स्मरण कर श्रद्धापूर्वक, ध्यान कर मंत्रजप करते है और वह दर्शन देकर हमें इस भवसागर से तार दे तो वही मंत्रयोग है। ईष्टदेव के

चिन्तन करने, ध्यान करने तथा उनके मंत्रजप करने से हमारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। कल्मष–कषाय धुलकर मन ईष्टदेव में रम जाता हैं अर्थात लय भाव को प्राप्त हो जाता है। तब उस मंत्र में दिव्य शक्ति का संचार होता है। जिसके जपने मात्र से मनुष्य संसार रूपी भवसागर से पार हो जाता है।

मंत्र जप एक विज्ञान है, अनूठा रहस्य है जिसे आध्यात्म विज्ञानी ही उजागर कर सकते हैं। जहां भौतिक विज्ञानी कहते है कि ध्वनि, विद्युत रूपान्तरण के सिवाय कुछ नहीं हैं। आध्यात्म के विज्ञानी मानते है कि विद्युत और कुछ नहीं है सिवाय ध्वनि के रूपान्तरण के, इस प्रकार विद्युत और ध्वनि एक ही उर्जा के दो रूप है। मंत्र विज्ञान का सच यही है। यह मंत्र रूपी ध्वनि के विद्युत रूपान्तरण की अनोखी विधि है।

इस अनोखी विधि को अपनाकर आत्मसाक्षात्कार किया जा सकता है। मंत्रों का उपयोग जप द्वारा किया जाता है इस प्रक्रिया को जप योग कहा जाता है। जप मंत्र के शब्दों व जिस आराध्य का जप कर रहे हो उसके चरित्र का स्मरण ही एकाग्रता है। श्रद्धापूर्वक भक्ति पूर्वक किया गया जप अवश्य सिद्धिदायक होता है। जप करते समय जो कुछ भी सोचा जाता है। साधक का जो संकल्प होता है, उसे यदि वह जप के समय सोचता रहे और श्रद्धा भक्तिपूर्वक अच्छी भावना के साथ जप करें तो मंत्र द्वारा प्राप्त ऊर्जा, मंत्र द्वारा प्राप्त दिव्य शक्ति से साधक का संकल्प सिद्ध होता है। इसके लिए हमें दिव्य भावना श्रद्धा भक्ति व सभी के मंगल की कामना करे तो मंत्र जप अवश्य ही जीवन को उत्कृष्ट बना देता हैं उत्कृष्ट जीवन आत्मक्षात्कार का पथ प्रशस्त कर मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है।

मंत्रयोग के उद्देश्य का अगर अवलोकन करें तों मन को तामसिक वृत्तियों से मुक्त करना तथा जप द्वारा व्यक्तित्व का रूपान्तरण ही जपयोग का उददेश्य है। प्रत्येक मनुष्य स्वार्थपूर्ण इच्छाओं और आकाक्षांओं की पूर्ति में ही जीवन भर लगा रहता है। मनुष्य का मन सदैव एक से दूसरी वस्तु की इच्छा पूर्ति में ही रमा रहता है। सांसारिक भोग विलास की वस्तुओं की प्रवृति इच्छाओं तथा अहंकार की प्रवृति मनुष्य का स्वभाव है। उसे इन्ही प्राकृतिक गुणों से मुक्त कराकर यथार्थ का ज्ञान कराना ही जप योग का उद्देश्य है। मंत्रजप के द्वारा व्यक्तित्व का रूपान्तरण, मानसिक, शारीरिक व आध्यात्मिक परिवर्तन ही मंत्र योग का उद्देश्य हैं ।

12.4 मंत्रयोग के प्रकार

साधारणतः मंत्रजप चौदह प्रकार के होते है। शास्त्रों में चौदह प्रकार के मंत्रजप का वर्णन मिलता है। जो निम्न प्रकार है–

12.4.1 **नित्यजप** – जो जप नियमित रूप से नित्यप्रति किया जाता हो उसे नित्यजप कहते हैं।

12.4.2 **नैमित्तिक जप**– नैमित्तिक जप उसे कहा जाता जो किसी के निमित्त किया जाता हो।

12.4.3 **काम्य जप**– जब जप का अनुष्ठान किसी कामना की सिद्धि के लिए किया जाता है उसे काम्य जप कहा जाता है।

12.4.4 **निषिद्ध जप**– किसी को हानि पहुॅचाने की दृष्टि से किया गया जप तथा किसी के उपकार के लिए किया जाने वाला जप तथा अशुद्ध उच्चारण पूर्वक किया गया जप निषिद्ध जप है। जप एक लय में नहीं अधिक तीव्रता, अधिक मन्दता से किया गया जप भी निषिद्ध है। और ऐसे जप निष्फल होते है।

12.4.5 **प्रायश्चित जप**– जाने अनजाने में किसी से कोई दोष या अपराध हो जाने पर प्रायश्चित कर्म किया जाता है। उन दोषों से चित में जो संस्कार पड गये होते है, उनसे मुक्त होने उन पाप कर्मो से मुक्त होने हेतु जो मंत्र जप आदि किये जाते है, प्रायश्चित जप कहलाते है।

12.4.6 **अचल जप**– इस प्रकार का मंत्रजप आसनबद्ध होकर स्थिरतापूर्वक किया जाता है, अचल जप में अंग प्रत्यंग न हिलते हो और भीतर मंत्रजप चलता है, इस प्रकार का जप अचल जप है।

12.4.7 **चल जप**– इस प्रकार के मंत्र जप में स्थिरता नहीं होती उठतें, बैठते, खाते, सोते सभी समय यह जप किया जा सकता है। इस प्रकार के जप में जीभ व होंठ हिलते है। और यदि हाथ में माला है वह भी हिलती हैं। इस प्रकार चल अवस्था में होते रहने से ही यह चल जप है।

12.4.8 **वाचिक जप**– मंत्रोचार –पूर्वक जोर से बोलकर जो जप किये जाते है, वाचिक जप कहलाता है। वाचिक जप से साधक की वाणी में मंत्रोच्चारण से अमोघ शक्ति आ जाती है।

12.4.9 **मानस जप**– केवल मानसिक रूप से बिना कोई अंग–प्रत्यंग के हिले–डुले, सूक्ष्मतापूर्वक जो भी जप किया जाता है। उसे मानसिक जप कहते है।

12.4.10 **अखण्ड जप**– ऐसा जप जिसमें देश काल का पवित्र अपवित्र का भी विचार नहीं होता और मंत्र जप बिना खण्डित हुए लगातार चलते रहे, इस प्रकार का जप खण्डित जप कहा जाता है।

12.4.11 **अजपा जप**– बिना प्रयास कियें श्वास–प्रश्वास के साथ चलते रहने वाले जप को अजपा जप कहा जाता है। जैसे श्वास–प्रश्वास में विराम नहीं होता है, उसी तरह यह जप भी बिना विराम चलता रहता है। जब तक श्वास देह में है।

12.4.12 **उपांशु जप**– इसमें मंत्रोच्चारण अस्पष्ट होता है। दोनों होंठ हिलतें है, पर शब्द सुनायें नहीं देते है, होंठों से अस्पष्ट ध्वनि पूर्वक जप करना ही उपांशु जप है।

12.4.13 **भ्रमर जप–** इस प्रकार का मंत्र जप भौरे के गुंजन के समान गुंजन करते हुए किया जाता है। अर्थात् अपने ईष्ट मंत्र का जाप गुनगुनाते हुए करना भ्रमर जप है।

12.4.14 **प्रदक्षिणा जप–** किसी भी देवस्थान, मन्दिर या देवता की प्रदक्षिणा करते समय मंत्र जप किया जाता है। इस प्रकार का जप प्रदक्षिणा जप कहा जाता है।

इन चौदह प्रकार के मंत्र जप में तीन प्रकार के जप श्रेष्ठ माने जाते है। वाचिक जप उपांशु जप तथा मानसिक जप। मनुस्मृति 2/85 में कहा गया है–

'विधि यज्ञा ज्जपयज्ञों विशिष्टोदश्ञभिर्गुणैः,
उपांशु स्थाच्छतगुणाः साहस्त्रोमानसः स्मृत।'

अर्थात् विधि यज्ञों में वाचिक जप जो कि बोल कर किया जाने वाला यज्ञ है। अर्थात् जप को यज्ञ की संज्ञा दी गई है, वाचिक जप दस गुना श्रेष्ठ हैं। उपांशु जप इससे सौ गुना श्रेष्ठ बताया गया है। और मानसिक जप हजार गुना श्रेष्ठ बताया गया है।

12.5 मंत्रयोग की उपयोगिता तथा महत्व –

मंत्र जप के द्वारा मन बुद्धि अहंकार चित इन सभी का बिखराव रूकता है। मानसिक एकाग्रता की स्थिति प्राप्त होती है।

मंत्रयोग अभ्यास से समस्त मानसिक क्रियाए सन्तुलित हो जाती है। जप के समय साधक श्रेष्ठ विचारों का चिन्तन करता है। जिसकों निरन्तर दुहराने से व्यक्ति अतार्किक विचारों से मुक्त हों, श्रेष्ठ विचारों या सकारात्मक विचारों वाला हो जाता है।

मंत्रजप के स्पन्दन, जो प्रत्येक शब्द के जपने से उत्पन्न होते है। तथा एक ध्वनि का रूप लेते है। जैसे–जैसे मंत्र की ध्वनि से उत्पन्न स्पन्दन बध जाते है। हमारे मन के साथ–साथ हमारी चेतना भी इससे प्रभावित होती है। हमारी चेतना के प्रभावित होने से हमारी भावनाओं व चिन्तन प्रक्रियाओं पर धनात्मक प्रभाव पडता है। जिस प्रकार हमारा तंत्रिका तंत्र ठीक ढंग से कार्य करता है। तथा साथ ही साथ हमारा अन्तःस्रावी तंत्र भी तथा उससे निकलने वाले हार्मोन्स का सन्तुलन बना रहता है। जिस कारण हमें शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। तथा स्वस्थ्य शरीर द्वारा ही मानव जीवन के चारों पुरुषार्थ की प्राप्ति की जा सकती है। अपने अभीष्ठ की प्राप्ति की जा सकती है।

मंत्रजप से ईष्ट सिद्धि– शास्त्रों में कहा गया हैं कि मंत्रजप से ईष्ट सिद्धि प्राप्त होती है–

'जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः'।

अर्थात् मंत्रजप से ही सिद्धि मिलती है। इसमें किंचित मात्र भी संदेह नहीं किया जा सकता है। जितना–जितना जप होता जाता है। उसी अनुसार उतने ही दोष मिटते जातें है। और उसी अनुसार हमारा अन्तःकरण शुद्ध होता जाता है। अन्तःकरण ज्यों–ज्यों शुद्ध होता जाता

है। जप साधना भी त्यों–त्यों भी बढ़ने लगती है। और उस साधना के परिणाम स्वरूप मनुष्य देवत्व को प्राप्त कर लेता है। एक दिन वह नर से नारायण बन अनेकों सिद्धियों का अधिकारी बनता है।

मंत्र में बहुत शक्ति होती है। जाग्रत मंत्र के जप से शीघ्र ही अभीष्ट की सिद्धि मिलती है। प्राचीन काल में अनेकों ऋषि ज्ञानी योगी व भक्त मंत्रजप के द्वारा ही अपने ईष्ट के दर्शन, असीम दैवीय शक्ति, वर प्राप्ति, कामना सिद्धि किया करते थे।

प्राचीन ही नहीं अर्वाचीन काल के कितने ही साधको मंत्रजप द्वारा अपने ईष्ट की प्राप्ति की दर्शन किये। तुलसी, सूरदास, मीरा, रामकृष्ण परमहंस आदि साधक मंत्रजप द्वारा महान कोटि साधक हुए। मंत्रयोग की साधना में डाकू रत्नाकर उल्लेखनीय है। जिन्होने मंत्रयोग की साधना के द्वारा ब्रह्मर्षि पद प्राप्त किया, महर्षि बाल्मिकी कहलाये। और सम्पूर्ण जगत के लिए रामायण जैसे महान ग्रन्थ दिया, इसे मंत्रजप का चत्मकार ही कहा जा सकता है।

अतः जिन साधकों को अन्य साधन कठिन प्रतीत होते हों उन्हें चाहिए कि ये मंत्रयोग का आश्रय लें। इस मंत्रयोग के द्वारा शीघ्र ही अभीष्ठ सिद्धि हो जायेगी।

महर्षि पतंजलि ने परम्परागत ढंग से मंत्रजप के विधि व लाभ बतलाये है–

'तज्जपस्तदर्थ भावनम्।' योगसूत्र 1/18

अर्थात् मंत्र का जप अर्थ सहित चिन्तन पूर्वक करना चाहिए । जिस देवता का जप कर रहें हों, उसका ध्यान और चिन्तन करते रहने से ईष्टदेव के दर्शन होते है। तथा उनके साथ वार्तालाप या वरदान प्राप्त करना भी सम्भव हो जाता है।

12.6 क्रियायोग की अवधारणा –

महर्षि पतंजलि रचित योगसूत्र में चार पाद है– समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद एवं कैवल्यपाद। योगसूत्र में महर्षि पतंजलि ने चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही योग कहा है। अर्थात् चित्त की वृत्तियों का सर्वथा अभाव ही योग है। इस अभाव के फलस्वरूप आत्मा अपने स्वरूप में अवस्थित हों जाती है। इस अवस्था में पहुॅचकर उसका इस संसार में आवागमन नहीं होता है। जो कि जीव की अन्तिम अवस्था कही जाती है। इस स्थिति की प्राप्ति करने के लिए अभ्यास तथा वैराग्य एवं ईश्वरप्राणिधान की आवश्यकता योगसूत्र में महर्षि ने बतलाई है किन्तु जो योग साधना में साधक लगा हुआ है तथा जिनका अन्तःकरण शुद्ध है तथा जिसके पूर्व के अनुभव है अभ्यास वैराग्य का साधन उन्हीं साधकों के लिए है। सामान्य व्यक्ति साधना आरम्भ करना चाहते है उनके लिए साधनपाद में महर्षि पतंजलि ने सर्वप्रथम क्रियायोग को बतलाया है'–

महर्षि पतंजलि की दृष्टि में क्रियायोग वह है कि जिन क्रियाओं से योग सधे, और यह क्रियायोग समाधि की सिद्धि देने वाला है।
महर्षि पतंजलि साधनपाद के प्रथम सूत्र में क्रियायोग का वर्णन इस प्रकार करते है–

'तप स्वाध्यायेश्वरप्राणिधानानि क्रियायोगः।' योगसूत्र 2/1

अर्थात् तप स्वाध्याय और ईश्वरप्राणिधान या ईश्वर के प्रति समर्पण यह तीनों ही क्रियायोग है। क्रियायोग समाधि के लिए पहला आधार है और वह तब फलित होता है जब तप स्वाध्याय और ईश्वर के प्रति समर्पण हो।

12.7 क्रियायोग के साधन

महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में क्रियायोग के निम्नांकित तीन साधन बताये है। महर्षि पतंजलि ने समाधि पाद में जो भी योग के साधन बताए हैं वे सभी मन पर निर्भर है। किन्तु जो अन्य विधियों से मन को नियन्त्रित नही कर सकते है। उनके लिए क्रियायोग का वर्णन किया गया है। इस क्रियायोग से क्लेश कमजोर होकर समाधि की स्थिति प्राप्त कराते है। इस समाधि की स्थिति में दुःखों का नाश हो जाता है। आनन्द की प्राप्ति होती है, साधन पाद में इन तीनों साधनों का वर्णन है, जो निम्न प्रकार है–

12.7.1 तप–

तप एक प्रकार से आध्यात्मिक जीवन शैली को कहा जा सकता है। तप साधना काल में आध्यात्मिक जीवन शैली अपनातें हुए जो शारीरिक तथा मानसिक कष्टों को ईश्वर की इच्छा समझकर स्वीकार कर लेना प्रत्युत्तर में कोई प्रतिक्रिया न करना यह साधना तप है। तपस्वी ईश्वर के साक्ष्य अपना सम्पूर्ण जीवन जीता है। साधन काल में उसका कोई भी कर्म ऐसा नहीं होता जो अपनी आराध्य के समक्ष नहीं किया जा सकता। तप संयमित रूप से जीवन जीना है अहंकार, तृष्णा और वासना को पीछे छोड.कर उस प्रभु पर समर्पण ही तप है।

साधक काल में शास्त्रोक्त कर्मो में फल की इच्छा करते हुए करना, शास्त्रोक्त कर्म जैसे– स्वधर्म पालन, व्रत, उपवास, नियम, संयम, कर्तव्य पालन आदि इन सभी कर्मो को निष्ठा व ईमानदारी से करना ही तप है। अपने आश्रय, वर्ण, योग्यता और परिस्थिति के अनुसार ही स्वधर्म का पालन करना चाहिए, उसके पालन में जो भी कष्ट प्राप्त हो चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, उन सभी कष्टों को सहर्ष सहन करना ही 'तप' कहलाता है।

महर्षि पतंजलि ने वर्णन किया है–

'तपो द्वन्द सहनम्'।

अर्थात् सभी प्रकार के द्वन्दों को सहन करना ही तप है। बिना कष्ट सहन कियें कोई भी साधना सिद्ध नही होती है। अतः योग साधना करने के लिए जड.ता तथा आलस्य न करते हुए सभी द्वन्दों, जैसे सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास को सहते हुए, अपनी साधना में डटे रहना ही तप कहलाता है।

योग भाष्य के अनुसार–

न तपस्विनों योग सिद्धतिः। योगभाष्य 2/1

अर्थात् तप किये बिना योग सिद्धि कदापि सम्भव नही हो सकती है। अतः योगी को कठोर तपस्या करनी चाहिए।

श्रीमद् भगवद्गीता में वर्णन है–

'मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुखदुःखदाः।
आगमापायिनोडनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारतः।

गीता 2/14

अर्थात् उन द्वन्दों, शारीरिक कष्टों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए बल्कि उन्हे यह सोचकर सहन का लेना चाहिये कि ये सभी सदैव रहने वाले नही है। अतः द्वन्दों के वशीभूत न होकर साधना में तत्परता के साथ लगे रहना ही योग का सफल होना है, अतएव योगी को कठोर तपस्या करनी चाहिए। परन्तु तप कैसे करना चाहिए। इसका वर्णन योग वाचस्पति टिका में मिलता है–

'तावन्मात्रमेवतपश्चरणीये न यावता धातु वैषम्यमापद्यत'।

अर्थात् तप उतना ही करना चाहिए कि जिससे शरीर के धातुओं में विषमता उत्पन्न न हो। वात, पित्त, कफ, त्रिदोषों में विषमता उत्पन्न न हों। इस प्रकार किया जाने वाले तप अवश्य ही योग सिद्धि प्रदान करता है। महर्षि पतंजलि ने तप के फल का वर्णन इस प्रकार किया है–

'कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयान्तपसः।' योगसूत्र 2/43

अर्थात् तप से अशुद्धियों का नाश होता है। शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है। उसकी समस्त इन्द्रियॉ वश में हो जाती है। और इनके वश में आने से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है।

12.7.2 स्वाध्याय–

स्वाध्याय का यदि शाब्दिक अर्थ लिया जाय तो इसका अर्थ है स्व का अध्ययन। स्वयं का अध्ययन या स्वाध्याय का अर्थ श्रेष्ठ साहित्य का अध्ययन करना है। परन्तु मात्र अध्ययन करने से ही स्वाध्याय नहीं कहा जा सकता है। जब तक कि उस पडे. हुए, अध्ययन किये हुए पर चिन्तन मनन न किया जाय, अध्ययन किये हुए शास्त्रों पर

चिन्तन, मनन कर चरित्र में उतार कर विवेक ज्ञान जाग्रत कर उस परमेश्वर के चरणों प्रीति कर भगवद् भक्ति जाग्रत हो, यही स्वाध्याय है।

पण्डित श्री रामशर्मा जी के अनुसार– श्रेष्ठ साहित्य की प्रकाश में आत्मानुसंधान की ओर गति स्वाध्याय है।

स्वाध्याय ध्यान की स्थिति में अपने स्वरूप का ध्यान करना उस ईश्वर का ध्यान कर उसके मंत्रों का जप करना ही स्वाध्याय है। स्वाध्याय का तात्पर्य वेद, उपनिषद्, दर्शन आदि मोक्ष शास्त्रों का गुरू आचार्य या अन्य विद्वानों से अध्ययन करना। एक अन्य अर्थ के अनुसार स्वाध्याय का अर्थ स्वयं का अध्ययन करना है। परन्तु स्वाध्याय का अर्थ मात्र इतना न होकर अत्यन्त व्यापक है।

योग शास्त्र में वर्णन मिलता है प्रणव मंत्र का विधि पूर्वक जप करना स्वाध्याय है। तथा गुरू मुख से वैदिक मंत्रों का श्रवण करना, उपनिषद एवं पुराणों आदि मोक्ष शास्त्रों का स्वयं अध्ययन करना स्वाध्याय है।

वही योगभाष्य का व्यास जी ने भी स्वाध्याय का वर्णन करते हुए लिखा है–

'स्वाध्यायोमोक्षशास्त्राणामध्ययनम् प्रणव जपो वा।'

व्यासभाष्य 2/32

अर्थात् मोक्ष प्राप्ति जो शास्त्र सहायक हो उन शास्त्रों का अध्ययन करना तथा उन्हें अपने जीवन में उतारना ही स्वाध्याय है।

पं0 श्री रामशर्मा आचार्य जी के अनुसार– 'अच्छी पुस्तकें जीवन्त देव प्रतिमाएं है जिनकी आरधना से तत्काल प्रकाश व उल्लास मिलता है।'

अतः स्वाध्याय शास्त्रों का अध्ययन कर उसे अपने आचरण में, जीवन में अपनाना ही स्वाध्याय है। केवल शास्त्रों के अध्ययन तक ही सीमित न रहकर शास्त्रों के सार को ग्रहण कर सदा–सर्वदा योग साधना में लगे रहना ही स्वाध्याय है। और योग साधना में मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। स्वाध्याय के द्वारा स्वयं का मनन चिन्तन करने से अपने अन्दर के विकारों का पता लगता है। स्वयं के अर्न्तमन में व्याप्त कलषित विचारों का अध्ययन कर उन्हें दूर करने का मार्गदर्शन मिलता है, आत्मज्ञान द्वारा विवेक ज्ञान द्वारा उन्हें दूर किया जा सकता है। जिससे मानव जीवन उत्कृष्ट बनता है। क्योंकि तप के द्वारा व्यक्ति कर्मो को उत्कृष्ट बना सकता है। और साधना की ओर अग्रसर हो सकता है। वही स्वाध्याय के द्वारा अपने ईष्ट के दर्शन कर ज्ञानयोग का अधिकारी बनता है। विवेक ज्ञान की प्राप्ति से जीवन को दिव्य बना सकता है।

महर्षि पतंजलि ने स्वाध्याय का फल बताते हुए कहा है–

'स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः।' योगसूत्र 2/44

अर्थात् स्वाध्याय के तथा प्रणव आदि मन्त्रों के जप करने तथा अनुष्ठान करने से अपने ईष्ट देवता के दर्शन होते है, तथा वे उन्हें आशीर्वाद देकर अनुग्रहीत करते है। वह अपने ईष्ट से आराध्य से एकरस हो जाते है। स्वाध्याय से प्रभु चरणों में प्रीति होती है। भगवद् भक्ति का जागरण होता है।

जो स्वाध्यायशील होते है। उनके लिए प्रभु की शरण सहज हो जाती है।

12.7.3 ईश्वरप्राणिधान या ईश्वर शरणागति–

यह साधन एक मात्र ऐसा साधन है। जिसमें साधक स्वयं समर्पित हो जाता है। अपने आप को भुलाकर ईश्वर पर अपने शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार को समर्पित कर देता है। और समस्त कर्म ईश्वर की मर्जी के अनुरूप होते है। साधक अपने को बॉसुरी की तरह खाली बना लेता है। और उसमें सारे स्वर उसी ईश्वर के होते है। जब साधक पूर्ण रूपेण खाली होकर स्वयं को उस ईश्वर को समर्पित कर देता है। तब वह ईश्वर उसका हाथ उसी प्रकार थाम लेता है। जैसे एक माता द्वारा बच्चे को और पग–पग पर उसको गलत रास्तों से बचाते हुए उचित मार्गदर्शन करता है। साधक अपने समस्त कर्म ईश्वर की आज्ञा से तथा ईश्वर के कर्म समझ कर करता है। और फलेच्छा का त्याग कर कर्म करता है। ऐसा साधक की चित्त की वृत्तियॉ समाप्त होकर वह मोक्ष का अधिकारी बनता है।

महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित क्रियायोग का मुख्य आधार तप कहा जा सकता है, इसका भावनात्मक आधार ईश्वर प्राणिधान है। तथा वैचारिक आधार स्वाध्याय है। ईश्वर के प्रति समर्पण को श्रृद्धा और प्रज्ञा का स्त्रोत कहा जा सकता है। अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है। यदि स्वाध्याय या प्रज्ञा में निरन्तरता ना बनी रहे, वैचारिक दोष भाव बढने लगे तो तप में भी मन्दता आने लगती है। अकर्मण्यता बढने लगती है। इसी तरह यदि श्रृद्धा या ईश्वरप्राणिधान विश्वास में कमी आने लगे तो तप को प्रेरणादायी ऊर्जा नहीं मिल पाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है। जिसने निरन्तर तप किया है। उसकी ईश्वर प्राणिधान या श्रृद्धा स्वाध्याय या प्रज्ञा में कभी भी कमी नहीं आती है। क्रियायोग का उत्कर्ष ईश्वरप्राणिधान है। प्रभु शरणागति या ईश्वर के प्रति समर्पण एक ऐसी जाग्रति है। ऐसा बोध है। जब यह ज्ञान हो जाता है। कि अंधकार का विलय हो चुका है। अब तो बस उस परमात्मा की ही प्रकाश सर्वत्र दिखायी दे रहा है और उस स्थिति को प्राप्त हो जाना कि अब हरि हैं मै नाहि।

ईश्वर की भक्ति विशेष या उपासना को ही ईश्वर प्रणिधान कहते है।

योगभाष्य में महर्षि व्यास ने लिखा है–

'ईश्वर प्राणिधान तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्'। योगभाष्य 2/32

अर्थात् सम्पूर्ण कर्मफलों के साथ अपने कर्मो को गुरुओं का भी परम गुरु अर्थात् ईश्वर को सौंप देना ही ईश्वरप्राणिधान है।

अथर्ववेद में 7/80/3 में इस प्रकार वर्णन मिलता है–

'यत्कासास्ते जुहुमस्तन्नोअस्तु।'

अर्थात् हे ईश्वर! हम जिन शुभ संकल्पों को लेकर आपकी उपासना में तत्पर हैं आप हमारे इन संकल्पों को पूर्ण करें और हमारे जो भी अच्छे या बुरे कर्म हैं या कर्मफल है वे सभी आप को ही समर्पित कर दिये है, इसी भावना का नाम ही ईश्वर प्राणिधान है।

मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य मोक्ष, कैवल्य की प्राप्ति और यही मोक्ष कैवल्य चारों पुरुषार्थ में अन्तिम पुरुषार्थ है। और इसकी सिद्धि के लिए ईश्वर प्राणिधान आवश्यक है, ईश्वर की उपासना या ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण से ही योग में सिद्धि मिलती है।

उस ईश्वर को परिभाषित करते हुए महर्षि पतंजलि ने योगशास्त्र में वर्णन किया है–

'क्लेशकर्म विपाकाषयैरपरामृष्टःपुरुषः विशेषः ईश्वरः।

अर्थात् जो क्लेश, कर्म, कर्मो के फलों, और कर्मो के संस्कारों के सम्बन्ध से रहित है तथा समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ है, उत्तम है वह ईश्वर है। वही ईश्वर हमारा परम गुरू भी है। जैसा कि योगसूत्र में 1/26 में कहा गया है–

'पूर्वेषामपिगुरुः कालेनानवच्छेदात्।'

अर्थात् वह परमेश्वर सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा जी का भी गुरु है, वह अनादि है, अनन्त है।

इसी तरह सृष्टि में आदि से अब तक न जाने कितने गुरु हुए जो कि काल से बाधित है, परन्तु काल से भी ईश्वर सभी गुरुओं का भी गुरु है, उस परम ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करना ही ईश्वर प्रणिधान है। और ईश्वरप्रणिधान के द्वारा समाधि की सिद्धि होती है।

जिसका वर्णन महर्षि पतंजलि ने साधनपाद के 45वें सूत्र में कहा है–

'समाधिसिद्धिरीश्वरप्राणिधानात्।' 2/45।

अर्थात् ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि हो जाती है ईश्वर प्रणिधान से योग साधना के मार्ग में आने वाले सभी विघ्न–बाधाएं दूर हो जाते है। उस ईश्वर की विशेष अनुकम्पा प्राप्त होती है। और साधक को योग सिद्धि प्राप्त होती है। ईश्वर प्रणिधान जो कि ईश्वर पर पूर्ण रुपेण समर्पण है। भक्तियोग है। भक्तियोग, के द्वारा साधक अपने उपास्य ब्रह्म के भाव में पूर्ण रुपेण भावित होकर तद्रुपता का अनुभत करता है। जिससे कि व्यक्तित्व का रुपान्तरण होता है। साधक का जीवन उत्कृष्ट होकर मुक्ति देने वाला होता है। इस प्रकार क्रियायोग के तीनों साधन कर्म, भक्ति, ज्ञान का सुन्दर समन्वय है। जो कि जीवन को उत्कृष्ट बनाने के लिए आवश्यक है। जिस प्रकार मुखमण्डल की सुन्दरता के लिए सभी अंगों का होना आवश्यक है। उसी प्रकार जीवन में सौन्दर्य लाने के लिए कर्म, भक्ति, तथा

ज्ञानयोग का सुन्दर समन्वय नितान्त आवश्यक है। जिससे कि जीवन दिव्यता व उत्कृष्टता को प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त कर सकें।

12.8 क्रियायोग का उद्देश्य एवं महत्व

महर्षि पतंजलि ने साधनपाद के दूसरे सूत्र में क्रियायोग का फल या क्रियायोग का उद्देश्य बताया है–

'समाधिभावनार्थः क्लेशतनुकरणार्थश्च। योगसूत्र 2/2

अर्थात् यह क्रियायोग समाधि की सिद्धि देने वाला तथा पंचक्लेशों को क्षीण करने वाला है।

महर्षि मानते है कि मनुष्य के पूर्व जन्म के संस्कार हर जन्म में अपना प्रभाव दिखाते है और ये क्लेश मनुष्य को हर जन्म में भोगना पड़ता है। पूर्व जन्म के संस्कारों से जुड़े रहने के कारण ये अपना प्रभाव दिखाते है। इन क्लेशों का पूर्णतया क्षय बिना आत्मज्ञान के नहीं होता हैं। परन्तु क्रिया योग की साधना से इन्हें कम या क्षीण किया जा सकता है और मोक्ष प्राप्ति की साधना के मार्ग में बढा जा सकता है।

क्रियायोग की साधना से समाधि की योग्यता आ जाती है। क्रियायोग से यह क्लेश क्षीण होने लगते है क्लेशों के क्षीर्ण होने से ही मन स्थिर हो पाता है। पंचक्लेश यदि तीव्र अवस्था में है तब उस स्थिति में समाधि की भावना नहीं हो पाती है।

तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्राणिधान या कर्म, भक्ति, ज्ञान के द्वारा क्लेशों को क्षीण कर समाधि का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। क्रियायोग के द्वारा जीवन को उत्कृष्ट बनाकर समाधि की प्राप्ति की जा सकती है। क्रियायोग के अन्तर्गत तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्राणिधान की साधना आती है। जिसमें कि कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग का सुन्दर समन्वय समाहित है।

शास्त्रों में तप के महत्व का वर्णन इस प्रकार किया है–

'यद् दुष्करं दुराराध्य दुर्जयं दुरतिक्रमम्।

तत्सर्व तपस्या साध्यातपो हि दुरतिक्रमम्।।'

संसार में जो भी दुसाध्य व अति कठिन कार्य है, उन कठिन से कठिन कार्य को करने में कोई भी समर्थ नहीं होता है। उन कार्यों को तप के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। शास्त्रों में तप को मोक्ष प्राप्ति का साधन कहा है। तप के द्वारा मन वचन तथा अपनी इन्द्रियो को तपाने से जन्म जमान्तरों के पाप भस्मीभूत हो जाते है। कूर्मपूराण में कहा गया है–

योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पाप पन्जरम।

प्रसन्नं जायतेज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति'।।

अर्थात् तपस्या से जो योग की अग्नि उत्पन्न होती है। वह शीघ्र ही मनुष्य के सभी पाप समूहों को दग्ध कर देती है। और पापों के क्षय हो जाने पर ऐसे ज्ञान का उदय होता है। जिससे कि मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। और योगी पुरुष का बन्धन उसी प्रकार टूट जाता है, जिस प्रकार बाज पक्षी बन्धन रस्सी को काट कर आकाश में उड. जाता हे। वह संसार रुपी बन्धन से मुक्त हो जाता है।

ईश्वर प्रणिधान ईंश्वर के प्रति समर्पण ही हमारे समस्त दुखों, कल्मष कषायों का अन्त है। जिसमें की अपना अस्तित्व समाप्त कर उस परमात्मा के अस्तित्व का भान होता। जिसमें कि अपना अस्तित्व मिटने पर समाधि का आनन्द होने लगता है।

महर्षि पतंजलि ईश्वर प्रणिधान का फल बताते हुए कहते है–

'समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्' । योगसूत्र 2/45

अर्थात् ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है। ईश्वर के आशीर्वाद से उसकी समस्त चित्त की वृत्तियॉ समाप्त हो जाती है। जिससे कि वह मोक्ष को प्राप्त होता है।

अतः हम कह सकते है कि वर्तमान जीवन में तप स्वाध्याय व ईश्वरप्रणिधान का अत्यन्त महत्व है। क्योंकि तप कर्म के लिए प्रेरित करते है जो कि कर्मयोग है। कर्मयोगी ही कर्मों को कुशलता पूर्वक कर सकता है। तप, कठिन परिश्रम व्यक्ति को कर्मयोगी बनाती है। अतः कर्मों में कुशलता लाने के लिए तप नितान्त आवश्यक है।

वही स्वाध्याय साधक को ज्ञानयोगी बनाता है। स्वाध्याय से विवेकज्ञान की प्राप्ति होती है। क्या सही है, क्या गलत है का ज्ञान साधक को होता हे। जो कि प्रगति या उन्नति के मार्ग में अति आवश्यक है। स्वाध्याय के द्वारा श्रेष्ठ साहित्यों का अध्ययन करते हुए आत्मानुसंधान की ओर साधक बढ़ता है तथा स्वयं ही वह प्रभु की शरण का आश्रय लेते है।

अभ्यास प्रश्न–

1– सत्य/असत्य कथन

क– मंत्र जप से आत्मसाक्षात्कार किया जा सकता है।

ख– काम्य जप पापों को नष्ट करने के लिए किया जाता है।

ग– उपांशु जप में आवाज बाहर नहीं निकलती है।

घ– योग सूत्र में चार पाद है।

ड.– क्रियायोग तप तथा ईश्वरप्राणिधान का सम्मिलत रूप है।

च– ईश्वर प्राणिधान से ईश्वर के दर्शन होते है।

12.9 सारांश–

प्रिय पाठको प्रस्तुत इकाई में आपने मंत्रयोग तथा क्रियायोग के बारें में विस्तार से अध्ययन किया आपने जाना मंत्रयोग वह शक्ति है जो हमें बन्धनों से मुक्त कर दें और अपने अभीष्ट की प्राप्ति करा दें यही मंत्रयोग है। इसमें आपने मंत्रयोग में चौदह प्रकार के मंत्रजप का अध्ययन किया तथा इसमें सबसे श्रेष्ठ मानसिक जप को बताया गया है मंत्रजप के बाद आपने मंत्रयोग की उपयोगिता तथा महत्व का अध्ययन किया इस प्रकार आप जान चुके होंगे कि मंत्रजप से किस प्रकार अभीष्ट की सिद्धि प्राप्ति होती है। आपने प्रस्तुत इकाई में क्रियायोग के साधन तप स्वाध्याय और ईश्वरप्राणिधान का भी विस्तृत अध्ययन किया। तप स्वाध्याय और ईश्वरप्राणिधान कर्म भक्ति ज्ञान का सुन्दर समन्वय है। जो कि जीवन को उत्कृष्ट बनाने के लिए अति आवश्यक है।

12.10 शब्दावली

निर्भय – भय रहित, बिना भय के

क्रियायोग – तप + स्वाध्याय + ईश्वरप्राणिधान
आराध्य – ईष्ट देवता जिसकी पूजा करते है।
पथ – रास्ता
काम्य – इच्छा, कामना
अर्वाचीन – पुराने, प्राचीन, पुरातन
कैवल्य – समाधि, मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण 'योग सूत्र में कैवल्य
चित्त – मन, बुद्धि तथा अहंकार का सम्मिलत रूप
निरोध – रोकना
तृष्णा – ईच्छा, चाह
स्वाध्याय – अपना अध्ययन, श्रेष्ठ साहित्य का अध्ययन
ईश्वरप्राणिधान – सर्वत्र ईश्वर का बोध
पंचक्लेश – अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश
अकर्मण्यता – कार्य न करने की इच्छा

12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

क– सत्य, ख– असत्य, ग– सत्य, घ– सत्य, ड.– असत्य, च– सत्य ।

12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पातंजल योग दर्शन – स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती (1999) योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेष

2. योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती (2007) योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेति ऋषिकेष।

12.12 निबंधात्मक प्रश्न–

1–मंत्र योग से आप क्या समझते है। मंत्र जप के विविध प्रकारों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

2– क्रिया योग की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसके विविध प्रकारों की चर्चा कीजिए।

3– संक्षित टिप्पणी कीजिए।

क– मंत्रयोग, **ख**– क्रियायोग ।

इकाई 13– महर्षि पतंजलि

इकाई की संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 महर्षि पतंजलि

13.3.1 महर्षि पतंजलि का जीवन परिचय

13.3.2 पातन्जल योग सूत्र का आधार व रचनाकाल

13.3.3 पातन्जल योग सूत्र पर लिखी गई टीकाऐं

13.3.4 पातन्जल योग दर्शन के पाद व प्रतिपाद्य विषय

13.4 महर्षि पतन्जलि द्वारा दी गई योग साधनाऐं

13.5 पतंजलि योग दर्शन की विशिष्टता

13.6 सारांश

13.7 शबदावली

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना–

यह वसुन्धरा कभी भी किसी भी काल में ऋषि सत्ताओं, योगियों, मनीषियों एवं विद्वानों से खाली नहीं रही। पिछली कक्षाओं में आपने अनेक विद्वान जनों के विषय में विस्तृत अध्ययन कर ज्ञान अर्जन किया।

योग का गूढ़ ज्ञान रखते हुये महर्षि ने योग को सूत्र रूप में पिरोकर न सिर्फ तत्कालिक आवश्यकता को पूरा किया है बल्कि आज भी योग की समग्रता का ज्ञान कराने वाली सर्वश्रेष्ठ कृति योग सूत्र ही है। इस इकाई में आप योग सूत्र कार महर्षि पतन्जलि के जीवन वृत्त व उनकी कृति का विशिष्ट अध्ययन करेंगे।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप महर्षि पतन्जलि के जीवन दर्शन के विषय में विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

13.2 उद्‌देश्य–

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- महर्षि पतंजलि के जन्म एवं जन्म स्थान से सम्बन्धित विभिन्न मतों के बारे में जान सकेंगे।
- पतंजलि नाम से प्रसिद्ध हुये व्यक्तियों एवं पतंजलि नाम का अर्थ जान सकेंगे।
- महर्षि पतंजलि द्वारा दी गई उच्चकोटि के साधकों की योग साधना के विषय में जान सकेंगे।
- महर्षि पतंजलि द्वारा दी गई मध्यमकोटि के साधनों के लिये योग साधना के विषय में जान सकेंगे।
- महर्षि पतंजलि द्वारा दी गई सार्वभौम साधना के विषय में जान सकेंगे।
- महर्षि पतंजलि के उच्च आध्यात्मिक मनोदशा का परिचय कराती, योग दर्शन की सर्वश्रेष्ठ कृति 'योग सूत्र' के विषय में जान सकेंगे।
- आधुनिक परिपेक्ष में पतंजलि योग सूत्र की विशिष्टता के विषय में जान सकेंगे।

13.3 महर्षि पतंजलि–

महर्षि पतंजलि योग के आदि ऋषि के रूप में जाने जाते हैं। योग प्राचीन ऋषि–मुनियों, तत्ववेताओं द्वारा प्रतिपादित अनमोल ज्ञान और विज्ञान से युक्त एक अति विशिष्टताओं से परिपूर्ण जीवन मार्ग है। मानव हर काल में अपने जीवन के मूल्यों एवं बाहरी वातावरण के प्रति उत्सुकता, गम्भीरता एवं खोजी प्रवृति का रहा है। हर काल में मानवीय मस्तिष्क आन्तरिक और बाह्य खोजें करता रहा है। आधुनिक मानव ने जहां बाह्य जगत में आश्चर्यचकित कर देने वाली खोजें की हैं, सुख सुविधाओं का अम्बार लगा दिया है वहीं

प्राचीन काल में ऋषि–महत्ऋषियों ने आन्तरिक जगत में अतुलनीय अन्वेषण किये और उन आन्तरिक अन्वेषणों का फल मानसिक सन्तुलन, सामाजिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक सामंजस्य के रूप में परिलक्षित हुआ। यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि बाहरी खोज जैसे–जैसे आगे बढ़ती है, ऊपर उठती है वैसे वैसे असंतोष, चंचलता और भय भी बढ़ता जाता है, अन्दर की छटपटाहट भी बढ़ती जाती है। आर्ष योगियों में महर्षि पतंजलि ऐसे योगी तत्वदृष्टा हुये जिन्होंने मानव मन को समझकर और भविष्य में आने वाली अस्थिरता की पूर्व कल्पना करते हुये उससे उभरने का मार्ग प्रशस्त किया। योग विद्या के यत्र–तत्र बिखरे हुये ज्ञान को इन्होने ही एक सूत्र में पिरोया और समाज को एक उत्कृष्ट, बेजोड़ और सटीक शब्दावली के साथ 'योग सूत्र' नामक ग्रन्थ दिया।

देश, काल, धर्म और लिंग की सीमाओं से परे सार्वभौम सत्य का प्रतिपादन करने वाला 'योग सूत्र' युग दृष्टा महर्षि पतंजलि की अनुपम कृति होने के साथ–साथ इनके उच्च आध्यात्मिक मनोभूमि के दर्शन भी कराती है। इनके सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन 'पतंजलि चरित्र' तथा 'लघुमुनि त्रिकल्पतरू' में प्राप्त होता है।

13.3.1. महर्षि पतंजलि का जीवन परिचय–

योग दर्शनकार महर्षि पतंजलि के जीवन के विषय में कई मत प्राप्त होते हैं। पतंजलि नाम के पीछे भी एक रोचक कथा बहुत प्रचलित है। प्रातःकाल सूर्योदय के समय इनके पिता ध्यान साधना के पश्चात् सूर्यदेव को अर्घ्य प्रदान कर रहे थे। अर्घ्यदान करने के दौरान दिव्य रूप से अपने पिता की अज्जुलि में गिरने के कारण इनका नाम पतंजलि हुआ। एक अन्य कथा के अनुसार साध्वी 'गोनिका' दिव्य पुत्र हेतु ध्यान साधना कर रहीं थी एवं स्वयम् भगवान् भी आदिशेष के रूप में पृथ्वी पर आना चाहते थे एवं अवतरण के लिये किसी उच्चकोटि की आत्मा का शरीर चाहते थे। अपने जीवन की अन्तिम और दिव्य इच्छा को पूरा करने के लिये साध्वी 'गोनिका' सूर्य देव की प्रातः आराधना कर रही थी। साध्वी 'गोनिका' ने अपनी अंजुली में जल लिया और सूर्यदेव को अर्घ्य प्रदान करने लगीं, अपनी आँखें बन्द करने के बाद वे सूर्यदेव का ध्यान करने लगीं और अपने हाथों का जल उन्होने जैसे ही चढ़ाया उनके हाथों में एक सूक्ष्म सर्प प्रकट हो गया जिसने धीरे–धीरे नवजात बालक का रूप ले लिया और बालक ने साध्वी को उसे पुत्र रूप में स्वीकार करने का आग्रह किया। साध्वी 'गोनिका' ने दिव्य बालक को अपने पुत्र रूप में स्वीकार लिया और अंजुलि में गिरने के कारण 'पतंजलि' नाम रखा। एक अन्य कथा में उन्हें माँ अनुसूया के तीन पुत्रों में एक पुत्र माना जाता है।

योग दर्शनकार पतंजलि के जीवन के विषय में कई मत प्राप्त होते हैं। कोई उन्हें नागू जाति में उत्पन्न हुआ मानते हैं एवं कोई उन्हें शेषनाग का अवतार मानतें हैं। परन्तु निश्चित ही श्री पतंजलि भगवान कपिल के पश्चात् और अन्य चारों दर्शनकारों से बहुत पूर्व हुये। उपरोक्त मतों में उनके जन्म नाम के विषय में हमने जाना कि –

- भगवान सविता को अर्घ्य दान देते हुये अंजुलि में आकर गिरने से नाम पतंजलि हुआ।
- माँ अनुसूया (जो कि सप्त ऋषियों में प्रथम ऋषि 'अत्री' की पत्नि हैं) ने त्रिमूर्ति

ब्रह्मा, विष्णु, महेश की ली हुई परीक्षा उत्तीर्ण की और उन्हे अपने पुत्रों के रूप में पाया जो बाद में सोमस्कानन्द जिन्हे पतंजलि ऋषि के नाम से जाना जाता है, दत्तात्रेय भगवान और ऋषि दुर्वासा हुये।

अब आगे हम ऋषि पतंजलि के विषय में प्रचलित अन्य मतों की चर्चा करेंगें और जानेंगें कि–

- वैधक शास्त्र, योग सूत्र, व्याकरण महाभाष्य इन्हीं की रचना मानी जाती हैं एवं इसने पक्ष व विपक्ष में विभिन्न प्रमाणों को जानेंगे।
- ऋषि पतंजलि ने गोत्र के विषय में कौन–कौन से मत प्राप्त होते हैं।
- ऋषि पतंजलि द्वारा लिखे गये योग सूत्र की विषय वस्तु क्या है ।
- महर्षि पतंजलि द्वारा दी गई योग साधनाओं को किस प्रकार जीवन में ढाल सकते हैं।

विभिन्न ज्ञात मतों में से एक मत के अनुसार पाणिनी व्याकरण महाभाष्य तथा वैधक शास्त्र 'चरक संहिता' इन्हीं के द्वारा रचित है ऐसा कहा गया है–

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य व वैधकेन।

योऽपाकरोत्तम् प्रवरं मुनीनां पतंजलि प्रान्जलिरानतोऽस्मि।।

मैं उन मुनियों में श्रेष्ठ पतंजलि को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं, जिन्होंने योग से अन्तःकरण के, पद (व्याकरण महाभाष्य) से वाणी के और वैधक (चरक ग्रन्थ) से शरीर के मल को दूर किया है। पतंजलि नाम के शास्त्रकार भी एक से अधिक हुये हैं ऐसे प्रमाण मिलते हैं। बृहदारण्यक में पतंजलि एक वंश का नाम कहा गया है। 'पतंजलो नामतः कपिगोत्रस्य'(शांकरभाष्य)।

मैक्स मूलर कहते हैं कि शतपथ ब्राह्मण में काव्य पतंजलि नाम है। माध्यन्दिन शतपथ में पातन्जल नाम मिलता है। मत्स्यपुराण के गोत्र–प्रवर सूची में 'आङ्गिरस पतंजलि' नाम है। पतंजलि नामक एक व्यक्ति इलावृतवर्ष या भारतवर्ष के उत्तर में स्थित हिमवान् प्रदेश में निवास करते थे ऐसा वर्णन मिलता है। संस्कृत व्याकरण के इतिहास में पतंजलि का महाभाष्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस ग्रन्थ की महत्ता व्याकरण शास्त्र की उपादेयता के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक दशाओं पर भी प्रकाश डालने के कारण है। योग दर्शन के निर्माता ऋषि पतंजलि एवं महाभाष्यकार पतंजलि एक हैं अथवा नहीं ठीक–ठीक कहना कठिन है। योग दर्शन के प्रथम सूत्र एवं

महाभाष्य के प्रथम सूत्र को यदि ठीक–ठीक समझा जाये तो दोनों 'तत्व' को कहने वाले सूत्र है। प्राचीन काल के पतंजलि को शेषनाग के अवतार के रूप में भी जाना जाता है। एक प्राचीन कथा के अनुसार पतंजलि मुनि को शेषनाग का अवतार मानकर काशी में एक बावड़ी पर पाणिनी मुनि के समक्ष सर्परूप में प्रकट होना बताया गया है। पाणिनी मुनि पूछते हैं। 'कोर्भवान' (घबराकर वे 'को भवान्' के स्थान पर कोर्भवान् पूछ बैठते हैं) सर्प उत्तर देता है 'सपोऽहम्'। पुनः पाणिनी पूछते हैं 'रेफः कुतो गतः' उत्तर में सर्प 'तव मुखे' कहता है। इसके बाद सर्प के आदेशानुसार चादर पर्दे के रूप में लगाई गई एवं बाहर से सभी विद्वान अपनी जिज्ञासाओं का उत्तर पाते रहे। इस प्रकार सम्पूर्ण भाष्य की रचना हुई। किन्तु सर्प की आज्ञा थी कि कोई भी पर्दा उठाकर न देखे। एक व्यक्ति ने इसका उल्लंघन किया, परिणास्वरूप सर्पफुंकार से सभी लेख जल गये। यह पूरी घटना देखने एवं लेखन का कार्य करने वाले पास के वृक्ष पर बैठे हुये यक्ष ने दया करके स्वयम् का लिखा हुआ भाष्य जो कि पत्तों पर लिखा गया था, ब्राह्मणों को दे दिया। कथानुसार इन पत्तों में जिन पर भाष्य लिखा गया था, बकरी कुछ पत्तों को खा गई। इसीलिये भाष्य में कुछ स्थानों पर विसंगति पाई जाती है।

पराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रर्यो

(अष्टाध्यायी 4/3/110)

अष्टाध्यायी के उपरोक्त सूत्र से व्यास जी का पाणिनी मुनि के पूर्व होना सिद्ध होता है। पाणिनी मुनी द्वारा लिखा गया अष्टाध्यायी पर महाभाष्यकर्ता पतंजलि योग दर्शन के सूत्रकार पतंजलि किस प्रकार हो सकते हैं। यह सम्भव है कि पतंजलि नाम से कोई अन्य व्यक्ति इन दोनों उच्च कोटि के ग्रन्थकार हुये हों। जे0एच0 वुड्ज के मतानुसार–योगसूत्रकार पतंजलि व्याकरण महाभाष्यकार पतंजलि से भिन्न व्यक्ति थे क्योंकि दोनों आचार्यों का जीवनकाल भिन्न–भिन्न है। व्याकरणकार पतंजलि का जन्मकाल 300 ई0पू0 माना जाता है।

प्रो0 जैकोबी एवं प्रो0 कीथ के मतानुसार भी दोनों अलग–अलग हुये। इनके कथनानुसार दोनों ग्रन्थों के विषयों में समानता न होना बताया गया है। परन्तु एक भिन्न मत के अनुसार, उदयवीर शास्त्री (साँख्यदर्शन का इतिहास, पृष्ठ 514–523) के मतानुसार दोनों की लेखनशैली एक है एवं तत्वदर्शन समान होने से दोनों एक ही हैं ऐसा उल्लेख मिलता है।

13.3.2 योगसूत्र का आधार एवं रचनाकाल–

एक परम्परा यह कहती है कि हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) द्वारा योग सूत्र की रचना हुई थी। परन्तु विभिन्न तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि योग सूत्रों की रचना ब्रह्मा द्वारा पतंजलि के माध्यम से हुई होगी। कुछ विद्वानों का मानना है कि योग सूत्रकार पतंजलि का जीवनकाल ईसा की चौथी सदी में था। परन्तु कुछ अन्य विद्वानों की मान्यता

यह है कि ईसवीं सन् 50 के आसपास पतंजलि हुये थे। कुछ विद्वानों का मत है कि, पतंजलि का जीवन काल पाँच हजार वर्ष पूर्व था।

'साँख्य दर्शन' योगसूत्र का आधार ग्रन्थ है। साँख्य दर्शन का प्रतिपादन महर्षि कपिल द्वारा हुआ। यह दर्शन बौद्धकाल के पूर्व भी विद्यमान था क्योंकि बुद्ध ने स्वयं अलरकलम आश्रम में साँख्य दर्शन का अध्ययन किया था। यह दर्शन बौद्धकाल की रचनाओं की झलक भी देता है परन्तु कौन सा ग्रन्थ पूर्व एवं बाद लिखा गया, यह कहना कठिन है। कोई ग्रन्थ किसी भी दार्शनिक व्यवस्था की तिथि नहीं बताता क्योंकि हो सकता है कि वह ग्रन्थ सन्दर्भित दर्शन और व्यवस्था के पूर्व विकास के वर्षों बाद लिखा गया हो।

योगसूत्र में भी काल से सम्बन्धित एवं समकालीन विद्वानों अथवा राजा से सम्बन्धित कोई तथ्य व प्रमाण नहीं है अतः विषयवस्तु से भी योगसूत्रकार एवं योगसूत्र के रचनाकाल के सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं। परन्तु विभिन्न विद्वानों के तत्व ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों के अध्ययन से यह बता सामने आई है कि योगसूत्र का रचनाकाल ई0पू0 चौथी सदी में रहा होगा। डॉ0 राधाकृष्णन ने योगसूत्र का लेखन 300 ई0पू0 माना है। प्रो0 एस0एन0 दासगुप्त ने 'हिस्टी ऑफ इन्डियन फिलासॉफी' में दोनों पतंजलियों को एक माना है एवं योगसूत्र का लेखन ई0पू0 दूसरी सदी में हुआ ऐसा माना है। 'जैकोबी' एवं उनकी बात का समर्थन करने वाले 'कीथ' का कथन है कि योगसूत्रकार एवं भाष्यकार अलग–अलग हैं। जैकोबी ने योगसूत्र की रचना पाँचवी सदी में मानी है। जो भी हो, साधक को तत्व ज्ञान से ही आग्रह होना चाहिये न कि ग्रन्थकार के रचनाकाल से। हमारा प्रयोजन महर्षि के व्यक्तिव और उनके रचनाकाल पर वाद–विवाद करना नहीं है, वरन् शाश्वत् ज्ञान को जानना व समझना है, जो कि महर्षि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से एकत्र किया है। ज्ञान का अधिकार सीमित नही होता वरन् हर पीढ़ी हर व्यक्ति का होता है, उसकी विषयवस्तु अधिक महत्वपूर्ण है न कि रचनाकाल।

13.3.3 पातज्जल योग सूत्र पर लिखी गई टीकाऐं अथवा भाष्य–

अनेक विद्वानों ने योगसूत्र पर टीकाऐं लिखी है–

1. योग भाष्य– व्यास मुनि (तिथि अज्ञात)
2. तत्व विशारदी– वाचस्पति मिश्र (नवीं सदी)
3. भोजवृत्ति– भोजराज (ग्यारवीं सदी)
4. योगवार्तिक– विज्ञानभिक्षु (चौदवीं सदी)
5. राजयोग– स्वामी विवेकानंद (उन्नीसवीं सदी)
6. भास्वती– हरिहरानंद आरण्य (बीसवीं सदी)

काशी संस्कृत सारिणी में योगसूत्र पर लिखी गई टीकाओं का संग्रह इस प्रकार है–

- भोजराज कृत 'राजमार्तण्ड'
- भावागणेश कृत 'प्रदीपिका'
- नागोजि भट्ट कृत 'वृत्ति'
- रामानंदयति कृत 'मणिप्रभा'
- अनन्त देव कृत 'चन्द्रिका'
- सदाशिवेन्द्र सरस्वती कृत 'योग सुधाकर'

13.3.4 महर्षि पतंजलि द्वारा दी गई योग साधनाऐं –

भारतीय दर्शन उच्चतम शिखर को प्राप्त करने का मार्ग बताता है। भारतीय दर्शन मोक्ष को जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानता है। मोक्ष सभी के लिये सार्वभौम और सर्वमान्य अवधारणा है। संसार या बन्धन से मुक्त होना ही मोक्ष है। भारतीय दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के तीन मार्ग है –

1. मेटाफिजिकल चिन्तन या अद्वैत वेदान्त
2. थियोलॉजिकल चिन्तन या वैष्णवाद
3. मिमांसा दर्शन पातज्जल योगसूत्र में शरीर मन व आत्मा तीनों को साधने की कला है।

पाँच आधारभूत प्रश्न– समस्त विचार पाँच आधारभूत प्रश्ना ेंसे उत्पन्न होते हैं

1 यह शरीर क्या है? यह किस प्रकार कार्य करता है ? इसकी रचना कैसे हुई?

2 प्राण क्या है? शरीर के भौतिक आयाम के साथ प्राण या शक्ति का क्या सम्बन्ध है?

3 विभिन्न रूपों में प्राण की अभिव्यक्ति के क्या कारण है?

4 आत्मा क्या है? इसकी अनुभूति किस प्रकार की जा सकती है?

5 अनुभवातीत अवस्था की प्राप्ति किस प्रकार की जाती है?

उपरोक्त पाँच प्रश्नों के उत्तर समस्त उपनिषद, दर्शन, तन्त्र शास्त्र हैं। योग दर्शन का लक्ष्य मन को शुद्ध और दर्पण के सदृश साफ कर देना है। चित्त वृत्तियाँ जो मन के दर्पण को मैला किये हुये हैं पातज्जल योग दर्शन उस मैल को साफ करने के निम्नांकित तरीके बताता है।

उच्चकोटि के साधकों हेतु साधना मार्ग–

चित्तवृति निरोध का उपाय बताते हुऐ महर्षि ने,

"अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः" प0यो0सू0 1/12

अर्थात अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त की समस्त हलचलों (वृत्तियों) का निरोध हो जाता है। अभ्यास का तात्पर्य बार–बार दुहराने से है। अभ्यास एक साधना है। प्रयत्न की पूर्ण स्थिति को अभ्यास कहते हैं। इस प्रयत्न के अन्तर्गत वह सभी अभ्यास हैं, जो कि चित्त वृत्तियों के निरोध में सहायक हैं। अभ्यास की नींव, श्रद्धापूर्वक लगातार दीर्घकाल तक साधना करने से उसमें दृढ़ता, स्थिरता और निपुणता आती है (प0यो0सू0 1/14) अभ्यास करने के लिये निम्न शर्तों का पूर्ण होना अत्यन्त आवश्यक है, पहला है अभ्यास पूरी निष्ठा से किया जाये, दूसरा उसमें निरंतरता है, और तीसरा, उसे लम्बे समय तक करते रहना चाहिये। वैराग्य दूसरी साधना के रूप में पंतजलि ऋषि ने कहा है। वैराग्य मन की वह अवस्था है जिसमें वस्तु विशेष के प्रति लगाव अथवा राग द्वेष का पूर्वतया अभाव हो। वैराग्य को भी महर्षि ने निम्न और उच्चतर कोटि में विभक्त किया है। निम्न वैराग्य,

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्यवशीकार संज्ञा वैराग्यम् ।। प0यो0सू0 1/*15*

अर्थात जब व्यक्ति अनुभूत एवं श्रुति इंद्रिय सुखों की वासना से मुक्त हो जाता है तो चेतना की इस अवस्था को वैराग्य कहते हैं। उच्च वैराग्य को परिभाषित करते हुये महर्षि कहते हैं।

तत्पंर पुरूषख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्।। प0यो0सू0 1/*16*

अर्थात वह अवस्था उच्चतम होती है जिसमें पुरूष के ज्ञान के कारण, गुणों की वासना से पूर्ण मुक्तिप्राप्त होती है।

मध्यमकोटि के साधकों के लिये मार्ग–

मध्यम कोटि के साधकों के लिये महर्षि ने क्रिया योग का साधन कहा है,

तप स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः प0यो0सू0 2/*1*

तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान क्रियायोग है। तप से तात्पर्य तपाना अथवा जलाना है जिस प्रकार स्वर्ण को तपाने से उसकी अशुद्धियां दूर हो जाती है उसी प्रकार साधक मन की अशुद्धियों को अनुशासन द्वारा भोग और ऐश्वर्य से दूर रहकर हटा सकता है। स्वाध्याय से तात्पर्य है स्वयं के विषय में जानना एवं श्रेष्ठ पुस्तकों का अध्ययन एवं ईश्वर प्रणिधान से तात्पर्य ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण से है।

तृतीय साधना– यह साधना उच्चकोटि एवं सामान्य जनों के लिये समान रूप से उपयोगी है। यह साधना अष्टांग योग की साधना है,

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान समाधयोऽ्ष्तवंगानि ।। प0यो0सू0 2/29

अर्थात यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान, समाधि योग के ये आठ अंग है। यह राजयोग के नाम से भी जाना जाता है। इनमें से प्रथम पाँच को बहिरंग योग एवं अन्य तीन को अन्तरंग योग कहा जाता है।

13.3.4 पातंजल योग दर्शन के पाद एवं प्रतिपाद्य विषय–

पातंजल योग दर्शन प्रमुखतः चार पादों में विभक्त है।

प्रथम पाद– समाधि पाद– 51 सूत्र

द्वितीय पाद– साधन पाद– 55 सूत्र

तृतीय पाद– विभूति पाद– 55 सूत्र

चतुर्थ पाद– कैवल्य पाद– 34 सूत्र

कुल 195 सूत्र

प्रथम पाद– समाधि पाद

इस पाद में योग का स्वरूप, उसके विभाग तथा फल वर्णित है। प्रारम्भ में योग को एक अनुशासनात्मक प्रक्रिया बताया है कि आध्यात्मिक अनुशासन में रहकर ही परमात्मा से योग हो सकता है। तत्पश्चात योग को 'चित वृत्ति निरोध' कहकर परिभाषित किया गया है। तदुपरान्त चित्त की वृत्तियाँ, अभ्यास, वैराग्य और समाधि आदि का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् सम्प्रज्ञात समाधि और विदेह तथा 'प्रकृतिलय' योगियों को प्राप्त होने वाली असम्प्रज्ञात समाधि का वर्णन है। इसके बाद ईश्वर की परिभाषा तथा योग में बाधक और साधक तत्वों की चर्चा की है। साधक तत्वों में मैत्री, करूणा, प्रसन्नता एवं उपेक्षा की बात कही है। अन्त में योग के फल के रूप में सबीज और निर्बीज समाधि की स्थितियों का वर्णन किया है।

द्वितीय पाद– साधन पाद

योग सूत्र का द्वितीय पाद उन साधकों के लिये हैं जिनका मन ध्यान हेतु प्रयुक्त नहीं है, परन्तु उत्कृष्ट इच्छा से वे इसे प्राप्त कर सकते हैं। यह पाद आज के भारतीय एवं पश्चिमी विद्यार्थियों के लिये चार पादों में अत्यन्त महत्वपूर्ण पाद है। योग की मौलिक भावना यह है कि आत्मा वास्तविक, नित्य एवं शुद्ध है, किन्तु अज्ञान रूपी पर्दा होने के कारण इसे देखना सम्भव नहीं हो पाता। पतंजलि एक महान मनोवैज्ञानिक थे। लक्ष्य स्थापित हो जाने के उपरान्त योग सूत्र उस लक्ष्य की प्राति के लिये एक दृढ़ अनुशासन की व्यवस्था करता है।

द्वितीय पाद का प्रथम सूत्र ही योग की प्राप्ति के लिये क्रिया योग का साधन करने की बात कहता है। इस पाद में मध्यम वर्गीय उन साधकों के लिये साधन वर्णित है, जो जन्म से ही साधारण वातावरण में रहे तथा लौकिक मनुष्यों के समान विविध वासनाओं राग, द्वेष आदि से ग्रस्त हैं। उनके लिये ऐसी साधनाऐं वर्णित की गई हैं ताकि उनका क्रमिक विकास हो सके। चित्त शुद्धि क्रमिक होने से उपद्रव की सम्भावना न्यून रह जाती है। प्रारम्भ में ही क्रिया योग को कहा गया है,

''तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः''

अर्थात तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ही क्रिया योग है। इसके बाद क्रिया योग से दूर होने वाले क्लेशों 'अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश' की चर्चा की है और अविद्या को इनका जनक कहा गया है। अविद्या से ही क्लेश जन्मते हैं एवं क्रिया योग इस अविद्या को दूर कर देता है। इसके पश्चात् दृष्टा–दृश्य का स्वरूप, संयोग, हान (संयोग का अभाव) की चर्चा की गई है। तत्पश्चात् प्रज्ञा का स्वरूप और अष्टांग योग का वर्णन किया गया है।,

''यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान समाधयोऽष्तवंगानि ''

इनमें प्रथम पाँच, यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार बहिरंग साधन एवं अन्य तीन धारणा, ध्यान समाधि अन्तरंग साधन कहे गये हैं अन्तरंग योग का वर्णन तृतीय पाद में किया गया है।

तृतीय पाद–विभूति पाद–

इस पाद में अष्टांग योग के अन्तरंग साधन की चर्चा की गई है। धारणा, ध्यान, समाधि, ये अन्तरंग अंग हैं। चित्त वृत्ति के किसी, एक वृत्ति में ठहरने की धारणा कहा गया है, **'देशबन्धश्चित्तस्य, धारणा'** *(प0यो0सू0 3/1)*। जिस देश में चित स्थिर हो उसी में वृत्ति का बने रहना 'ध्यान' है– **'तत्र प्रत्येकतानता ध्यानम्'** *(प0यो0सू0 3/2)*। जब मात्र ध्येय की प्रतीति हो और चित्त का अपना स्वरूप शून्य हो जाये, उस स्थिति को 'समाधि' कहा गया है– **'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि** *(प0यो0सू0 3/3)*।

अगले सूत्रों में बताया गया है कि जिस योगी के ये योग के आठों अंग सिद्ध हो जाते हैं, उसके लिये संसार का कोई भी कार्य कठिन नहीं रहता। फिर बड़े से बड़े चमत्कार उस योगी के लिये तुच्छ प्रतीत होते हैं। बड़ी से बड़ी विभूतियां पाकर भी सच्चा योगी अहंकार नहीं करता, क्योंकि उसका लक्ष्य ये विभूतियां नहीं, वरन् कैवल्यावस्था है। अतः विभूतिपाद के समापन पर यह उल्लेख किया गया है कि विभूतियां प्राप्त करने का लक्ष्य यह है कि साधक को आत्मा परमात्मा और जगत् का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हो जाये, जिससे वह लौकिक सुखों की अनित्यता को भली–भांति समझ ले, ताकि फिर कभी उनकी ओर आकृष्ट न हो। तृतीय पाद की समाप्ति पर इस साधना के फल और अगले पाद के वर्ण्य विषय कैवल्य को इस सूत्र, **'सत्तव पुरूषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यमिति'** *(प0यो0सू0 3/55)* में बताकर विभूति पाद का पूर्ण हुआ है।

चतुर्थ पाद–कैवल्यपाद–

विभूति पाद में समाधि के फल स्वरूप सिद्वियों की चर्चा की गई है एवं कैवल्यपाद में यह बताया गया है कि यह सिद्धियां समाधि के अतिरिक्त अन्य कारणों–जन्म, औषधि, मंत्र, तप से भी हो सकती है, **'जन्मौषधि मंत्र तपः समाधिजाः सिद्धयः'** *(प0यो0सू0 4/1)*

किन्तु इन सबके द्वारा कैवल्य की प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि इनके द्वारा विशिष्ट शक्तियों के प्राप्त होने पर योगी के चित्त में प्राचीन और नूतन कर्मों के संस्कार अवशिष्ट रह जाते हैं, जो उसे जन्म–मरण के चक्र से निवृत्त नहीं होने देते हैं। अतः ध्यान अथवा समाधि से प्राप्त शक्तियों का स्वामी मुक्ति को पा सकता है।

इस प्रकार चारों पादों में जिस ज्ञान का विवेचन हुआ है वह मूलतः साधना का पक्ष रखता है। निरन्तर उच्च मनोस्थिति ही अन्त में निर्बीज होकर धर्ममेघ समाधि में रूपान्तरित होगी। योगसूत्र किसी विचार अथवा धर्म का खण्डन–मण्डन न करते हुये साधनात्मक क्रिया पक्ष को उभारता है। ताकि साधक उस पर चलकर स्वयं सत्य का अनुभव करे।

13.5 पातंजल योग दर्शन की विशिष्टता–

षट्दर्शनों में योग दर्शन का स्थान विशिष्ट है। यह दर्शन अनुभवों की बात करता है। जो छिछले तल पर खड़े होकर हीरे मोती की बात करते हैं उनके लिये यह नहीं है। यह उनके लिये है जो पानी में डूबकर तल पर बिखरे मणि–माणिक्य पाना चाहते हैं। इस ग्रन्थ की श्रेष्ठता इसका क्रियात्मक व व्यवहारिक होना तो है ही साथ में योग सूत्र की यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि यह आत्मकल्याण एवं जनकल्याण करती है। विश्वबन्धुत्व भाव का प्रतिपादन करता हुआ यह दर्शन यम, नियमादि का वर्णन करता है। अत्याधुनिक मनोचिकित्सा का उददे्श्य मानव मनः स्थिति को सामान्य बनाना है।

पातंजल योग दर्शन मानव को सामान्य तो बनाता ही है साथ ही यह कहीं आगे भी ले जाता है। यह साधक को ऐसा सामर्थ्य प्रदान करता है जिससे वह अपने मन की विभिन्न परतों को उनकी मलिनताओं को समझता हुआ, साफ करता हुआ, आत्मसाक्षात्कार तथा मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है। आज का मनोचिकित्सक इस नतीजे पर अब पहुंचा है कि मन स्थिर करने के लिये, उसने भटकाव को रोकने के लिये किसी रूचि को विकसित करना चाहिये, यह बात 2–3 हजार वर्ष पूर्व महर्षि ने योग सूत्र में कही है।

1/32 सूत्र में कहा गया है कि किसी भी एक वस्तु में गहरी रूचि लेना चाहिये। **1/33** सूत्र में विधायक मनोवृति बनाने का उपाय सुझाये हुये कहा गया है कि **''मैत्री करूणा मुदितो पेक्षाणां सुखदःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावना चित्तप्रसादनम्''** यह सूत्र अपने आप में पूर्ण मनोचिकित्सा का उदाहरण है। मन की विक्षिप्तताओं का कारण बताते हुये **महर्षि 1/30** सूत्र में कहते हैं कि व्याधि, सुस्ती, संदेह, दीर्घसूत्रता, आलस्य, वासना, त्रुटिपूर्ण बोध, सूक्ष्म को ग्रहण न कर पाना, तथा अस्थिरता आदि प्रमुख बाधायें है और **1/31** वे सूत्र में पीड़ा, निराशा, शरीर कंपन, लयताल विहीन श्वांस प्रश्वांस सहायक बाधायें हैं। यदि बाधायें पता चल जायें तो आधी समस्या तो हल हो ही जाती है बाकी आधी समस्याएं अन्तर्निहित शक्तियों का पता चलने पर स्वयं ही तिरोहित हो जाती है। सारे विश्व में मानवता की एक व्यापक समस्या दुःख है। महर्षि पतंजलि ने सारगर्भित सूत्रों द्वारा दुःख के कारण और निवारण की चर्चा उपरोक्त सूत्रों के माध्यम से ही है।

आज तक अनेकों ग्रन्थ, व्यवस्थाऐं तथा युक्तियां जिस बात को पूर्ण सफलता से नहीं कह पाये उस बात को, उस तथ्य को महर्षि पतंजलि ने कम से कम शब्दों में बड़ी स्पष्टता से कहा है। अनावश्यक विस्तार में गए बिना कम से कम शब्दों में उन्होने महत्वपूर्ण तथ्यों को रखा है।

योग दर्शन के सन्दर्भ में यहाँ तक के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि योगदर्शन के सिद्धान्त अति प्राचीन हैं। उसके सटीक व्यवहारिक विशिष्टता के कारण उसका प्रसार दुनियाँ के सुदूर भागों में भी पाया जाता है। साथ ही साथ योग दर्शन का प्रभाव अन्य धर्मो, मत–मतान्तरों पर भी पड़ा है। इसी कारण अन्य धर्मो को पूजा–पद्धतियों में भी कुछ ऐसी क्रियाऐं जुड़ी हैं, जो योग से मिलती जुलती हैं। योग पुरूषार्थ की बात करता है। अनुभव के द्वारा ही सत्य को जाना जा सकता है। इस प्रकार योग सूत्र का मनन, चिंतन एवं प्रयोग करके व्यक्ति अपना क्रमिक उत्कर्ष करते हुये उच्च स्थिति तक पहुंच सकता है।

अभ्यास प्रश्न

सही / गलत

i. महर्षि पतंजलि ने योग के बिखरे हुये ज्ञान को एक सूत्र में पिरोकर योग दर्शन की रचना की।
ii. भगवान सविता को अर्ध्यदान देते हुये अंजुलि में आकर गिरने से नाम पतंजलि हुआ।
iii. तत्व विशारीद, भोजराज की कृति है।
iv. प्रो0 जे0 एच0 वुड्ज के अनुसार योगसूत्र और व्याकरण भाष्यकार पतंजलि एक ही व्यक्ति थे।
v. राजयोग स्वामी विज्ञानानन्द की योग सूत्र पर टीका है।
vi. समाधि चित्त की स्वरूप शून्य अवस्था है।
vii. योग दर्शन भूत, वर्तमान और भविष्य के सभी कालों में उपयोगी है।

सही विकल्प चुनिये –

i. व्याकरणकार पतंजलि का जन्म माना जाता है–

1. 300 ई0 पू0
2. 400 ई0 पू0
3. 100 ई0 पू0
4. 1500 ई0 पू0

ii. ऋषि पतंजलि की जाति–

1. शेषनाग
2. रावी

3. नागू
4. सूर्य

iii. योग सूत्र प्रथम पाद में सूत्रों की संख्या है–

1. 55
2. 34
3. 51
4. 50

iv. अष्टांग योग की तृतीय सीढ़ी है–

1 यम

2 प्रत्याहार

3. आसन

4. प्राणायाम

उत्तम कोटि के साधनों के लिये साधना है–

1. अभ्यास और वैराग्य
2. अष्टांग योग
3. क्रिया योग
4. सप्तांग योग

13.6 सारांश

महर्षि पतंजलि योग के आदि ऋषि, प्रवक्ता और एक उच्च कोटि के दूरदर्शी, भविष्य वक्ता हुये। इनके जन्म के सम्बन्ध में भले ही भिन्न मत हों परन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि आदि प्रवक्ता का संदेश क्या है? उनके सम्बन्ध में उन्होने स्वयं कुछ नहीं कहा जो कि इस बात का द्योतक है कि महर्षि स्वयं नहीं चाहते कि व्यक्ति विशेष का गुणगान ही संसार करता रहे बल्कि उनके द्वारा दिया गया संदेश, योग का संदेश अधिक वर्णनीय है, जीवन में उतारने योग्य है। महर्षि का व्यक्तिव और कृतित्व उनके द्वारा लिखे गये ग्रन्थ से ही स्पष्ट हो जाता है कि उनके हृदय में मानव जाति के लिये कितना प्रेम और करूणा थी कि उन्होने योग सूत्र जैसी मनोवैज्ञानिक रचना मानव जाति को भेंट की। गागर में सागर, सूक्ष्म में विराट की सत्ता के दर्शन इसमें होते हैं। मन के गहन तलों की ओट में छिपे हुये विकारों के विषय में जानकर उसे कैसे ठीक किया जाये यह महर्षि ने स्पष्ट किया है।

13.7 शब्दावली–

आदि–प्राचीन

तत्ववेत्ता– तत्व को जानने वाला, सत्य को जानने वाला

अन्वेषण–खोज

आर्ष– आदि, प्राचीन

योग सूत्र– ऋषि पतंजलि द्वारा लिखा गया योग पर ग्रन्थ

सार्वभौम– सभी कालों में सभी को स्वीकार्य

गोनिका–प्राचीन साधिका

अनुसूया– ऋषि 'अत्री' की पत्नि एवं साधिका

दत्तात्रेय–दशनामी सन्यास परम्परा के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु महेश के अवतार

दुर्वासा–प्राचीन ऋषि(शिव भक्त)

अन्तःतत्व– मन, योग ग्रन्थों के अनुसार मन+बुद्धि+अहंकार मिलकर अन्तःकरण कहलाते हैं

उपादेयता– विशिष्टता, महत्ता, उपयोगिता

भाष्य– टीका, टिप्पणी

सांख्य दर्शन–आस्तिक षट् दर्शनों में एक दर्शन

अनित्य–जो वस्तु सदा नहीं रहेगी।

तिरोहित होना– सरल हो जाना, समर्पण, झुकना

मोक्ष– समाधि की उच्च स्थिति, कैवल्य, पुनर्जन्म का न होना, निर्वाण

निर्बीज–जहां संस्कार शेष न रहे

धर्ममेध– निर्बीज समाधि के उपरान्त चित्त की सर्वोच्च अवस्था जहां आत्म साक्षात्कार की स्थिति प्राप्त होती है।

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

सही / गलत

- **i.** सही
- **ii.** सही
- **iii.** गलत
- **iv.** गलत

- **v.** गलत
- **vi.** सही
- **vii.** सही

सही विकल्प चुनिये –

- **i.** (1)
- **ii.** (3)
- **iii.** (3)
- **iv.** (3)
- **v.** (1)

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

- पातंजल योग प्रदीप– ओमानंद तीर्थ, गीता प्रेस गोरखपुर
- योग दर्शन– स्वामी निरंजनानंद सरस्वती, बिहार योग भारती ट्रस्ट, गंगदर्शन, मुंगेर (बिहार)
- मुक्ति के चार सोपान–स्वामी सत्यानंद सरस्वती, बिहार योग भारती, गंगादर्शन, मुंगेर
- योग विज्ञान–विज्ञानानंद सरस्वती
- हिन्दू धर्मकोश–राजवल्ली पाण्डेय

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

(1) महर्षि पतंजलि के जन्म से सम्बन्धित कथाओं पर प्रकाश डालिये।

(2) महर्षि पतंजलि के व्याकरण महाभाष्यकार एवं योग सूत्र रचनाकार होने के पक्ष में तर्कपूर्ण विवेचना कीजिये।

(3) महर्षि पतंजलि द्वारा दी गई उच्च कोटि के साधकों के लिये योग साधना का वर्णन कीजिये।

(4) मध्यमकोटि के साधकों हेतु दी गई साधना का वर्णन कीजिये।

(5) पतंजलि ऋषि द्वारा दी गई सार्वभौम साधना का वर्णन अपने शब्दों में कीजिये।

(6) पतंजलि योग की विशिष्टता का वर्णन कीजिये।

इकाई 14 गोरक्षनाथ

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 योगी गोरक्षनाथ

14.3.1 जीवन परिचय

14.3.2 शिष्य

14.4 नाथ सम्प्रदाय

14.5 सिद्धयोगी गोरक्षनाथ

14.6 गोरक्षनाथ कृत ग्रन्थ

14.7 योगी गोरक्षनाथ द्वारा दी गई योग साधनाएँ

14.8 गोरक्षसंहिता एक परिचय

14.9 सारांश

14.10 शब्दावली

14.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.13 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना–

पूर्व के अध्याय में आपने महर्षि पतंजलि के जीवन दर्शन के सम्बन्ध में पढ़ा। महर्षि ने योग 'के विस्तृत ज्ञान को एक सूत्र में पिरोकर मुमुक्षु जनों, प्रारम्भिक अभ्यासियों एवं साधारण जनों, सभी के लिये शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रसस्त किया। हठयोग के ज्ञान को साधारण जनों तक पहुँचाने का श्रेय योगी गोरक्षनाथ को जाता है। नाथ सम्प्रदाय के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले योगी के सम्बन्ध में यह इकाई समर्पित है। इस इकाई के अध्ययन से आप इनके सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक जान पाऐंगे।

14.2. उद्देश्य–

गोरक्षनाथ के विषय में प्रस्तुत इकाई में आपः–

- उन्होने साधक वर्ग और साधारण जनमानस को योग की कौन सी विधा दी यह जान सकेंगे।
- योगी गोरक्षनाथ के विषय में प्रचलित दन्त कथा के विषय में जान सकेंगे। योगी गोरक्षनाथ की सिद्धियों के विषय में जानेंगें।
- योगी गोरक्षनाथ द्वारा कौन–कौन से ग्रन्थ लिखे गये यह जान सकेंगें।
- गोरक्षनाथ द्वारा दी गई योग साधनाओं के विषय में जान सकेगें।
- योगी गोरक्षनाथ के महान ज्ञानी होने का परिचय देती हुई कृति 'गोरक्ष संहिता' का सूक्ष्म परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- नाथ सम्प्रदाय के विषय में जान सकेंगें।

14.3 योगी गोरक्षनाथ–

महायोगी गोरक्षनाथ नाथ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध एवं सिद्ध योगी पुरूष हुये। नाथ सम्प्रदाय का उद्‌भव आदि नाथ अर्थात स्वयम् आदि देव भगवान शिव के द्वारा माना जाता है। इस सम्प्रदाय में नौ नाथ हुये जिनके विषय में आप आगे जानेंगें। इन नौ नाथों में योगी गोरक्षनाथ या कहीं–कहीं इन्हें गोरखनाथ से भी सम्बोधित किया गया है। इन्ही योगी गोरक्षनाथ ने उस समय एक अलग योग विद्या को प्रचारित किया जिस समय मानव समाज को एक निश्चित दिशा की अत्यन्त आवश्यकता थी। योगी ने तंत्र शास्त्र में बिखरे हुये योग की ऐसी विधाओं को चुनके अलग किया जो तत्कालिक मानव मन व शरीर के लिये हितकारी थीं। यह विशिष्ट विधा हठयोग कहलाई।

योगी गोरक्षनाथ

ऐसा माना जाता है कि हठयोग का ज्ञान परमशिव ने माँ पार्वती को दिया था वही ज्ञान मत्स्येन्द्रनाथ से गोरक्षनाथ को प्राप्त हुआ और उन्होंने इस विद्या का प्रचार–प्रसार किया। स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका में गोरक्षनाथ को हठविद्या का मर्मज्ञ बताया गया है। हठयोग शरीर पर आधारित योग है जिस काल में योगी गोरक्षनाथ ने जन्म लिया वह काल छद्मवेश धारी तंत्र विद्याधारियों का आडम्बरपूर्ण काल था। भगवान बुद्ध के पश्चात् उनके शिष्य कई विचारधाराओं में बंट गये एवं धीरे–धीरे बौद्ध विचार धारा में अवरोध व मलिनताऐं आने लगी। उच्च ज्ञान को समझने व धारण करने के लिये पात्रता की आवश्यकता होती है, जो कि तब बौद्ध धर्म स्वीकार करने वाले साधरण जन में नही थी अतः वे इस धर्म को न समझते हुये बौद्ध दर्शन के पतन का कारण हुये। इस काल में योगी गोरक्षनाथ ने लोगों में फैली पर्याप्त भ्रांतियों, संदेहों को दूर करने के लिये सहज व सुविकसित ज्ञान का अवलम्बन दिया वह ज्ञान पूर्व वर्णित हठयोग है। यह योग शरीर से मन को साधने की विद्या बताता है। प्राणों पर नियंत्रण इसी माध्यम से किया जा सकता है। निश्चित रूप से साधरण लोंगों एवं साधकों तक इस ज्ञान को पहुंचाने का श्रेय योगी गोरक्षनाथ को ही जाता है।

14.3.1 जीवन परिचय–

भारतीय योगियों की यह विशिष्टता देखी जाती है कि इन्होने स्वयं के लिये, अपने यश, नाम के लिये ग्रन्थों की रचना, ज्ञान की खोज नहीं की वरन करूणा वश साधकों एवं साधरण जनों के उद्धार के लिये मार्ग बताये, इसी परम्परा का पालन करते हुये योगी गोरक्षनाथ के विषय में भी ठीक–ठीक बता पाना सम्भव नहीं हो सका है। विभिन्न

इतिहासकारों ने इनका काल 10वीं से 14वीं सदी के बीच में कहा है। योगी गोरक्षनाथ द्वारा रचित गोरखवानी के पद 36 में यह वर्णन मिलता है कि

आदिनाथ नाती मच्छिन्द्रनाथ पूता।

निज तन निहारै गौरषअवधूता।।

योगी मत्स्येन्द्रनाथ

इनकी रचनाओं से इनके विषय में मात्र ये ही संकेत मिलता है कि ये आदिनाथ एवं मत्स्येन्द्रनाथ के कुल में जन्में थे।

एक दन्त कथा के अनुसार, नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक गुरू मत्स्येन्द्रनाथ सन्यास परम्परा के अनुसार भिक्षाटन के लिये निकले थे। द्वार–द्वार मधुकरी से स्वयं का भरण–पोषण करना सन्यास परम्परा का नियम है। गुरू मत्स्येन्द्रनाथ उस परम्परा के अनुयायी थे जो समाज में उच्च पद पर विराजमान है। समाज का यह कर्तव्य है कि वह लोक कल्याण के लिये सन्यास व्रत धारण करने वाले त्यागी का भरण–पोषण करें एवं उस त्यागी से ज्ञान लेकर अपना उद्धार करे। इसी परम्परा का पालन करते हुये त्यागी योगारूढ सन्यासी आदिनाथ का स्मरण करते हुये एवं 'अलख निरंजन' का अलख जगाते हुये द्वार–द्वार जाने लगे। इसी क्रम में योगी ने एक द्वार पर अलख जगाई तो भीतर से एक ब्राह्मणी कुछ अनाज लेकर सन्यासी के सम्मुख आई। ब्राह्मणी के मुख पर सत्व का तेज था परन्तु उदासी की कुछ रेखायें योगी गोरक्षनाथ की तीव्र आँखों से छिप न सकीं। करूणावश योगी गोरक्षनाथ ने

ब्राह्मणी से उदासी का कारण पूछा। ब्राह्मणी सरल हृदया व सहज विश्वासी स्त्री थी। बाह्मणी तत्कालीन भारतीय स्त्री का प्रतिनिधित्व करती हैं जो सन्यास को आदर एवं सम्मान की दृष्टि से देखती हैं एवं दान देने का अवसर पाना अपना सौभाग्य समझती हैं। योगी के पूछे जाने पर कि दुःख का कारण क्या है ? ब्राह्मणी ने अपनी गहन पीड़ा को कह सुनाया। निःसन्तान होने के कारण को जानकर योगी मत्स्येन्द्रनाथ ने योगबल से कमण्डलु से भभूत निकाली और ब्राह्मणी को देते हुये कहा कि, इसे खालो। तुम्हें पुत्र रत्न की प्राति होगी। ऐसा कहने के पश्चात् योगी चले गये। ब्राह्मणी जाते हुये योगी को देखती रहीं और यह सोचती रही कि अब उसके जीवन का दुःख चला जायेगा। यह पूरी घटना पड़ोस की स्त्री भी देखती रही और योगी के जाने के पश्चात ब्राह्मणी के पास आकर उसे भभूत को न खाने की सलाह देने लगी। तरह–तरह के डर दिखाकर पड़ोसी स्त्री ने ब्राह्मणी के मन में संशय उत्पन्न कर दिया और इसी किंकर्तव्य विमूढ़ अवस्था में उसने वह भभूत एक गढ्ढे में डाल दी।

समय ने करवट ली और देखते–देखते बारह वर्ष बीत गये। एक बार पुनः योगी मत्स्येन्द्रनाथ भिक्षाटन हेतु ब्राह्मणी के द्वार पर आये और 'अलख निरंजन' शब्द कहा। अलख शब्द सुनते ही ब्राह्मणी द्वार पर आकर दान देने एवं आर्शीवाद पाने आई। भेंट होते ही योगी मत्स्येन्द्रनाथ ने कहा–देखूं तो तुम्हारा पुत्र कितना बड़ा हुआ अब तो वह 12 वर्ष का हो गया है। ऐसा सुनते ही ब्राह्मणी बड़ी दुःखी हुई और गुरू से उस घटना के विषय में कह सुनाया जो उस समय उनके जाने के बाद घटित हुई थी। योगी मत्स्येन्द्रनाथ उस गढ्ढे के पास गये और अलख शब्द कहा। गढ्ढे से 12 वर्ष का एक सुन्दर व तेजस्वी बालक बाहर आया व योगी को दण्डवत् प्रणाम किया। इसी बालक का नाम गोरक्षनाथ हुआ। कई विद्वान इतिहासकार इस घटना को रायबरेली स्थित जायस नामक कस्बे में हुआ वर्णित करते हैं एवं कुछ अन्यत्र कहीं और घटित होना बताते हैं।

योगीराज गोरखनाथ के जन्म एवं जन्मस्थान को लेकर अलग–अलग विद्वानों के अलग–अलग मत हैं। अधिकांश लेखक व ग्रन्थकार इनका जन्म काल 11वीं से 12वीं शताब्दी के आस–पास मानते है। इनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में नाथ सम्प्रदाय के इतिहास पर दृष्टि डालें तो गोरखपुर नामक स्थान नाथ सम्प्रदाय की कर्म स्थली मानी जाती है। कई विद्वान यहीं पर इनका जन्म स्थान व कर्मभूमि मानते हैं। एक अन्य मत के अनुसार योगी गोरखनाथ का कर्मकाल 13वीं शताब्दी माना जाता है। नाथ सम्प्रदाय की मान्यता है कि ये सहस्रों वर्षों तक जीवित रहने की क्षमता रखने वाले परमयोगी हैं और सदा ही साधकों और साधारण जनों को ज्ञानमार्ग दिखाते रहते हैं। इनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में कई लोगों का मत है कि ये रावलपिंडी में जन्में थे यह मत मानने वालों में जयशंकर मिश्र, ग्रियर्सन, श्री मोहन सिंह आदि हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार गोदावरी तट पर स्थित 'चन्द्रगिरी' ग्राम में इनका जन्म होना माना जाता है।

उपरोक्त तथ्यों का अध्ययन कर योगी गोरक्षनाथ के सम्बन्ध के निम्न बातें स्पष्ट होती है–

- हठ विद्या के ज्ञाता एवं जन–जन तक हठ योग के ज्ञान को पहुंचाने का श्रेय इन्हीं को जाता है।
- जन्म स्थान एवं जन्म काल के विषय में स्पष्ट मत प्राप्त नहीं होते परन्तु अनुमान लगाने पर 10वीं से 12वीं सदी के बीच में इनका कार्यकाल माना जा सकता है।
- इनके गुरू मत्स्येन्द्रनाथ थे जो स्वयं एक श्रेष्ठ सन्यासी व तत्ववेता थे एवं इन्हीं से हठविद्या का उपदेश इन्होंने प्राप्त किया।
- नाथ सम्प्रदाय के नौ नाथों में सबसे अधिक प्रसिद्ध योगी ये ही थे।
- मृत्यु के विषय में कोई संकेत नहीं मिलते,नाथ सम्प्रदाय के अनुसार सहस्रों वर्षों का इनका जीवन काल है।

14.3.2. शिष्य

गोरखनाथ के दो प्रधान शिष्य हुये, गहिनी नाथ और चर्पटी नाथ। इनके साथ ही जालन्धरनाथ, चौरंगीनाथ, भर्तहरि, कृष्णपद, गोपीचन्द निवृत्तिनाथ, संत ज्ञानेश्वर आदि संत नाथ सम्प्रदाय में हुये।

उपरोक्त वर्णन को पढ़कर सहज ही ध्यान नाथ सम्प्रदाय पर जाता है कि यह कैसा व किस प्रकार के योगियों का समूह रहा होगा। इस सम्प्रदाय का तत्कालीन समाज को गढ़ने में कितना योगदान रहा होगा। आगे आप नाथ सम्प्रदाय के विषय में निम्न बिन्दुओं का उत्तर जान पायेंगें।

1. नाथ सम्प्रदाय का उद्‌भव कैसे हुआ।
2. नाथ सम्प्रदाय का कार्यकाल व साधना क्या थी
3. समाज को सही दिशा में गढ़ने में कितनी भूमिका रही

14.4 नाथ सम्प्रदाय–

नाथ सम्प्रदाय का उदय यौगिक क्रियाओं के उद्धार के लिए हुआ। नाथ सम्प्रदाय के उद्‌भव के पूर्व बौद्ध सम्प्रदाय का प्रचार–प्रसार पूर्वी देशों चीन,जापान,श्रीलंका आदि में जोरों पर था। परन्तु बुद्ध के शरीर त्यागने के पश्चात यह उच्च कोटि का दर्शन कई छोटे–छोटे समूहों में बंट गया और उनकी धारणायें भी उसी अनुरूप अलग–अलग हो गईं। यदि इतिहास पर दृष्टिपात करें तो कोई धर्म तब नष्ट होने के कगार पर आता है जब वह शाखाओं, उपशाखाओं में बंट कर अपने–अपने अनुसार व्याख्या व आचार करने लगता है। कई राजसिक एवं तामसिक वृत्तियों के हाथ में यदि गूढ़ विद्या आ जाये तो उसका उपयोग कभी भी कल्याणकारी परिणामों वाला नहीं होगा।

इसी कारण से जब इस धर्म में आडम्बर व कर्मकांड प्रमुख होने लगा तो जनमानस के चित्त को शांति प्रदान करने के लिये करूणावश आदिनाथ से उत्पन्न 'नाथ सम्प्रदाय' का प्रादुर्भाव हुआ। नाथ सम्प्रदाय के योगियों ने क्रियाओं का सही अर्थ समाज के सामने रखा

व इसके आडम्बरपूर्ण हिस्से को अलग कर दिया। नाथ सम्प्रदाय के नौ नाथ प्रसिद्ध हुये। जैसा कि पूर्व बताया जा चुका है कि इस सम्प्रदाय के प्रणेता स्वयं आदिनाथ भगवान शिव हैं इन्होने अपने शिष्य मत्स्येन्द्र नाथ को यह ज्ञान दिया व मत्स्येन्द्रनाथ से गोरक्षनाथ को गुरू शिष्य परम्परा के अनुसार तत्व ज्ञान को दीक्षा दी गई। प्रथम आदिनाथ को विक्रमी संवत 8 के आस–पास अवतीर्ण हुआ माना जाता है।

नौ नाथों में गोरक्षनाथ का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध व प्रमुखता से लिया जाता है। इन्होने ही तंत्र में बिखरे हुये गूढ़ ज्ञान को सरल एवं सुलभ बनाया व उसके सही अर्थो का प्रचार–प्रसार किया। हठयोग के माध्यम से प्राणों का शुद्धिकरण कर आत्मतत्व तक पहुंचने की विधा इन्होने ही बताई। नाथ सम्प्रदाय की मुख्य कर्म भूमि उत्तर प्रदेश स्थित गोरखपुर बताई जाती है।

गोरखनाथ जी का मंदिर आज भी यहाँ लोगों की श्रद्धा का केन्द्र बिन्दु है। यहाँ आज भी नाथपंथी कनफटे योगी साधु रहते हैं। नेपाल के निवासी गोरक्षनाथ को पशुपतिनाथ जी का अवतार मानते हैं। नेपाल में भोगमती, भातगाँव, गृगस्थली, चौधरी, स्वारीकोट, पिडठार आदि स्थानों में नाथ सम्प्रदाय के योगाश्रम हैं। राज्य के सिक्कों पर 'श्री गोरखनाथ' अंकित हैं। गोरखनाथी समप्रदाय के लोगों का सम्बन्ध कापालिकों से अति निकट का माना जाता है। गोरखनाथ का नाम सर्वप्रथम मराठा भक्त ज्ञानेश्वर रचित 'अमृतानुभव' (ई0 1290) में उद्धृत है अतः नाथ सम्प्रदाय का उद्भव इस आधार पर 13वीं शताब्दी माना जाता है। नाथ सम्प्रदाय के सम्बन्ध में कई रोचक कथाऐं सुनने एवं पढ़ने में आती हैं। कुछ भी हो इस सम्प्रदाय का बहुत बड़ा योगदान समाज को सही दिशा देने में रहा है यह बात सर्वमान्य है।

वास्तविक स्वरूप

नाथ का शाब्दिक अर्थ– नाथ शब्द की उत्पत्ति नाथृ धातु में अ प्रत्यय लगाने से होती है। सिद्ध सिद्धांत पद्धति में नाथृ धातु मुख्यता चार अर्थों में प्रयुक्त होता है– याक, उपतापक, ईश्वर और आशीर्वाददाता। नाथ शब्द का अर्थ गोरक्षसिद्धांत संग्रह के पृष्ठ 26 के अनुसार–

नकारो नाद रूपं थकारः स्थाप्यते सदा।
भुवनत्रयमेवैकः श्री गोरक्ष नामोऽस्तुते।। *(गो.सि.सं.पृ.26)*

अर्थात्–ना शब्द का अर्थ है अनादि रूप और धा का अर्थ है भुवनत्रय का स्थापित होना। अतः नाथ का अर्थ है वह अनादि धर्म जो भुवनात्रय की स्थिति का कारण हे। इसी प्रकार गोरक्ष सिद्धांत संग्रह के पृ. 26 शक्ति संगम तंत्र में ना शब्द का अर्थ नाथ ब्रह्म भी है।

श्री मोक्षदानक्षत्वान्नाथ (द) ब्रह्मानुबोधनात्।
स्थागिताज्ञानविभवाच्दीनाथ इति गीयते।। *(गोरक्ष सिद्धांत संग्रह)*

अर्थात्– जो मोक्ष का दान देने में दक्ष है और उसका ज्ञान कराता है। एवं थ का अर्थ है अज्ञान के सामर्थ्य को स्थापित करने वाला । चूंकि नाथ के आश्रयगण से इस नाथ ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और अज्ञान की माया अवरूद्ध होती है। इसलिये नाथ शब्द का व्यवहार किया जाता है।

नाथ शब्द का अर्थ शिव जी का प्रतीक है परन्तु यह अकेला नहीं है, अर्थात यह शक्ति युक्त शब्द है। ना शब्द पुरूषवाची है और थ का अर्थ है शक्ति। ना पुराण पुरूष शिव है और उनकी अन्तरंग शक्ति का नाम ध है तंत्र शास्त्र में कहा गया है–

अकारः शिव इत्युक्तः थकारः शक्तिर्उज्यते। *(तंत्रशास्त्र)*

इस प्रकार शिव–शक्ति अभेद, महेश्वर भी स्वयं शक्ति से रहित हो कुछ नहीं कर सकते। ऐसा श्रीनाथ जी कहते हैं–

शिवोऽपि शक्ति रहितः कर्तुं शक्तों न किंचना।। *(सिद्धसिद्धांत पद्धति पृ.15)*

यहां शिव को शक्ति वाचक माना गया है इसके अभाव में शिव भी शव के समान है। इसलिए शिव से उसकी शक्ति कभी अलग नहीं हो सकती । इसी कारण श्री गोरक्षनाथ जी ने मंगल श्लोक में शक्तियुक्त ऐसा विशेषण दिया है। इस प्रकार नाथ शिव और शक्ति के सामरस्य का द्योतक हैं। देह में शिव ब्रह्मरन्ध्र में निवास करते हैं तथा मूलाधार में शक्ति निवास करती है जो साधक के द्वारा शिव और शक्ति का मेल कराने में समर्थ होते हैं, यथार्थ में वे ही सच्चे नाथ कहलाते हैं। अतः नाथ सम्प्रदाय में योग साधना शिव और शक्ति के संयोग की अंतिम परिणती है।

सिद्धांत–

भारतीय धर्म और दर्शन मनुष्य की भौतिक उपब्धियों से लेकर अध्यात्मिक सिद्धि तक जीवन के प्रत्येक स्तर पर कल्याण कारी रहे हैं। योग विद्या धर्म और दर्शन दोनों को चरितार्थ करता है क्योंकि यह व्यक्ति के जीवन की हर परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने वाला धर्म तथा परम्परागत आध्यात्मिक विचार–प्रवाह को अपने अनुकूल बनाने वाला धर्म तथा परम्परागत आध्यात्मिक विचार–प्रवाह को मथकर उसके भी तर से सर्वयुगीन तत्व को प्रकट करने वाला व्यवहारिक दर्शन है।

योग सम्मत जीवन पद्धति प्राचीन काल से ही सदेश में विद्यमान थी। शास्त्रों के अनुसार योग– दर्शन के प्रवर्तक महर्षि पतंजलि माने जाते हैं और उन्होंने यह योग विद्या हिरण्यगर्भ से प्राप्त कर शास्त्र रू्प में ग्रंथबद्ध की। श्री अक्षय कुमार बनर्जी के अनुसार गोरखनाथ ने पातंजल योग दर्शन को युग–सम्मत बनाकर एक सशक्त एवं जीवंत मत के रूप में प्रतिष्ठित किया। ऐसी मान्यता है कि गोरखनाथ स्वयं शिव का अवतार थे।

इसी कारण भक्त उन्हें ओम् शिवगोरक्ष कहकर भी सम्बोधित करते हैं। गोरखपंथ की बाहर शाखाओं में छः स्वयं भगवान् शिव द्वारा और छः गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित हैं। इसका

तात्पर्य यह है कि भगवान् शिव को अपना आराध्य देव मानकर कुछ योगी सम्प्रदाय पहले से विद्यमान थे। गोरखनाथ के व्यायापक प्रभाव को स्वीकार कर ये सम्प्रदाय उनके द्वारा प्रवर्तित नवीन जीवंत सम्प्रदाय के अंग बन गये। गुरू गोरखनाथ ने जिस योग–मार्ग का संघटन किया था उसे नाथयोग कहते हैं और नाथयोगियों के अनुसार योग के उत्पत्तिकर्ता स्वयं आदिनाथ स्वयं भगवान् शंकर है। नाथ–योग को सिद्धमत एवं अवधूत मत भी कहते हैं।

नाथ सम्प्रदाय के मूलभूत सिद्धांतों ने समस्त तार्किक विश्लेषण से ऊपर उठकर समतत्व की प्रतिष्ठा की। इस समतत्व को ही परमतत्व, परासंवित , परब्रह्म, परमपद, परमशून्य, परशिव आदि नामों से अभिहित किया जाता है। यह समतत्व तर्क–वितर्क का विषय नहीं है। यह व्यक्ति के बौद्धिक एवं मानसिक उत्कर्ष की चरम स्थिति है जो कि सामरस्य दशा में ही अनुभूत हो सकती है। नाथ सम्प्रदय के अनुसार व्यष्टिपिण्ड (शरीर) ब्रह्माण्ड का ही लघु संस्करण है। मनुष्य के किस अंग में ब्रह्माण का कौन सा अंग है इसका अनुभव करने के लिए षडयंत्र योग साधना का विधान बताया गया है। और इस षड्ंग योग साधना के लिए नाथ सम्प्रदाय में शरीर को अत्यधिक महत्व दिया गया है, क्योंकि शरीर के माध्यम से ही योगी ध्यान एवं चिन्तन के द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड को अपने शरीर में अनुभव कर, उससे स्वयं का एकाकार कर सकता है। अतः पिण्ड (शरीर) एवं ब्रह्माण्ड की समरसता ही नाथ सम्प्रदाय का मूलभूत सिद्धान्त है। नाथ पंथी इस समरसता की सिद्धि के लिए गुरू की कृपा को अत्यन्त आवश्यक मानते है।

नाथ सम्प्रदाय में योग का तात्पर्य प्राण–अपान, रज एवं वीर्य, सूर्य एवं चन्द्र तथा जीवात्मा एंव परमात्मा (शिव–शक्ति) के संयोग को योग कहा गया है। चन्द्र एवं सूर्य के संयोग का तात्पर्य अपान एवं प्राण का संयोग रूप हठयोग है। हठयोग की साधना का मुख्य लक्ष्य शक्ति रूप कुण्डलिनी को जागृत कर षट्चक्र भेदन द्वारा सहस्रार चक्र में शिव के साथ योगी सामरस्थ स्थापित कर परमपद कैवल्य की प्राप्ति करता है।

14.5. सिद्धयोगी गोरक्षनाथ–

गोरक्षनाथ योग के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ योगी हुये। गोरक्षनाथ गुरू आज्ञा से 12 वर्ष तक केवल वायु का सेवन करते हुये तप करते रहे,जिससे उन्हें विस्मयकारी योग शक्तियाँ प्राप्त हुई। इन्होने योग शक्तियों का प्रदर्शन इसलिये नहीं किया कि वे अपना स्थान अन्य योगियों से उच्च रखना चाहते थे वरन् इसलिए किया कि लोग योग में अपार क्षमता है यह जानें, इसलिए शक्ति प्रदर्शन करते थे। इनकी विस्मयकारी शक्तियों को बताती एक कथा प्रचलित है कि जब मत्स्येन्द्रनाथ ने हनुमान के आदेशानुसार एक नारी विशेष की सन्तानोत्पति के लिये अपनी परकाया–प्रवेश की सिद्धि द्वारा एक राजा के मृत शरीर में प्रवेश किया, तब गोरक्षनाथ ने अपनी काम रूप नामक योग–शक्ति का प्रयोग कर एक नारी का रूप ग्रहण कर लिया। एक अन्य अवसर पर उन्होंने मिट्टी का एक खिलौना बनाया और उसमें प्राण फूंक कर गाँव के बच्चों को खेलने के लिये दे दिया। एक बार उन्होंने एक पूरे

पर्वत को सोने का बनाकर उसे पुनःसामान्य कर दिया। एक अन्य कथा के अनुसार एक बार उन्होंने एक शिलाखण्ड पर मूत्र विसर्जन किया और इसके परिणाम स्वरूप वह शिलाखण्ड स्वर्ण की बन गई। अन्यत्र मिली घटना के आधार पर, एक बार कुंभ मेले में गोदावरी तट पर इन्होंने वहाँ मेले में एकत्र लोगों को उनका इच्छित भोजन कराकर सन्तुष्ट किया व स्वयं भी सन्तोषपूर्वक ईश्वर गुणगान किया। इसी मेले में एक अवसर पर उन्होंने अपनी अणिमा सिद्धि से मशक का रूप धारण कर लिया व सभी राहगीरों को जल से तृप्त किया।

एक अन्य कथा के अनुसार गुरू गोरक्षनाथ ने स्वयम् को योग शक्ति के द्वारा जलाकर भस्मीभूत कर लिया व पुनः अपने पूर्व रूप में प्रगट हो गये। गुरू गोरखनाथ आकाश गमन तथा भ्रमण में भी समर्थ थे ऐसा उल्लेख मिलता है। इनके तिरोधान का कहीं उल्लेख नहीं है बल्कि नाथ सम्प्रदाय के अनुसार ये अमर हैं।

14.6 गोरक्षनाथ कृत ग्रन्थ–

योगी गोरक्षनाथ के द्वारा लिखे गये ग्रन्थों के विषय में ठीक–ठीक ज्ञान नहीं मिल पाया है। इनके बहुत से ग्रन्थों का परिचय आज सुलभ है परन्तु इनके द्वारा कुल कितने योग एवं तंत्र ग्रन्थ लिख गये यह कहना कठिन है।

हठयोग, गोरक्षशतक, ज्ञानामृत, गोरक्षकल्प, गोरक्षसहस्रनाम इनके सर्वसुलभ ग्रन्थ हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में चतुरशीत्यासन, योग चिन्तामणि, योग महिमा, योग मार्तण्ड, योग सिद्धान्त पद्धति, विवेकमार्तण्ड और सिद्ध–सिद्धान्त पद्धति आदि संस्कृत ग्रन्थ और मिले हैं। सभा ने योगी गोरक्षनाथ के ही लिखे हिन्दी के 37 ग्रन्थ खोजें हैं जिनमें मुख्य ग्रन्थ अधोलिखित हैं।

1. गोरखबोध
2. दत्त–गोरखसंवाद
3. गोरखनाथाजीरा पद
4. गोरखनाथनी के स्फुट ग्रन्थ
5. ज्ञान सिद्धान्त योग
6. ज्ञानतिलक
7. योगेश्वरीसाखी
8. नरवैबोध
9. विराट पुराण
10. गोरखसार आदि।

14.7. योगी गोरक्षनाथ द्वारा दी गई योग साधनाऐं–

योगी गोरक्षनाथ ने मुख्य रूप से हठयोग की साधना का ही प्रचार–प्रसार किया। हठयोग राजयोग को प्राप्त करने का साधन भी है और दोनों एक दूसरे के अभिन्न अंग भी हैं। गोरक्षनाथ ने हठयोग से मन के संयम की बात कही है व मन संयम को मोक्ष का द्वार बताया है (गोरक्ष संहिता 1/4)।

गोरक्षनाथ ने अपनी साधनाओं में 'प्राण' को मुख्य स्थान दिया है। योग ग्रन्थों के अनुसार प्राण साधना द्वारा मन का नियंत्रण सम्भव है, ऐसा वर्णन मिलता है। हमारे शरीर में असंख्य नाडियां जाल के समान फैली हुई हैं एवं इन नाडियों का उद्भव स्थल 'मूलकन्द' माना गया है। योगी गोरक्षनाथ ने इस मूलकन्द से 72000 (बहत्तर हजार) नाड़ियों की उत्पत्ति मानी है।

ऊर्ध्व मेढ्रादधोनाभेः कन्दयोनिः खगाण्डवत्।

तत्रनाड़िया समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः।।

(गोरक्षशतक 25)

योगी गोरक्षनाथ की साधनाओं में कुण्डलिनी साधना का प्रमुख स्थान है एवं नाड़ियों में प्रमुख नाड़ी सुषुम्ना से ही कुण्डलिनी एवं प्राण ऊर्ध्वमुख होकर सहस्रार में जाकर विश्रान्ति को प्राप्त होते हैं। हठयोग में 'हं' प्राण का वाचक है और 'ठं' अपान का वाचक है। इन दोनों को मिलाकर सम करना ही राजयोग की सिद्धि है।

गुरू गोरक्षनाथ के अनुसार, 'व्यष्टिपिण्ड' ब्रह्माण्ड का ही छोटा रूप है। मनुष्य के किस अंग में ब्रह्माण्ड का कौन सा अंश है इसका वर्णन गोरक्षनाथ कृत 'सिद्धसिद्धान्त' संग्रह में प्राप्त होता है। योगी ध्यान एवं चिन्तन के गहन अभ्यास से समस्त ब्रह्माण्ड को अपने भीतर अनुभव कर उससे स्वयं को मिलाकर, एकाकार कर सकता है। ब्रह्माण्ड में व्याप्त समस्त रहस्यों के उत्तर उसे इससे प्राप्त हो सकतें हैं।

गुरू गोरक्षनाथ ने क्रमिक विकास से मानव मन के गहन तलों के लिये प्राणायाम की साधना व योग के छः अंगो की साधना का वर्णन किया है एवं इसे षडंगयोग कहा जाता है

आसनं प्राणं संरोधःप्रत्याहाराश्च धारणा।

ध्यानं समाधिरेतानि योगांगानि वदन्ति षट्।। *(गोरक्ष संहिता 1/6)*

पिण्ड में अखण्ड ब्रहमाण्ड की सहज अभिव्यक्ति के माध्यम से 'परमात्म–तत्व' का पूर्ण ज्ञान व अनुभव सम्भव है। पिण्ड एवं ब्रहमाण्ड की समरसता ही नाथ योगी सम्प्रदाय के साधना का मुख्य लक्ष्य है। इसी उपलब्धि हेतु गोरक्षनाथ जी कहते हैं–

परपिण्डादिस्वपिण्डान्तं ज्ञात्वा परमदे समरसं कुर्यात्।

(सिद्धसिद्धान्त पद्यति 5/2)

गुरू गोरक्षनाथ इस'समरस्य' में गुरू की कृपा को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। गुरू के द्वारा आसन प्राणायाम, षट्चक्र भेदन एवं षट्कर्म आदि का विधिपूर्वक अभ्यास कर योगी समरस को प्राप्त करता है।

कुण्डलिनी साधना के सम्बन्ध में योगी गोरक्षनाथ ने अनेक स्थानों पर बहुत ही गूढ़ ज्ञान को बताया है। वस्तुतः हठयोग की साधना का मुख्य लक्ष्य गुरू गोरक्षनाथ ने कुण्डलिनी जागरण ही बताया है। गोरक्षशतक में कहा गया है–

कन्दोर्ध्व कुण्डली शक्तिः सुप्ता मोक्षाय योगिनाम्।

बन्धनाय च मूढ़ानां यस्ता वेत्ति से योगवित्।

योगी गोरक्षनाथ ने मूल बन्ध, उड्डीयान बन्ध एवं जालन्धर बन्ध के अभ्यास से प्राणापान के संयोग द्वारा नाभि स्थित अग्नि के प्रदीप्त होने पर कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने की साधना कही है। जाग्रत होकर कुण्डलिनी मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र को भेदती हुई सहस्रार में परमशिव से एकाकार हो जाती है।

गोरक्षनाथ जी ने सर्वप्रथम शरीर की शुद्धि एवं फिर प्राण व मन की शुद्धि के द्वारा समरस होने की कला बताकर अपनी साधनाओं को सहज एवं सरल परन्तु बिना अभ्यास व गुरू के दुरूह बताया है।

14.8 गोरक्ष संहिता – एक परिचय

अब आप योगी गोरक्षनाथ के महान ज्ञानी होने का परिचय देती हुई महान कृति गोरक्ष संहिता का सूक्ष्म परिचय प्राप्त करेंगे।

महायोगी गोरक्षनाथ कृत गोरक्ष संहिता उनके परमज्ञान का परिचय स्वयं ही करा देती है। वे योग विद्या के परम जानकार एवं आचार्य थे। मत्स्येन्द्रनाथ के पश्चात् उनके शिष्य गोरक्षनाथ ने नाथ सम्प्रदाय के ज्ञान को प्रचारित प्रसारित किया। योगी गोरक्षनाथ ने ज्ञान के अगाध भण्डार में से अति महत्वपूर्ण ज्ञान को संग्रहित कर अपने संग्रह गोरक्ष संहिता में प्रकट किया।

आगे आप–

- गोरक्ष संहिता के श्लोकों की संख्या के विषय में जानेंगे।
- जानेंगे कि प्रस्तुत ग्रन्थ कितने भागों में बाँटा है एवं मूल विषय कितना गूढ़ है।

गोरक्ष संहिता दो सौ श्लोकों का बढ़ा ही सुन्दर और गूढ़ ज्ञान से भरा हुआ संग्रह है। यह 2 शतकों में बँटा हुआ है। एवं प्रत्येक शतक में श्लोकों की संख्या हर शतक के साथ आप जान सकेंगे। आगे आप विस्तारपूर्वक प्रत्येक शतक का परिचय प्राप्त करेंगे।

प्रथम शतक–

इस शतक में सौ श्लोक हैं। संहिता का प्रथम श्लोक गुरू वन्दना से प्रारम्भ होता है। क्योंकि सभी विद्याएँ गुरू के मुख से ही प्राप्त की जाती है। परब्रह्म तक पहुँचने का मार्ग गुरू से ही होता हुआ जाता है।

प्रथम शतक में योगी गोरक्षनाथ ने मन का संयम योग द्वारा ही सम्भव है ऐसा कहा है। योग के छः अंगों का वर्णन करते हुये वे कहते हैं –

आसनं प्राण संरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।

ध्यानं समाधिरेतानि योगांगानि वदन्ति षट्।।6।।

आसनों में यहां सिद्धासन और पद्मासन का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् शरीर के 19 अवयवों का वर्णन किया गया है। तत्वों के वर्णन के पश्चात् शरीर के मुख्य चक्र छः हैं ऐसा कहकर उनका वर्णन किया गया है। दस नाड़ी, दस वायु का ज्ञान कराया गया है। प्राणायाम का वर्णन 1/37, 38 में किया गया है। मुद्राओं का वर्णन उनके फलों सहित किया गया है। त्रिबन्धों का वर्णन भी इसी शतक में किया गया है।

द्वितीय शतक–

द्वितीय शतक में प्राणायाम का विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है। समाधि का स्वरूप व योगसिद्धि के चिह्नों का वर्णन इसी शतक में विस्तार पूर्वक किया गया है।

प्रत्याहार वर्णन, धारणा वर्णन, चक्र वर्णन, ध्यान योग वर्णन एवं ध्यान और समाधि का भेद इसी शतक में किया गया है।

इस प्रकार आपने गोरक्ष संहिता में वर्णित योग के विभिन्न अंगों के विषय में जाना। आपने जाना कि गोरक्ष संहिता में आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि का विस्तार पूर्वक वर्णन श्लोकों में किया गया है। कुण्डलिनी शक्ति, चक्र वर्णन, मुद्रा वर्णन तथा बन्धों का वर्णन भी विस्तार पूर्वक किया गया है।

अभ्यास प्रश्न

सही/गलत

1. हठयोग को साधारण जन समुदाय तक पहुंचाने का कार्य गोरक्षनाथ जी ने किया।
2. योगी गोरक्षनाथ हठ सम्प्रदाय के योगी हुये।
3. नौ नाथों में गोरक्षनाथ सबसे प्रसिद्ध हुये।
4. आदिनाथ हठयोग के प्रथम गुरू हुये।
5. 15 वीं से 16 वीं सदी के बीच इनका कार्यकाल बताया जाता है।
6. गोदावरी तट पर स्थित चन्द्रगिरी ग्राम में इनका जन्म होना माना जाता है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति –

1. गोरक्षनाथ का जन्मकाल .... से .... शताब्दी के आस–पास माना जाता है।
2. नाथ सम्प्रदाय की कर्मस्थली .... मानी जाती है।
3. नाथ सम्प्रदाय से पूर्व .... सम्प्रदाय का बोलबाला चरम पर था।
4. षडंग योग के अंतर्गत .... चरण हैं।
5. गोरक्षनाथ कृत ग्रंथ गोरक्ष संहिता में .... शतक हैं।
6. गोरक्ष संहिता में .... श्लोक संख्या हैं।

14.9 सारांश

गुरू गोरक्षनाथ के सम्बन्ध में अभी तक आपने जो भी अध्ययन प्रस्तुत इकाई में किया है उससे स्पष्ट है कि इनके जन्म के सम्बन्ध में 10वीं से 12वीं सदी के बीच का काल माना जा सकता है। इनके सम्बन्ध में अनेक दन्त कथाएं यत्र–तत्र मिल जाती हैं। ये बड़े सिद्ध एवं योगी पुरूष थे जो कि इनके द्वारा रचित ग्रन्थों से स्पष्ट हो जाता है। समाज को एक सूत्र में योग की शिक्षा देने का श्रेय इन्हे जाता है। व्याप्त भ्रान्तियों एवं आडम्बरों का इन्होने खण्डन किया व हठयोग जैसा अप्रतिम योग साधन दिया।

14.10 शब्दावली–

हठयोग– योग की एक विधा जिसमें प्राण के माध्यम से शरीर व मन को साधा जाता है।

हठप्रदीपिका– हठयोग का एक ग्रन्थ

सहस्रार– योग ग्रन्थों में सहस्रार को परम शिव का निवास स्थान माना गया है यह चक्रों में सर्वोच्च चक्र माना जाता है।

कुण्डलिनी– योग ग्रन्थों के अनुसार मूलाधार में शिव लिंगम् पर $3^{1}/_{2}$ फेरे लपेटे हुये सुप्त ऊर्जा है।

मत्स्येन्द्रनाथ– प्राचीन योगी व गोरखनाथ के गुरू

तंत्र– आदि शास्त्र, जिसमें योग की सभी शाखाओं का वर्णन मिलता है, मोक्ष हेतु अनेक साधनाओं का वर्णन तंत्र ग्रन्थों में मिलता है।

भगवान बुद्ध– बौद्ध धर्म के संस्थापक एवं महान योगी

योगारूढ़– योग के ज्ञाता

परकाया प्रवेश– दूसरे के मृत शरीर/जीवित शरीर में आत्मा के जाने की क्षमता

समरस–आत्म तत्व व परमात्म तत्व की एकता, समाधि, लय योग

चक्र– गोल घेरा, योग ग्रन्थों में शरीर में षट् चक्रों की बात कही गई है एवं इन्हें ऊर्जा केन्द्र कहा गया है।

14.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

सही/गलत

1. सही
2. गलत
3. सही
4. सही
5. गलत
6. सही

रिक्त स्थानों की पूर्ति –

1. 11 वीं से 12 वीं
2. गोरखपुर
3. बौद्ध
4. आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि
5. दो
6. दो सौ

14.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम–राजकुमारी पाण्डेय, राधा पब्लिकेशनस् नई दिल्ली

2. योग विज्ञान– डॉ. कामाख्या कुमार

3. हिन्दू धर्म कोश– राजबल्ली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य

4. सन्त चरित्र– स्वामी सत्यानंद सरस्वती, मुंगेर, बिहार

14.13 निबंधात्मक प्रश्न–

1. योगी गोरक्ष नाथ द्वारा दी गई साधना का वर्णन कीजिये
2. गोरक्षनाथ कृत ग्रन्थों का वर्णन कीजिये
3. गोरक्षनाथ के जीवन चरित्र का वर्णन कीजिये
4. गोरक्ष संहिता को सूक्ष्म परिचय दीजिए।

इकाई 15 आदि शंकराचार्य

इकाई की संरचना

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 आदि शंकराचार्य
15.3.1 जन्म कथा
15.3.2 सन्यास
15.3.3 गुरू मिलन
15.3.4 वचन पालन
15.3.5 महायात्रा
15.4 आचार्य शंकर की जगत् गुरू यात्रा
15.4.1 मठों की स्थापना एवं दशनामी सन्यास परम्परा
15.4.2 आचार्य की रचनाऐं एवं भाष्य
15.5 आचार्य शंकर की अद्वैत वेदान्त शिक्षा
15.5.1 जगत् विचार
15.5.2 माया व अविद्या सम्बन्धी विचार
15.5.3 आत्म विचार
15.5.4 जीव विचार
15.5.5 बन्धन और मोक्ष विचार
15.5.6 नैतिकता एवं धर्म का स्थान
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.10 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना–

इससे पहले की इकाई में आपने योगी गोरक्षनाथ के विषय में पढ़ा कि योगी गोरक्षनाथ ने नाथ सम्प्रदाय की शिक्षाओं को प्रचारित प्रसारित किया एवं हठयोग के ज्ञान को प्रकाशित किया।वैदिक धर्म को पुनः प्रकाश में लाने एवं साधारण जन मानस तक पहुँचाने का श्रेय आदि शंकराचार्य को जाता है। इसी बात की पुष्टि करती हुई यह इकाई प्रस्तुत है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप आदि शंकराचार्य के जन्म सम्बन्धी बातों एवं उनके जगत्गुरू बनने की यात्रा के सन्दर्भ में, उनके अद्वैत वेदान्त विचारों के सम्बन्ध में प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

15.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई में आप

- आचार्य शंकर के जन्म व बाल्यकाल के विषय में जान सकेगें।
- शंकराचार्य के सन्यास के सम्बन्ध में एवं उनके गुरू के सम्बन्ध में जान सकेगें।
- आचार्य शंकर से जगद्गगुरू शंकराचार्य की यात्रा के विषय में जान सकेंगे।
- शंकराचार्य द्वारा मठों की स्थापना किस उदद्श्य से एवं कहां हुई यह जान सकेंगे।
- गुरू शंकराचार्य की रचनाओं के विषय में जान सकेंगे।
- जगद्गगुरू शंकराचार्य द्वारा अद्वैत–वेदान्त के विचारों को जान सकेंगे।

15.3 आदि शंकराचार्य

श्रुति स्मृति पुराणनामालयं करूणालयं।

नमामि भगवत्पादशकरं लोक शंकरम्।।

यदि भारत आज भी वैदिक धर्म के पथ पर चल रहा है तो इसका पूरा श्रेय शंकराचार्य को ही है। शंकराचार्य के पूर्व भारत की स्थिति अव्यवस्था से परिपूर्ण थी। धर्म एवं दर्शन की अलग–अलग भ्रमित करने वाली व्याख्या चरम पर थी। चार्वाक, कापालिक, शाक्त, सॉख्य, बौद्ध, एवं कई छोटे–बड़े धर्म, सम्प्रदायों एवं दर्शनों का प्रादुर्भाव इस काल में हो चुका था व सभी विचारधाराऐं एक दूसरे से उलझ रही थीं। लोक समूह में पूरी तरह उलझन व्याप्त थी कि कौन सा पथ उन्हें धर्म से जोड़ेगा व कौन सा नहीं। एक गणना के अनुसार तत्कालीन समय में लगभग बहत्तर धर्म पथ समाज में उदीयमान थे। जिस काल में इतनी विचारधाराऐं हों वहाँ सहज ही उलझन की स्थिति उत्पन्न होगी।

आचार्य शंकर के जन्म से पूर्व समाज की यह स्थिति थी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब–जब समाज में धार्मिक पतन की स्थिति आती है तो उद्धारकर्ता शीघ्र ही जन्म लेते हैं। उपरोक्त स्थिति को पढ़कर अवश्य ही पाठकों के मन में प्रश्न उठते हैं कि–

- अव्यवस्था की इस स्थिति से आचार्य शंकर ने कैसे भारतवर्ष को उबारा।
- उन्होंने ऐसा कौन सा नया धर्म या विचार धारा दी जो पूर्व में नहीं थी।
- उनका स्वयम् का कैसा व्यक्तिव रहा होगा जो समाज के लिये अनुकरणीय बन गया।

उपरोक्त सभी प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत इकाई में आप जान सकेंगे। आप जानेंगे कि आचार्य शंकर ने कोई नई विचारधारा नहीं दी वरन् आदि ग्रन्थों की सत्यता का प्रकाश जो कि कई मत मतान्तरों के बादलों में छुप गया था को उदघाटित किया व पुनः वैदिक सभ्यता, जो सभी सभ्यताओं का आधार है, को जन–जन तक फैलाया।

भारतीय दर्शन में आचार्य शंकर का जो विशिष्ट स्थान है उससे सभी परिचित हैं। बिना किसी विचार के इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती है कि यदि शंकर जीवन की यर्थाथता को नहीं समझते तो भारत का तत्कालीन समाज अंधेरे में भटकता रहता। उनके द्वारा दिया गया ज्ञान का आलोक आज भी प्रत्येक निष्कपट जिज्ञासु के ह्रदय में प्रकाशित हो रहा है।

15.3.1 जन्म कथा–

शंकराचार्य का जन्म आलवाइन से छः मील दूर पूर्व में 'कालडि' नामक ग्राम में ई0 सन् 788 में हुआ। ये एक गरीब नम्बूदरी ब्राह्मण परिवार में जन्में थे। इनके पितामह शिव मंदिर के पुजारी थे। इनके पिता का नाम शिवगुरू था व माता का नाम आर्यम्बा था। बहुत साल तक शिवगुरू के सन्तान न होने पर पति–पत्नि ने भगवान शिव की आराधना की एवं आर्त प्रार्थना के फलस्वरूप बसन्त ऋतु के आर्द्रा नक्षत्र में शुभ मुहूर्त में इन्हें पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। भगवान शंकर के आशीर्वाद के पश्चात् मिले पुत्र का नाम अपने आराध्य के ही नाम पर इस का नाम शंकर रखा गया। बाल्यकाल से ही शंकर शुद्ध चित्त एवं दृढ़ निश्चयी बालक थे। यह बात हम इस कथा से जान सकते हैं– शंकर 5 वर्ष के रहे होंगे जब उनके पिता ने उन्हें 'देवी राज राजेश्वरी' के सम्मुख दूध का पात्र अर्पित करने का आदेश दिया एवं उसके पश्चात् प्रसाद रूप में माता को व स्वयम् लेने को कहा। पिता के जाने के बाद बालक शंकर ने माता राजराजेश्वरी को दूध का कटोरा अर्पित किया व दूध गृहण करने की प्रार्थना करने लगे। बालक ने जब आँखें खोली तो देखा कि कटोरा दूध से पूर्व की भांति भरा है। बालक को बड़ी निराशा हुई और सोचने लगा कि माँ राजराजेश्वरी यदि गृहण नहीं करेंगीं तो पिता द्वारा मुझे दिया गया कार्य अधूरा रह जायेगा एवं वह किस प्रकार प्रसाद बांट पाऐगा। बालक पूरे मनोयोग से माँ राजराजेश्वरी से दूध गृहण करने का आग्रह करने लगा। बहुत प्रार्थना करने के बाद भी जब दूध का कटोरा पहले जैसा ही भरा हुआ देखा तो बालक का कोमल मन बड़ा आहत हुआ, उसने प्रण किया कि यदि माँ राजराजेश्वरी दूध

गृहण नही करेंगी तो वह जीवित नहीं रहेगा। बालक माँ से प्रार्थना करते–करते आँखें बन्द किये बैठा रहा। बालक की यह करूण प्रार्थना व दृढ़ निश्चय देखकर माँ राजराजेश्वरी प्रकट हुई और उन्होंने पूरा दूध पी लिया। बालक ने जब देखा कि माँ ने दूध पी लिया है तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रसाद बाँटने के लिये जैसे ही कटोरा उठाया तो वह पूरा कटोरा खाली देखकर हतप्रभ रह गया। उसने माँ राजराजेश्वरी से प्रार्थना की, कि उसके पिता उन्हें दूध अर्पित करने के बाद प्रसाद वितरित करते हैं लेकिन अब तो इसमें बाँटने के लिये कुछ बचा ही नहीं है, 'आप इसे थोड़ा दूध से पुनः भर दें'। भगवती राजराजेश्वरी ने अपना दूध ही उस कटोरे में भर दिया व बालक के शुद्ध चित्त व दृढ़ निश्चय की प्रशंसा करते हुये अर्न्तधान हो गईं।

यह जगद्जननी माँ राजराजेश्वरी का ही आर्शीवाद रूपी दूध का ही बल था जो बालक 16 वर्ष की उम्र में ही सभी शास्त्रों के ज्ञाता हो गये। उन्होंने इसी आयु में गीता, उपनिषद तथा ब्रह्मसूत्र के भाष्यों की रचना कर दी।

जब बालक शंकर 7 वर्ष के थे तो उनके पिता का देहान्त हो गया, माता आर्यम्बा ने बड़ी कुशलता से पुत्र का लालन–पालन किया। उन्होंने शंकर के शास्त्र अध्ययन हेतु विशेष व्यवस्था की। इसी अवस्था में ही उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ।

15.3.2 सन्यास–

बाल्यकाल से ही शंकर का मन अन्तर्मुखी था एवं सन्यास के लिये तीव्र जिज्ञासा उन्हे थी। एक दिन शंकर अपनी माता के साथ नदी में स्नान करने गये, जैसे ही शंकर नदी में थोड़ा भीतर गये तो उनका पैर मगरमच्छ ने पकड़ लिया। माता यह दृश्य देखकर घबरा गईं व मदद के लिये पुकारने लगीं। कोई सहायता के लिये नहीं आया। उचित अवसर जानकर शंकर ने माता से सन्यासी के रूप में मरने की इच्छा व्यक्त की और कहा कि, इस काल में यदि वे सन्यास की अनुमति दे देंगी तो वह जीवन रहते तो सन्यासी न बन सका कम से कम मरते हुये सन्यासी मरना चाहता है। माता ने तुरन्त आज्ञा दे दी। उसी समय शंकर ने 'आतुर–सन्यास' ग्रहण कर लिया। जैसे ही बालक शंकर ने सन्यास लिया मगरमच्छ स्वतरू ही पानी में चला गया व बालक शंकर सकुशल लौट आये।

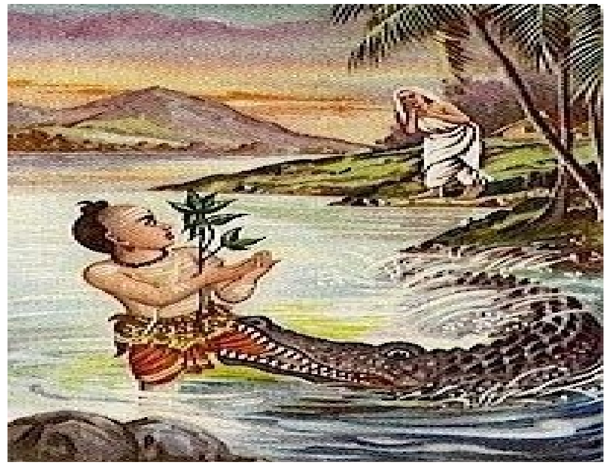

आतुर–सन्यास

बालक शंकर इस घटना के पूर्व ही माता से सन्यास हेतु अनुमति लेना चाहते थे परन्तु माता ने ममता वश उन्हें इसकी अनुमति नहीं दी। माता ने बालक शंकर से कहा कि उसके चले जाने पर वह सर्वथा अकेली रह जाऐगी और अन्तिम दिनों में उनकी सेवा करने वाला भी कोई नहीं रहेगा। मृत्यु उपरान्त उनका दाह–संस्कार करने वाला कोई न रहेगा। बालक शंकर ने माँ को आश्वासन दिया कि वह उनके अन्तिम समय में उनके साथ रहेगा व उनका अन्तिम–संस्कार करेगा। परन्तु माँ को वे पूरी तरह सन्यास लेने के लिये राजी न कर सके। शायद इसी कारण बाद में उपरोक्त वर्णित घटना उनके आतुर–सन्यास का कारण बनी।

आतुर–सन्यास प्राप्त करने के बाद शंकर अपनी माता को अपने सम्बन्धियों के पास छोड़कर विधिवत सन्यास के लिये घर–सम्पत्ति छोड़कर चले गये व गुरू को खोजने लगे।

15.3.3 गुरू मिलन–

तरूण शंकर 'केरल' को छोड़कर गुरू की खोज में उत्तर भारत की ओर निकल पड़े। नर्मदा के तट पर शंकर एक सन्यासी से मिले। सन्यासी को साष्टांग प्रणाम करने के बाद शंकर ने उनसे सन्यास दीक्षा के लिये कहा। सन्यासी ने उनसे प्रश्न किया– तुम कौन हो? शंकर ने भक्ति पूर्वक उत्तर दिया न मैं आकाश हूँ, न अग्नि हूँ, न जल हूँ, न पृथ्वी। गुरू उनके ये वचन सुनकर प्रसन्न हुये व उन्हें सन्यास देने के लिये राजी हो गये। गुरू के पूछने पर उन्होंने अपने आतुर–सन्यास की कथा कह सुनाई व गुरू से विधिवत सन्यास के लिये प्रार्थना की। ये सन्यासी स्वामी गोविन्दभगवद्पाद थे एवं इनके गुरू गौणपादाचार्य अद्वैत वेदान्त के महान भाष्यकार थे। स्वामी गोविन्द ने शंकर को विधिवत् सन्यास दीक्षा दी एवं उन्हे वेद, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद, गीता आदि का उन्नत ज्ञान दिया। अपने गुरू गोविन्दपाद

से उन्होंने शीघ्र ही आध्यात्मिक विद्या ग्रहण कर ली और गुरू आज्ञा से ये काशी चले गये। काशी में ही उन्होंने ब्रह्मसूत्र, गीता व उपनिषदों पर भाष्य लिखे।

15.3.4 वचन पालन–

सन्यासी शंकर ने माता को वचन दिया था कि वे उनके अन्तिम समय में उनके साथ रहेंगे। योगबल से जब उन्हें अपनी माता के अन्तिम घड़ी का पता चला तो वे बिना किसी को सूचना दिये कालड़ी पहुंच गये। रोग–शय्या पर पड़ी हुई माता के चरण स्पर्श कर उन्होंने भगवान हरि से प्रार्थना की और कथा है कि उनकी माता को स्वर्ग लोक ले जाने के लिये स्वर्ग दूत आये व उनकी आत्मा को ससम्मान स्वर्ग ले गये।

अपनी माता के दाह–संस्कार के समय शंकराचार्य को कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। नम्बूदरी ब्राह्मण उनके इस कार्य की आलोचना करने लगे व पूरे गांव को शंकराचार्य की मदद न करने को कहने लगे। इससे शंकराचार्य को बड़ी निराशा हुई और दुःखी मन से उन्होंने अकेले ही माता के शरीर को अग्नि को समर्पित करने का निर्णय लिया। परन्तु इसमें भी समस्या आ खड़ी हुई, वे माता का पंचभौतिक शरीर श्मशान भूमि तक ले जाने में अकेले समर्थ न हो सके। ग्राम वासियों ने उन्हें जलाने के लिए अग्नि भी नहीं दी। फलस्वरूप उनकी समस्या और बढ़ गई। यह सब देखकर उन्होंने माता के मृत शरीर को घर के पीछे तक खींचकर ले जाने का कार्य सम्पन्न किया और वहीं योगबल से माता की मृत देह को अग्नि को समर्पित कर दिया। आचार्य शंकर निष्ठुर ग्राम वासियों और नम्बूदरी ब्राह्मणों को सबक सिखाना चाहते थे। उन्होंने अन्तिम संस्कार सम्बन्धी स्थानीय लोकाचार को इस प्रथा में परिणित कर दिया जिसके अनुसार नम्बूदरी ब्राह्मणों के परिवार के किसी भी व्यक्ति के दाह संस्कार के लिये घर में एक पृथक स्थान की व्यवस्था करना अनिवार्य हो गया। वे दाह–संस्कार के लिये श्मशान भूमि नहीं जा पाऐंगें, बल्कि घर में ही यह क्रिया सम्पन्न की जायेगी। आज भी यह नियम देखने में आता है। इसके पश्चात् शंकराचार्य श्रृंगेरी आये एवं यहां से सम्पूर्ण भारत को उन्होंने अद्वैत वेदान्त का उपदेश दिया।

15.3.5 महायात्रा–

अपनी दिग्विजय यात्राओं के दौरान आचार्य शंकर ने अनेक मतों के विद्वानों को अपनी तीव्र मेधा एवं प्रज्ञा से अद्वैत वेदान्त को मानने पर विवश किया। उन्हीं में एक अभिनव गुप्त थे जो कि शाक्त भाष्यकार रहे एवं प्रकाण्ड विद्वान थे। 'गोहाटी' में अभिनव गुप्त ने अपने अभिचार कौशल से शंकराचार्य पर मारण आदि तान्त्रिक प्रयोग किये। इससे शंकराचार्य अर्श रोग से पीड़ित हो गये। परन्तु पद्मपाद, जो कि आचार्य शंकर के श्रेष्ठ शिष्यों में एक थे, इस विद्या का उन्मूलन करना जानते थे। उन्होंने अपने गुरू को इस रोग से मुक्त कर दिया। इसके पश्चात् शंकराचार्य हिमालय यात्रा पर चले गये। हिमालय क्षेत्र में उन्होंने जोशी मठ तथा बदरी में एक मंदिर की स्थापना की। यहाँ से वे उच्च पर्वतीय मालाओं की

ओर चले गये और इसी क्रम में वे केदारनाथ पहुंच गये। 32 वर्षीय जगदगुरू शंकराचार्य यहीं पर 820 ई0 में ब्रह्म में विलीन हो गये।

15.4 आचार्य शंकर की जगदगुरू यात्रा–

अभी तक आपने आचार्य शंकर का जन्म, बालपन एवं सन्यासी तक का जीवन वृतान्त जाना, अब शंकराचार्य के दिग्विजय अभियान के विषय में जानेंगे। शंकराचार्य से जगदगुरू शंकराचार्य बनने की यात्रा के विषय में जानेंगे।

आचार्य शंकर ने अपनी आध्यात्मिक यात्रा के फलस्वरूप ब्रह्म का स्वरूप समझा एवं उस स्वरूप का दर्शन सारे विश्व को कराने के उददेश्य से, जो कि उनके गुरू का आदेश था, नगर–नगर भ्रमण पर निकल पड़े। वे विभिन्न मतावलम्बी सम्प्रदायों के शीर्ष गुरूओं से मिले। उनके साथ विभिन्न मतों पर उनका वाद–विवाद हुआ और आचार्य शंकर ने सभी को निर्विवाद रूप से वेदों की ओर लौटने पर विवश कर दिया। अपने भाष्यों के माध्यम से उन्होंने ऐसे अकाट्य मत रखे कि कोई उनका रास्ता न रोक सका। वे समस्त प्रख्यात ज्ञान केन्द्रों में गये जिनका प्रभुत्व उस समय सर्वाधिक था। उन्होंने वहां के पण्डितों व आचार्यों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी और उनके समक्ष अपने तर्क प्रस्तुत किये और अपनी सच्ची आस्था के बल पर उन्होंने सभी को उनके मतों को स्वीकार करने पर विवश कर दिया। उन्होंने वेदान्त सूत्र भाष्य के भाष्यकर्ता भट्ट भास्कर को अपने सटीक व श्रेष्ठ उद्धहरणों से पराजित किया। उन्होंने शास्त्रार्थ में 'खण्डन खण्ड खाद्य' के प्रणेता हर्ष, अभिनव गुप्त, मुरारी मिश्र, उदयाचार्य, धर्मगुप्त, कुमारिल भट्ट तथा प्रभाकर को पराजित किया। आचार्य शंकर ने कर्ममिमांसा के प्रकाण्ड विद्वान मण्डन मिश्र व उनकी विदुषी पत्नि, जो स्वयम् सरस्वती का अवतार मानी जाती हैं, को अपना शिष्यत्व ग्रहण करने पर विवश कर लिया। यह कथा कुछ इस प्रकार है– आचार्य शंकर अनेक विद्वानों को पराजित कर अपने मत का प्रचार करते हुऐ महिष्मती पहुंचे। मण्डन मिश्र महिष्मती की राज्य सभा के मुख्य पण्डित थे। मण्डन मिश्र के हृदय में कर्म मिमांसा के संस्कार होने के कारण वे सन्यास को तुच्छ व पलायनकारियों का मार्ग समझते थे।

एक दिन शंकर भ्रमण करते हुये उस स्थान पर पहुंचे जहां मण्डन मिश्र श्राद्ध–संस्कार कर रहे थे। मण्डन मिश्र ने जैसे ही शंकराचार्य को उस स्थान पर आते देखा तो वे क्रोध से भरकर उन्हें अशोभनीय बातें कहने लगे। उत्तर में शंकराचार्य ने भी उन्हें कठोर शब्द कहे। वाद–विवाद कठोर व अशोभनीय होते देख पास ही खड़े पण्डितों ने मण्डन मिश्र को रोका। इसके पश्चात् शंकराचार्य ने मण्डन मिश्र को धार्मिक वाद–विवाद की चुनौती दी जिसे मण्डन मिश्र ने स्वीकार कर लिया। वाद–विवाद का दिन निश्चित किया गया व निर्णायक के तौर पर मण्डन मिश्र की पत्नि 'उभय भारती' को स्वीकार किया गया। यह पहले ही निश्चित कर लिया गया कि यदि शंकराचार्य पराजित हुये तो वे वैवाहिक जीवन

व्यतीत करेंगें और यदि मण्डन मिश्र पराजित हुये तो वे सन्यास ग्रहण कर स्वयं अपनी पत्नि से प्रथम दान स्वीकार करेंगें।

मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ

यह शास्त्रार्थ सत्रह दिनों तक अबाध चलता रहा। सत्रवें दिन मण्डन मिश्र के गले में पड़ी हुई माला मुरझाने लगी जिसका अभिप्राय यह था कि वह पराजित हुआ है। उभय भारती ने यह वाद–विवाद नहीं सुना। वह यह कहकर अपने कार्य में व्यस्त हो गईं कि जिसके गले की माला पहले मुरझाने लगेगी वह पराजित माना जायेगा। मण्डन मिश्र की पराजय की खबर सुनकर उभय भारती ने शंकराचार्य को यह कहकर शास्त्रार्थ के लिये कहा कि अभी उन्होंने आधी ही विजय प्राप्त की है, मण्डन मिश्र की अर्द्धांगिनी होने के नाते उन्हें उससे भी शास्त्रार्थ करना पड़ेगा। आचार्य शंकर ने स्त्री से शास्त्रार्थ के लिये मना किया परन्तु उभय भारती ने अनेक उदाहरणों से पूर्व में महिला संतों, विदुषियों के पुरूष विद्वानों से हुये शास्त्रार्थ का हवाला देकर आचार्य शंकर को शास्त्रार्थ के लिये विवश कर दिया। उभय भारती एवं शंकराचार्य के बीच शास्त्रार्थ सत्रह दिनों तक चलता रहा। भारती विभिन्न शास्त्रों के उदाहरण देकर अपनी बात की पुष्टि करती रहीं परन्तु अन्ततः उन्हें इस बात का पूर्वाभास होने लगा कि आचार्य शंकर उनकी बातों को आसानी से काट सकते हैं।

अतः उभय भारती ने बाल ब्रह्मचारी सन्यासी पुरूष को काम–शास्त्र के माध्यम से वाद–विवाद में हराने का निश्चय किया।

जब भारती विभिन्न उदाहरणों से दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी विचारों को रखने लगीं तो शंकराचार्य निरूत्तर होने लगे। शंकराचार्य ने काम सम्बन्धी वाद–विवाद के लिये एक माह का अवसर मांगा जिसे भारती ने स्वीकार कर लिया। शंकराचार्य महिष्मती से काशी आ गये व गहन ध्यान में उन्होंने राजा अमरूक की मृत्यु होते देखी। अपनी योग शक्ति से आचार्य शंकर ने अपने सूक्ष्म शरीर से राजा के मृत शरीर में प्रवेश कर लिया। शंकराचार्य के स्थूल शरीर की रक्षा का भार उनके शिष्यों पर था। शिष्यों ने दिन–रात गुरू के शरीर की मन्त्रोच्चारण के साथ रक्षा की व शरीर को ज्यों का त्यूं रखने के लिये घोर साधना की। राजा के शरीर का दाह संस्कार होने वाला था उसी समय शंकराचार्य का सूक्ष्म शरीर मृत शरीर के भीतर प्रविष्ट हुआ। राजा को पुनः जीवित देखकर प्रजा में प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी। शंकर गृहस्थ आश्रम का सुख भोगने लगे। शीघ्र ही मंत्रियों व रानियों को इस बात का आभास होने लगा कि राजा के शरीर में किसी श्रेष्ठ पुरूष का वास है। अतः उन्होंने दूतों को किसी निर्जन वन या किसी गुहा में गुप्त रूप से संरक्षित किसी मानव शरीर की खोज तथा उसकी प्राप्ति के पश्चात् उसे जलाने का निर्देश देकर भेजा। मंत्रियों व रानियों ने ऐसा राजा को दीर्घकाल तक जीवित रखने के उददेश्य से किया। समय बीतता गया, व माया के शक्तिशाली पंजों ने आचार्य शंकर की आत्मा के ज्ञान को धूमिल कर दिया। शंकराचार्य के शिष्यों को उनके वापस आने की प्रतीक्षा थी। समय अधिक हो जाने पर उन्हें चिन्ता होने लगी। शिष्यों की एक टुकड़ी शंकराचार्य की आत्मा की खोज में निकल पड़ी। उन्हें अपने गुरू के सूक्ष्म शरीर को शीघ्र ही खोज निकालना था नहीं तो वे शास्त्रार्थ में पराजित माने जाते। शिष्यों को राजा असरूक के पुनः जीवित होने की घटना का समाचार मिला। शिष्य समझ गये कि हो न हो उनके गुरू राजा के रूप में अपने पूर्व जीवन को भूल चुके हैं। माया के बन्धन को हटाने के लिये उन्होंने राजा के सम्मुख जाकर धर्म चर्चा की। उन्होंने अपनी चर्चा को सुमधुर एवं मर्मस्पर्शी कण्ठ से गाया जिसके फलस्वरूप शीघ्र ही आचार्य की स्मृति लौट आई और वे पुनः अपने शरीर में लौटने को उद्धत हुये।

वहां मंत्री के गुप्तचरों ने एक शरीर को कुछ साधुओं के द्वारा रक्षा करते हुये पाया। वे समझ गये कि अवश्य ही यह शरीर उसी योगी का है जो राजा के शरीर में हैं। गुप्तचरों ने सैनिकों की मदद से वह शरीर छीन लिया और उसे जलाने लगे। उसी समय शंकराचार्य की आत्मा अपने शरीर में पुनः लौट आई। शंकराचार्य ने भगवान हरि से अपनी सहायता की याचना की। भगवान ने आचार्य की करूण पुकार को सुना और उनकी सहायता के लिये वरूण देव को वर्षा करवाने के लिये कहा। शीघ्र ही वृष्टि होने लगी जिससे अग्नि में जल रहा उनका शरीर शान्त व शीतल होने लगा। भगवान के आशीर्वाद से उनके शरीर की जो भी क्षति हुई थी वह दूर हुई और वे स्वस्थ हो गये।

इस घटना के पश्चात् शंकराचार्य शीघ्र ही महिष्मती पहुंच गये। अधूरे शास्त्रार्थ को पूरा करने के लिए पुनः आयोजन हुआ। आचार्य शंकर ने उभय भारती के सभी प्रश्नों के उत्तर देकर भारती को निरूत्तर कर दिया और वे शास्त्रार्थ में विजयी हो गये। मण्डन मिश्र के साथ अर्धांगिनी भारती ने भी सन्यास ग्रहण किया। मण्डन मिश्र ने अपनी सारी सम्पत्ति दान स्वरूप गुरू को समर्पित की, जिसे आचार्य ने निर्धनों में बांट दिया। मण्डन मिश्र शंकराचार्य के शिष्य हो गये व सुरेश्वराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुये।

भारत के प्रत्येक राज्य से वैदिक विद्वानों को आमंत्रित कर एवं उनके प्रश्नों के उत्तर देकर उन्हें अपने मत से संतुष्ट कर वे ज्ञान के सर्वोच्च पद पर आसीन हुये। वैदिक धर्म की श्रेष्ठता प्रस्तुत कर वे सभी विद्वान जनों से श्रेष्ठ पद पर चुने गये व जगदगुरू कहलाये। उस समय में लगभग सत्तर से अधिक धर्म प्रचलित थे। उन सभी धर्मो में वैदिक धर्म की श्रेष्ठता प्रस्तुत करने के बाद भारत में एवं आस–पास के किसी भी राज्य में उनसे श्रेष्ठ होने की बात कहने का साहस किसी का न रहा, सभी उनके अनुयायी हो गये। आचार्य शंकर के पहले और बाद में कई विद्वान हुये परन्तु आचार्य शंकर का स्थान विशिष्ट एवं श्रेष्ठ है।

15.4.1 मठों की स्थापना एवं दशनामी सन्यासी परम्परा–

आचार्य शंकर ने अद्वैत मत के प्रचार एवं वैदिक रीतियों को पुनः जीवित करने के लिये भारत में मठों का निर्माण किया। मठ शब्द सुनते ही जिज्ञासा होती है कि मठ का अर्थ क्या है? आचार्य शंकर ने भारत में कहां–कहां मठ स्थापित किये व उन मठों का मूल उपदेश क्या था? दशनामी सन्यास परम्परा क्या थी? उपरोक्त सभी प्रश्नों का उत्तर जानने के लिये निम्न तालिकाओं का अध्ययन करना होगा–

शिष्य	मठ	महावाक्य	सम्बन्धित वेद
पद्मपादाचार्य	गोवर्धन पीठ	''प्रजनानाम् ब्रह्म''	ऋग्वेद
सुरेश्वराचार्य	शारदा पीठ/श्रंगेरी मठ	''अहम् ब्रह्मास्मि''	यजुर्वेद
हस्तामलकाचार्य	द्वारका पीठ	''तत्वमसि''	सामदेव
त्रोटकाचार्य	ज्योर्तिमठ पीठ	''अयमात्मा ब्रह्म''	अथर्ववेद

श्रंगेरी मठ–

कर्नाटक राज्य के उत्तरपूर्व पश्चिमी घाट के सुन्दर पाद–गिरि में अक्षत वनों से आच्छादित श्रंगेरी ग्राम है। शंकराचार्य ने प्रथम मठ की स्थापना यहीं पर की। श्रंगेरी मठ संसार के प्राचीनतम मठों में है जो कई शताब्दियों से निरन्तर आध्यात्मिक समृद्धि प्राप्त

करता आ रहा है। मठ धार्मिक साधु–सन्तों का निवास स्थान तथा धर्म चर्चा के केन्द्र होते हैं। अतः मठों की स्थापना कर शंकराचार्य ने धर्म को बचाये रखने का पुख्ता कार्य किया।

आचार्य शंकर ने चार मठों का निर्माण भारत के चार अलग–अलग कोनों में किया ताकि वैदिक सभ्यता भरतखण्ड के कोने–कोने में व्याप्त रहे। ये चारों मठ दशनामी सन्यासियों के द्वारा ही संचालित होते हैं। आचार्य शंकर ने सन्यासियों को दश निश्चित अखाड़ों या संघों में संघटित किया जिन्हें सम्मिलित रूप दशनामी कहा जाता है। ये दस नाम इस प्रकार हैं–सरस्वती, भारती, पुरी, तीर्थ, आश्रम, गिरी, पर्वत, सागर, वन और अरण्य। इन दसों का सम्बन्ध मठों से किया गया जो इस प्रकार है–

दशनामी	**सम्बन्धित मठ**
सरस्वती, भारती और पुरी	श्रंगेरी (दक्षिण भारत)
तीर्थ एवं आश्रम	द्वारका (पश्चिमी भारत)
गिरी, पर्वत और सागर	ज्योर्ति (उत्तर भारत)
वन एवं अरण्य	गोवर्धन (पूर्वी भारत)

15.4.2 आचार्य की रचनाऐं एवं भाष्य–

1. विवेक चूड़ामणि–अद्वैत वेदान्त पर लिखी गई इनकी श्रेष्ठ कृति है।
2. ब्रह्म सूत्र भाष्य
3 उपनिषद भाष्य– आचार्य शंकर के उपनिषद भाष्य अत्यन्त सटीक व उच्च कोटि के हैं। जिनमें वृहद्आरण्यक, माण्डुक्य, तेत्रैय, केन, कण्ठ आदि प्रसिद्ध हैं।
4. भगवद्गीता पर भाष्य
5. भजगोविंदम् रचना
6. शिवानंदलहरी– भगवान शिव को समर्पित
7. सौन्दर्य लहरी– आदि शक्ति की प्रार्थना
8. विष्णु सहस्रनाम पर भाष्य
9. माण्डुक्य उपनिषद पर परमगुरू गोणपादाचार्य की 'कारिका' पर भाष्य

15.5 आचार्य शंकर की अद्वैत वेदान्त शिक्षा–

शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदों, तथा गीता पर भाष्य लिखे। ब्रह्मसूत्र पर उनके भाष्य को 'शारीरिक भाष्य' कहा जाता है। भारत में जितने भी दर्शनों का विकास हुआ उनमें सबसे महत्वपूर्ण दर्शन वेदान्त ही रहा है। वेदान्त दर्शन का आधार उपनिषद हैं। वेदान्त का अर्थ है जिसमें वेदों का निचोड़, अन्तिम सत्य का प्रतिपादन है। पहले वेदान्त शब्द का प्रयोग उपनिषदों के लिये ही किया जाता था क्यों कि उपनिषद वेदों के अन्तिम भाग थे। वेदान्त दर्शन का आधार ब्रह्मसूत्र कहा जाता है एवं ब्रह्मसूत्र वादरायण व्यास की कृति है। 'ब्रह्मसूत्र' उपनिषदों के विचारों में सरलता व सामन्जस्य लाने के लिये लिखे गये थे।

वेदान्त दर्शन को चार सम्प्रदायों में बांटा गया है –

1. अद्वैतवाद (Non-Dualism)
2. विशिष्टाद्वैतवाद (Qualified Monism)
3. द्वैतवाद (Dualism)
4. द्वैताद्वैत (Dualism Cum Non-Dualism)

अद्वैतवाद के प्रवर्तक शंकराचार्य हैं। विशिष्टाद्वैतवाद के रामानुजाचार्य, द्वैताद्वैत के निम्बार्काचार्य व द्वैतवाद के मध्वाचार्य प्रवर्तक हैं।

वैदान्त में जितने सम्प्रदाय हैं, उनमें सबसे प्रधान शंकराचार्य का अद्वैत–दर्शन माना जाता है। आचार्य शंकर की गणना भारत ही नहीं वरन् विश्व के श्रेष्ठ विचारकों में की जाती है। इसका कारण यह है कि शंकराचार्य में आलोचनात्मक और सृजनात्मक प्रतिभा समान रूप से है। शंकराचार्य ने तर्क और मेधा के बल पर अद्वैत वेदान्त का आलोक चारों दिशाओं में फैलाया। शंकराचार्य का अद्वैत वेदान्त भारतीय एवं विदेशी दोनों ही तरफ के विद्वानों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। रवीन्द्रनाथ टैगोर, डॉ0 राधाकृष्णन, प्रो0के0सी0 भट्टाचार्य, श्री अरविन्द, स्वामी विवेकानंद, स्पीनोज, और ब्रेडले आदि विचारकों व दार्शनिकों पर अद्वैत वेदान्त की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है।

बहुत छोटे काल में ही (788–820) शंकराचार्य ने दर्शन की जो सेवा की है उसका उदाहरण पूरे विश्व में नहीं मिलता है। शंकराचार्य के दर्शन की व्याख्या करते हुये डॉ0 राधाकृष्णन ने कहा है– ''उनका दर्शन सम्पूर्ण रूप में उपस्थित है जिसमें न किसी पूर्व की आवश्यकता और न अपर की'' चार्ल्स इलियट ने कहा है, ''शंकर का दर्शन संगीत पूर्णता और गम्भीरता में प्रथम स्थान रखता है'' ।

15.5.1. शंकर का जगत विचार–

शंकर ने विश्व का पूर्णतः सत्य नहीं माना है। शंकराचार्य के मतानुसार ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है और सब मिथ्या है। उन्होंने जगत को प्रपंच की संज्ञा दी है।

"ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"।

अर्थात् ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है और जगत् मिथ्या है सच नहीं है। शंकराचार्य ने जगत् को रस्सी में दिखने वाले साँप की संज्ञा दी है। जिस प्रकार रस्सी में दिखाई देने वाले साँप का आधार रस्सी है उसी प्रकार विश्व का आधार ब्रह्म है। विश्व को उन्होंने ब्रह्म का 'विवर्त' कहा।

शंकराचार्य के जगत् विचार को ठीक प्रकार से समझने के लिये विविध सत्ताओं (three grades of existences) का वर्णन किया गया है–

1. प्रातिभासिक सत्ता (Apparent existence)
2. व्यवहारिक सत्ता (Practical existence)
3. परमार्थिक सत्ता (Supreme existence)

प्रातिभासिक अर्थात् क्षण मात्र की सत्ता, व्यवहारिक में जाग्रत अवस्था के विषय है एवं अन्तिम सत्ता शुद्ध सत्ता है।

15.5.2. माया और अविद्या सम्बन्धी विचार–

माया और अविद्या को शंकराचार्य ने एक ही माना है। शंकर के मतानुसार माया ब्रह्म में निवास करती है परन्तु जिस प्रकार जादू जादूगर के अन्दर रखता है परन्तु वह उससे प्रभावित नहीं होता उसी प्रकार माया से ब्रह्म प्रभावित नहीं होता। माया ब्रह्म की शक्ति है जिससे वह संसार का निर्माण करता है। शंकराचार्य के विचार सांख्य दर्शन से मेल खाते हैं वहां भी माया को भौतिक व अचेतन कहा गया है और शंकर ने भी यही कहा है।

ब्रह्म विचार–

शंकर ने अपने अद्वैत वेदान्त की व्याख्या में एक ही तत्व का अस्तित्व स्वीकार किया है और वह ब्रह्म है। ब्रह्म पारमार्थिक, व्यवहारिक एवं प्रातिभासिक दृष्टिकोण से पूर्णतः सत्य है। शंकर ने ब्रह्म को निर्गुन, पूर्ण सत्य, सर्वोच्च ज्ञान का आधार, अनन्त, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, जगत् का आधार माना है।

ईश्वर सम्बन्धी विचार–

शंकराचार्य ने ब्रह्म को निराकार व निर्गुण कहा है और जब हम उसे जानने का प्रयास करते हैं तब वह ईश्वर हो जाता है। शंकर ने ईश्वर को सविशेष ब्रह्म कहा है।

- ईश्वर जगत् का सृष्टा, पालनकर्ता और संहारकर्ता है।
- वह नित्य और अपरिवर्तनशील है।
- ईश्वर को सविशेष ब्रह्म एवं मायोपहित ब्रह्म की संज्ञा दी गई है।

15.5.3. शंकर का आत्म विचार–

शंकराचार्य के अनुसार आत्मा और ब्रह्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उनके अनुसार,

- आत्मा स्वयं सिद्ध है।
- आत्मा सभी अवस्थाओं में विद्यमान रहती है।
- आत्मा का मूल तत्व चैतन्य अर्थात् चेतनता है।
- आत्मा नित्य, शुद्ध और निराकार है।
- आत्मा एक है परन्तु वह अज्ञान के फलस्वरूप अनेक दिखाई पड़ती है।
- वह पाप व पुण्य से अलग है।
- आत्मा देश, काल, नियम से परे है।

15.5.4. जीव विचार–

व्यवहारिक सत्ता के आधार पर शंकराचार्य ने जीव को सत्य कहा है। जब आत्मा शरीर, इन्द्रिय, मन आदि से बंध जाती है तो वह जीव कहलाती है। व्यक्ति विशेष के अलग–अलग होने से जीव भी अलग–अलग होते हैं। जीव आभास मात्र है। शंकर ने जीव को बन्धन ग्रस्त कहा है क्यों कि वह कर्ता है। आचार्य शंकर ने बन्धन मुक्ति के लिये ज्ञान पर बल दिया है।

15.5.5. बन्धन और मोक्ष विचार–

शंकराचार्य के अनुसार जब अज्ञानवश आत्मा शरीर, इन्द्रियों से बंध जाती है तो वह स्वयं को कर्ता मानने लगती है। फलस्वरूप वह संस्कारों में बंध कर फल भोगती रहती है।अविद्या का नाश होने पर ही मोक्ष प्राप्त होता है। वेदान्त में साधन–चतुष्टय से अविद्या को दूर करने का उपाय बताया गया है।

साधन चतुष्टय–

1. नित्यानित्य वस्तु
2. वैराग्य
3. शम, दम, श्रद्धा आदि
4. मोक्ष की तीव्र इच्छा

15.5.6. नैतिकता एवं धर्म का स्थान–

अद्वैत वेदान्त की आलोचना करते हुये आलोचक कहते हैं कि इसमें धर्म एवं नैतिकता की बात नही है। परन्तु यदि शंकराचार्य कृत अद्वैत वेदान्त को ध्यान पूर्वक देखा जाये तो दोनो का ही महत्वपूर्ण स्थान मिलता है। उन्होंने व्यवहारिक दृष्टिकोण से धर्म व नैतिकता को सत्य कहा है। शंकराचार्य ने स्पष्ट वर्णन किया है कि साधन चतुष्टय के चतुर्थ सोपान तक पहुंचने के लिये विवेक और वैराग्य की परम आवश्यकता है। आन्तरिक साधनों से ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव बताई गई है। दृढ़ संकल्प से ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। शंकराचार्य ने उचित व अनुचित कर्म को भी सत्य और असत्य के साथ तौल कर देखने को कहा। सत्य उचित के साथ है एवं इसी प्रकार असत्य कर्म ही अनुचित कर्म है।

अभ्यास प्रश्न

सही/गलत

1. शंकराचार्य का जन्म स्थान 'कालडि' नामक ग्राम है।
2. शंकराचार्य ने 'आतुर सन्यास' लिया था।
3. शंकराचार्य को विधिवत् सन्यास स्वामी गोविन्द भगवद्पाद ने दिया।
4 गोवर्धन पीठ 'यजुर्वेद' से सम्बन्धित मठ है।
5. त्रोटकाचार्य ज्योर्तिमठ पीठ से सम्बन्धित है।
6. श्रंगेरी मठ की स्थापना आचार्य ने सबसे पहले की थी।

रिक्त स्थान की पूर्ति–

1. प्रतिभासिक .... की सत्ता है।
2. ब्रह्म सत्यं जगत् .... जीवों .... नापरः।
3. ब्रह्म विश्व का .... है।
4. वैराग्य .... के अर्न्तगत आता है।
5. जीव .... सत्ता के आधार पर सत्य है।

15.6. सारांश –

भारत माता ने जिन महान आत्माओं को जन्म दिया उनमे शंकराचार्य अग्रणी हैं। बाल्यावस्था से ही सतो गुणी, दृढ़ निश्चयी, कुशाग्र बुद्धि के शंकराचार्य मात्र 32 वर्ष की उम्र में अद्वैत–वेदान्ती, ब्रह्मसूत्र, गीता व उपनिषदों के भाष्यकार, अनेक सुमधुर रचनाओं के रचनाकार हुये। ज्ञान का ऐसा कोई मार्ग नहीं बचा जो शंकराचार्य ने छोड़ दिया हो। एक समाज सुधारक के रूप में उन्होंने भारत की जो सेवा की है आज का समाज, आने वाला समाज उस सेवा का प्रति उत्तर न दे पायेगा।

15.7. शब्दावली

1. मठ– धार्मिक साधु संतो का निवास स्थान तथा धर्म चर्चा का केन्द्र
2. अद्वैत – जहां दो नहीं है, एकत्व
3. वेदान्त – वेदों के अन्तिम भाग अर्थात् उपनिषद, वेदों का सार
4. चार्वाक – नास्तिक दर्शनों में 'नास्तिक शिरोमणि' , वेद एवं ईश्वर को नहीं मानने वाली विचारधारा, आकाश तल को नहीं मानने वाली विचार धारा
5. कापालिक – आदि सम्प्रदाय
6. शाक्त – शक्ति की पूजा करने वाला
7. सांख्य – षट् दर्शनों में एक दर्शन
8. नम्बूदरी ब्राह्मण– केरल के ब्राह्मण विशेष
9. शास्त्रार्थ – शास्त्र के ज्ञान, अर्थ, मूल पर किया गया वाद–विवाद
10. प्रणेता– रचनाकार, रचयिता
11. अभिचार– शत्रु को मारने के लिये किया गया तात्रिंक प्रयोग

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

सही/गलत

1. सही
2. सही
3. सही
4. गलत
5. सही
6. सही

रिक्त स्थान की पूर्ति–

1. क्षण मात्र।
2. मिथ्या, ब्रहमैव।
3. विवर्त
4. साधन चतुष्ट्य
5. व्यवहारिक

15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 वाइस ऑफ फ्रीडम – स्वामी मुक्तिबोधानंद, अद्वैत आश्रम, भारत
2 संत चरित – स्वामी शिवानंद सरस्वती दिव्य जीवन संघ, टिहरी
3 भारतीय दर्शन की रूपरेखा–प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा–मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. आचार्य शंकर के जीवन को मुख्य रूप से किस विचार धारा ने प्रेरित किया विस्तार पूर्वक समझाइये।
2. आचार्य शंकर के जीवन वृत्त की चर्चा कीजिये।
3. शंकराचार्य द्वारा मठों की स्थापना का उद्देश्य क्या था एवं मठ कहां–कहां स्थापित किये गये।
4. गुरू शंकराचार्य की रचनाओं का वर्णन कीजिये।
5. आचार्य शंकर के मोक्ष विचार को अपने शब्दों में समझाइये।

इकाई–16 महर्षि दयानंद सरस्वती

इकाई की संरचना

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 स्वामी दयानंद सरस्वती : आरम्भिक जीवन

16.4 अध्यात्मिक जीवन में पदापर्ण

16.5 सत्य की खोज में भ्रमण एवं गुरू से भेंट

16.6 समाज सुधारक के रूप में स्वामी दयानंद सरस्वती की भूमिका

16.7 स्वामी दयानन्द सरस्वती का यौगिक दृष्टिकोण

16.8 प्रमुख उपदेश एवं महाप्रयाग

16.9 सारांश

16.10 शब्दावली

16.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.12 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

16.13 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना –

प्रिय पाठकों जैसा कि आप सभी जानते हैं कि भारत भूमि अनन्तकाल ही अवतारों और महापूरूषों की भूमि रही है। इस भूमि पर ऐसे–ऐसे महामानव पैदा हुए हैं जिन्होने अपने व्यक्तित्व एवं कृत्तिव से सम्पूर्ण विश्व को हिला कर रख दिया। ऐसे ही आदर्श महामानवों में एक नाम आता है 'स्वामी दयानंद सरस्वती' का जिनसे हममें से प्रायः प्रत्येक व्यक्ति परिचित होगा।

भारतवर्ष के इतिहास में 19 वीं सदी अनेक दृष्टियों से अत्यधिक महत्वपूर्ण रही है। इस सदी के समाज सुधार एवं धार्मिक सुधार इत्यादि, दृष्टि से अनेक प्रमुख आन्दोलन एवं गतिविधियॉ हुयी।

स्वामी दयानंद जी का जन्म भी सन् 1824 में हुआ था। कैसा इनका जीवन रहा? इनका बचपन किस प्रकार से बीता? एक योगी एवं समाज सुधारक के रूप में इनका ब्यक्तित्व किस प्रकार का था? इनके जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धियॉ क्या–क्या रही? इत्यादि जिज्ञासाओं के समाधान के लिए चर्चा करते हैं, स्वामी दयानंद सरस्वती जी के जीवन के बारे में।

16.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- स्वामी दयानन्द सरस्वती के यौगिक जीवन को स्पष्ट कर सकेगें।
- एक समाज सुधारक के रूप में दयानन्द सरस्वती जी की भूमिका को स्पष्ट कर सकेगें।
- स्वामी दयानन्द सरस्वती का योगदान एवं उपदेशों का वर्णन कर सकेगें।

16.3 स्वामी दयानंद सरस्वती : प्रारम्भिक जीवन

स्वामी दयानन्द जी का जन्म गुजरात के टंकारा नामक नगर में 12 फरवरी सन् 1824 ई. में हुआ। इनके पिता जी एक उच्च्य कोटि के ब्राह्मण थे। ये परम शिव भक्त थे इसलिए इन्होंने बालक का नाम मूलशंकर रखा। इनके पिता ने बाल्यकाल में ही इन्हें यजुर्वेद आदि वेद शास्त्रों का अध्ययन एवं धार्मिक संस्कारों को स्वयं सिखाया। ये बहुत ही कुशाग्र बुद्धि के थे। 5 वर्ष की अवस्था में इन्हें देवनागरी लिपि की शिक्षा दी गई। 14 वर्ष की आयु तक इन्होंने यजुर्वेद संहिताओं व्याकरण के ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया था। इन दिनो इनके जीवन में एक घटना घटी जिसने इनके जीवन को पूर्ण रूप से बदल दिया। शिवरात्रि के दिन पिता के आदेश से इन्होंने व्रत रखा। रात्रि में समस्त परिवार ने शिवालय में जाकर जागरण किया। मध्यरात्रि तक सभी सो गये किन्तु बालक मूलशंकर शिव के साक्षात दर्शन

की उत्सुकता के साथ जागते रहे। उस समय उन्होंने देखा की वहाँ पर कुछ चूहे आये और शिवलिंग पर चढ़ाये प्रसाद को खाया और इधर उधर बिखेर दिया इस घटना से बालक मूलशंकर के मन में विचार हुआ कि ये चूहो से अपनी रक्षा नहीं रक सके इसलिये ये सच्चे शिव नहीं हो सकते, और इस विचार के साथ उन्होंने घर आकर अपना व्रत तोड़ दिया। मूलशंकर की जिज्ञासा बढ़ती गई, इन्हीं दिनों इनकी छोटी बहन का देहान्त हो गया इन सब घटनाओं से इनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ।

16.4 अध्यात्मिक जीवन में पदापर्ण

इनके पिता इन्हे जमीदारी के मार्ग में लगाना चाहते थे लेकिन इनकी रूचि दो ही कार्यों में थी, एक अध्ययन में संलग्न रहना दूसरी मनन चिन्तन में तल्लीन होना। इस वर्ष इनकी उम्र लगभग उन्नीस वर्ष थी। धीरे–धीरे समय व्यतीत होने लगा इनके वैराग्य भाग से अवगत होकर इनके माता–पिता ने मूलशंकर को इनकी इच्छा के विरूद्ध विवाह बन्धन में बाँधना चाहा, इसी बात को दो वर्ष बीत गये। एक दिन उन्नीस वर्ष की आयु में घर में बिना बताये ये सच्चे शिव की तलाश में वैराग्य भाव को धारण कर घर से निकल गये पकड़े जाने के भय से ये जंगलों के रास्ते अज्ञात मार्ग आगे बढ़ते गये। ठगो साधु संतो से संपर्क होते–होते मूलशंकर आगे बढ़ते गये।

लला भक्त के घर उन्हें एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनने की प्रेरणा मिली और कशाय वस्त्र धारण किये। अब मूलशंकर शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी बन गये। उन्होंने कुछ दिन सायले में रहकर उनसे योग शिक्षा भी ग्रहण की। घूमते–घूमते शुद्ध चैतन्य अहमदाबाद के समीप कोट काँगड़ा नामक छोटे से नगर में पहुँचे उन्होंने सिद्धापुर में होने वाले मेले के बारे में सुना संतो के दर्शन की प्रबल इच्छा मन में लिये उसी ओर चले ही थे कि इनकी भेंट पूर्व परिचित वैरागी से हुई जो कि इनके घर से पूर्णतः परिचित था। वैरागी द्वारा कही गई घर लौटने की बात को ठुकराकर ये मेले की ओर चल दिये। वैरागी द्वारा प्राप्त सूचना से इनके पिता इनकी तलाश में चार पाँच सैनिकों को लेकर आये थे। पिता द्वारा जबरदस्ती इन्हें एक तम्बू में बन्दी की तरह निगरानी में रखे गये घर लौटने की बात सुनते ही ये एक दिन तम्बू से भाग गये फिर इनके पिता इन्हें ढूंढ़ न पाये। वे घूमते–घूमते बड़ौदा पहुँचे। ब्रह्मानन्द आदि सन्तों की संगत में ये पक्के वेदांती बन गये थे, लेकिन फिर भी इनकी प्यास अभी बुझी नहीं थी। वह विद्वानों और महात्माओं की तलाश में नर्मदा की ओर बढ़े, वहाँ से वे चणोद कल्याणी पहुँचे। वहाँ उन्होंने स्वामी पूर्णनन्द सरस्वती जी से संन्यास की दीक्षा ली। अब मूलशंकर शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी से संन्यासी होकर स्वामी दयानन्द सरस्वती हो गये। इन्हें ज्वालापुरी और महात्मा शिवानन्द गिरि नामक दो परम योगी मिले जिनसे इन्होने क्रिया समेत पूर्ण योग विद्या सीखी अन्य अभ्यास और योगियों से मिलने की आज्ञा से वे हिमालय की यात्रा पर चल दिये। हरिद्वार, ऋषिकेष, टिहरी, श्रीनगर होते हुये स्वामी जी गंगागिरि विद्वान के यहाँ रहते हुये रूद्रप्रयाग शिवपुरी पहुँचे। अनेक तीर्थ स्थानों की शोभा देखते हुये ओखी मठ से वे आगे बढ़े। इन स्थानों में घूमने से स्वामी जी समाज में

फैले हुए भ्रष्टाचार अन्धविश्वास रूढ़ियों से भी अवगत हुये और इनके विरूद्ध ही इन्होंने पाखण्ड खण्डिनी नामक पताका फहराई थी।

16.5 सत्य की खोज में भ्रमण एवं गुरू से भेंट

स्वामी दयानन्द सरस्वती ओखीमठ से जोशीमठ पहुँचे। वहाँ महाराष्ट्रीय सन्यासियों के सम्पर्क में कुछ समय व्यतीत कर योगाभ्यास की कुछ नई क्रियायें सीख कर वे बद्रीनाथ की ओर चल दिये। वहाँ पास की गुफाओं में सिद्ध पुरूषों के दर्शन की लालसा उनके मन में जाग्रत हुई, उनकी तलाश में वे पूरे दिन नदियों पहाड़ों को पार करते हुये जंगलों में भ्रमण करते रहे। कटीली झाड़ियाँ, नुकीले पत्थरों की वेदना उन्हें सहनी पड़ी, लेकिन प्रयास निश्फल रहा। 8 बजे तक वे बद्रीनाथ के मन्दिर लौट आये।

दूसरे दिन वे रामपुर की ओर चल दिये जहाँ वे राम गिरि नामक महात्मा से मिले जो कि रात दिन कथावार्ता करते हुये भी कभी अशान्त नहीं होते थे। फिर वहाँ से काशीपुर होते द्रोण सागर गये। विभिन्न स्थानों में घूमते हुये स्वामी जी गढ़मुक्तेश्वर पहुँचे।

स्वामी जी को घर छोड़े 12 वर्ष बीत चुके थे। अब तक गुजरात, राजस्थान, और उत्तर भारत के हिमालय एवं गंगा के तटवर्ती स्थानों में घूम–घूम कर आध्यात्मिक तथा भौतिक ज्ञान की उपलब्धि प्राप्त की, देश की सामाजिक और राजनीतिक अवस्था को भली भाँति जान चुके थे। अब वे मध्य भारत में बसने वाली आर्य जाति की वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये गंगा का किनारा छोड़ कर नर्मदा के तटपर विचरने लगे। इस बीच उन्हें अनेकों कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। 3 वर्ष तक वे मध्य भारत में ही विचरण करते रहे।

एक दिन चर्चा में उन्होंने विरजानन्द जी के विमल यश और पाण्डित्य की चर्चा सुनी। घर से दुःखी अवस्था से निकलकर गंगा के किनारे रोते हुये अन्धे बालक को एक महात्मा ने सहारा दिया। ये ही बालक अपनी असाधारण बुद्धि और विलक्षण क्षमताओं से अन्तः प्रज्ञा को जाग्रत करने में सक्षम हुआ, विभिन्न स्थानों में घूमता हुआ ये दण्डी स्वामी ही विरजानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ऐसे ही अनोखे गुरू की सेवा में दयानन्द जी कार्तिक सुनद–संवत 1917 वि. को उपस्थित हुये और अपनी ज्ञान प्राप्ति की इच्छा व्यक्त की दण्डी स्वामी ने कहा जब तक अनार्श पद्धति का परित्याग नहीं होगा, तब तक आर्श ग्रन्थों का महत्व और मर्म समझा न जा सकेगा। इसलिये तुम जा कर पहले अपनी आधुनिक पुस्तकों को यमुना में बहा आओं तभी मैं तुम्हें पढ़ा सकूंगा। उन्होने वैसा ही किया।

स्वामी जी हर प्रकार से एक आदर्श शिष्य थे। जैसे पढ़ने में वे सब शिष्य से आगे थे वैसे ही गुरू सेवा में भी उन्होंने सब सहपाठियों को पछाड़ दिया। कठिन विषय को समझने और उनके मूल तत्वों को ग्रहण करने में उन्हें देर नहीं लगती थी।

स्वामी जी को मथुरा से आये हुये 21 वर्ष हो गये। विरजानन्द जी से उन्होंने अष्टाध्यायी, महाकाव्य, वेदान्त सूत्र आदि अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया। विरंजानन्द कहा

करते थे कि दयानन्द आज तक मैने सैकड़ों विद्यार्थियों को पढ़ाया परन्तु जो स्वाद, जो आनन्द तुम्हें पढ़ानें में आया वह कभी नहीं मिला, तुम्हारी तर्क शक्ति भी प्रबल है।

दयानन्द सरस्वती जी सन्यासी थे परन्तु किसी से कुछ माँगते नही थे। ईश्वर कृपा से जो कुछ मिल गया उसी पर वह संतोष कर लेते थे। वे पूर्ण ब्रह्मचारी थे। स्त्री स्पर्श तो दूर, वे किसी स्त्री की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते थे। अब उनकी आयु 35 वर्ष की हो चुकी थी।

विरजानन्द जी से विदा लेते समय वे डरते–डरते पाँच लौंगों की उनकी सेवा में समर्पित करते हुये कहने लगे कि गुरूदेव आपकी मुझ पर असीम कृपा रही। आपके उपकारों से ऋण होना मेरे लिये सम्भव नही, मैं आपकों क्या दे सकता हूँ। ये थोड़ी सी लौंग स्वीकार करें गुरू जी बोले–" तू तो बड़ा कंजूस निकला! मुझे देने को तेरे पास बहुत कुछ है, दयानन्द जी ने कहा आप आदेश करें।

गुरू ने शिष्य के सिर पर हाथ फेरते हुये कहा– भारत में दीन हीन जन अनेको दुःख पा रहें है जाओं उनका उद्धार करो, प्रचलित कुरीतिओं का निवारण करो। आर्य जनता की बिगड़ी दशा को सुधारों कुसंस्कारो और अन्धविश्वासों को दूर करो। गुरू दक्षिणा में मुझे यही सब तुमसे पाने की इच्छा है।

चलते समय गुरू ने आशीर्वाद दिया "वत्स तुम्हारे सभी मनोरथ सिद्ध हो।" ईश्वर तुम्हें सुख सफलता से सम्पन्न करें। एक बात स्मरण रखना साधारण मनुष्य कृत ग्रन्थ परमात्मा और ऋषि मुनियों की निन्दा से पूर्ण है, परन्तु आर्ष ग्रन्थों में इस दोष का नितान्त अभाव है, आर्ष और अनार्ष ग्रन्थों की यही सबसे बड़ी परख है। इस कसौटी को हाथ से कभी न जाने देना।

हरिद्वार के प्रसिद्ध कुम्भ मेला, जिसमें काफी लोगों की भीड़ होती है उसी समय था। बड़े–बड़े पण्डितों से दयानन्द सरस्वती जी से शास्त्रार्थ हुआ, वहाँ से काशी आकर और वहाँ से पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये चुनौती दी। काशी में लोगों ने इन पर पत्थर मारे अपशब्द कहे, परन्तु ये दृढ़ रहे, इनका धर्म भ्रष्ट करने के लिये मथुरा में इनके पास वैश्या को भेजा जो कि इन्हें देखते ही भय से काँपने लगी।

इन्हीं दिनों बंगाल में महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर तथा केशवचन्द्र सेन से इनकी भेंट हुई। वे लोग इनसे बहुत अधिक प्रभावित हुये। बंगाल के बाद बम्बई आकर इन्होंने आर्य समाज की स्थापना की। पंजाब में व्याख्यान देते समय इन पर पत्थर फेंके गये परन्तु इस पर इन्होंने कहा जो लोग आज मुझ पर पत्थर फेंक रहे है वे ही एक दिन मुझ पर फूलों की बारिश करेंगे।

16.6 समाज सुधारक के रूप में स्वामी दयानंद सरस्वती की भूमिका

जगह–जगह घूमते हुए स्वामी जी जनता से ये ही कहते थे, कि अपनी भलाई चाहते हो तो नीच–ऊँच, छोटे–बड़े इत्यादि भेद और द्वेष भाव को त्यागकर संगठित हो जाओ, वेद की

शिक्षा पर चलो और सदाचारी बनकर एक सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान निराकार परब्रह्म की उपासना करो।

स्वामी जी पौराणिक दन्तकथाओं को नहीं मानते थे। वे केवल वेद और वेद के अनुकूल आर्ष ग्रन्थों को ही प्रमाण कोटि में रखते थे।

स्वामी दयानन्द ने यह स्वीकार किया है कि भारतीय पुनरूत्थान और आधुनिकीकरण भारत की प्राचीन वैदिक संस्कृति के आधार पर ही संभव है। स्वामी दयानन्द का भारतीय समाज पर ज्ञान अधिक गहरा था, और उनका भारतीय परम्परा का अध्ययन अधिक पूर्ण माना जा सकता है। स्वामी दयानन्द में प्रखर प्रतिभा और गहरी अन्तर्दृष्टि थी, साथ ही उनमें मानवीय संवेदना की बहुत व्यापक और आन्तरिक क्षमता थी। इसलिये घर से बाहर निकलने के बाद लगभग चौबीस वर्ष उन्होने देश के स्थान–स्थान पर घूमने में बिताये और सारे भारतीय जन–समाज का बहुत व्यापक अनुभव प्राप्त किये। अपनी सूक्ष्म संवेदना के कारण ही उनको भारतीय समाज के जीवन का यथार्थ ज्ञान हो सका।

मूलशंकर घर से निकले थे। संसार के बंधनों से मुक्त होकर शुद्धस्वरूप शिव की खोज में और दयानन्द को मिला दुःखी, संतप्त, हीन भाव से ग्रस्त, अनेक कुरीतियों, पाखण्डो, दुराचारों से पीड़ित, कुंठित, गतिरूद्ध भारतीय समाज। और फिर वे व्यक्तिगत मोक्ष के मार्ग को भूल कर अपने समाज के उद्धार में प्राण–पण से लग गये।

एक ओर दयान्द जी को तत्कालीन भारतीय समाज की यथार्थ स्थिति का सही ज्ञान था, तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति का उन्होंने मन्थन भी किया था। स्वामी विरजानन्द ने आर्ष ग्रन्थों और वैदिक संस्कृति की ओर उनका ध्यान आकर्षित करके उनको दिशा–निर्देश दिया था। अपने परिभ्रमण काल में देश के समाज को अवरूद्ध करने वाला वर्ग पौराणिको, पुरोहितो, साम्प्रदायिको तथा महन्तो का था।

उस प्रज्ञाचक्षु संन्यासी ने यह समझ लिया था कि वैदिक काल के काद के ब्राह्मण और पुरोहित वर्गों ने स्वार्थवश और शक्ति की प्रतिद्वंदिता में शुद्ध आर्ष ग्रन्थों की मनमानी टीकाएँ और व्याख्याएँ की हैं। अनेक समानान्तर ग्रन्थों की रचना की है। इन संहिताओं, स्मृतियों, उपनिषदो और पुराणों में अपने स्वार्थ–सिद्धि के नियमों और सिद्धान्तों का समाहार किया। इतना ही नहीं, मनमाने ढंग से आर्ष ग्रन्थों में प्रक्षेप भी किये गये।

स्वामी दयानन्द ने वेदों के प्रामाण्य पर ही यह घोषित किया कि जो हमारे विवेक को स्वीकार्य नहीं, उसके त्याग में हम को एक क्षण का विलम्ब नहीं करना चाहिए। यदि वेदों में ज्ञान के बदले अज्ञान है, मानवीय उच्च मूल्यों के बाजय घोर हिंसावृत्ति, भोगवाद और यर्थार्थ की उपासना है तो उनको अस्वीकार कर देना चाहिए। (उन्होंने निघण्टु, निरूक्त अष्टाध्यायी और महाभाष्य जैसे व्याकरण ग्रन्थों के आश्रय से वेद– मन्त्रों की सुसंगत और व्यवस्थित व्याख्या प्रस्तुत की)। इस दृष्टि से गहन अध्ययन करने के बाद उन्होंने घोषित किया कि वेद, वैदिक साहित्य और अन्य आर्ष गन्थ ही प्रमाण्य हैं, उनमें सत्य–ज्ञान सुरक्षित है, इसी में भारतीय संस्कृति के उच्चतम मूल्य सुरक्षित हैं और ये मूल्य भारतीय समाज और

व्यक्ति के जीवन के सभी पक्षों को मौलिक सृजनशीलता से गतिशील करने में सक्षम रहे हैं।

स्वामी दयानन्द ने भारतीय समाज में व्याप्त निष्क्रियता, अन्धविश्वास और स्वार्थपरता के मूल में मध्ययुग के पुराणपंथ को माना है।

स्वामी दयानन्द के अनुसार वैदिक धर्म परमब्रह्म परमेश्वर की उपासना का विधान है परन्तु पुराणपंथियों ने उसके स्थान पर अनेकेश्वरवाद, अवतारवाद, मूर्तिपूजा, देवी–देवताओं की पूजा और यहाँ तक उपदेवताओं तक की पूजा प्रचलित करके अपना स्वार्थ सिद्ध किया। वेद समर्थित समाज में चार वर्णों की व्याख्या हैं, और यह व्यवस्था कर्म के अधार पर थी। इनमें ऊँच–नीच तथा छुआछुत का अन्तर नहीं था। दयानन्द जी के अनुसार –व्यक्ति अपने विकास में समाज की सहायता पाता हैं, अतः उसे समाज को चुकाना भी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति पर स्वस्थ वंश परम्परा चलाने, ज्ञान की परम्परा को आगे बढ़ाने, प्राणिमात्र की सेवा और सहायता करने तथा जीवन को आध्यात्म की ओर अग्रसर करने का दायित्व है। इन विभिन्न दायित्वों को पूरा किए बिना कोई व्यक्ति मुक्त नहीं हो सकता।

वैदिक द्वैतवाद की स्थापना

स्वामी दयानन्द ने मध्ययुग के व्यक्तिपरक धर्म, दर्शन साधना तथा अध्यात्म को पुनः वैदिक समाजपरक आधार पर प्रतिष्ठित किया। मध्ययुगीन अद्वैत तथा अद्वैत आधारित दर्शनों को अस्वीकार कर उन्होंने वैदिक द्वैतवाद की स्थापना की। एक परम ब्रह्म परमेश्वर सर्वत्र व्याप्त शाश्वत, अनादि, अनन्त सत्य स्वरूप है। वह हम जीवों का परम पिता है और पालन–पोषण–संरक्षण करने वाला है। वस्तुतः इस प्रकार की अवधारणा में व्यक्ति और समाज के संबंधों का सुंदर स्वरूप सुरक्षित हैं। इसी कारण दयानंद जी ने ज्ञान और भक्ति के सूक्ष्म चिंतन और अनुभव के स्तर पर विकसित होने वाले आत्मा और ब्रह्म के अद्वैतपरक भेदाभेद को महत्व नहीं दिया, वरन् उसे अस्वीकार किया है। उन्होंने स्पष्ट अनुभव किया कि जब तक मध्ययुगीन मूल्यों, स्थापनाओं, मान्यताओं, जीवन–पद्धतियों और परम्पराओं का खुला विरोध नहीं किया जायेगा, और भारतीय समाज को इनकी कुंठाओं, जड़ताओं और स्वार्थपरताओं से पूर्णतः मुक्त नहीं किया जायेगा, तब तक इस समाज के पुनर्जीवित होने और फिर से मौलिक सृजनशीलता से गतिशील होने का कोई अवसर नहीं है। इसी कारण उन्होंने इन सब पर कड़ा प्रहार किया है और इसमें उन्होंने कभी किसी प्रकार का कोई समझौता नहीं किया। वस्तुतः अपनी गहरी अंतदृष्टि से उन्होंने समझ लिया था कि विखण्डित और कुंठित परंपरा से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है उसको तोड़ कर फेंक देना।

उनके जैसा उदार मानवतावादी नेता दूसरा नहीं रहा है। उन्होंने धर्म की सदा भारतीय व्यापक परिकल्पना सामने रखी है। वे धार्मिक सम्प्रदायों को अस्वीकार कर शुद्ध मानव मूल्यों पर प्रतिष्ठित धर्म को स्वीकार करने के पक्ष में रहे हैं। इस दृष्टि से वे भारतीय संतों के समान उदार और व्यापक दृष्किोण के रहे हैं। पर संतों का दृष्टिकोण मुख्यतः

आध्यात्मिक जीवन तक सीमित था, जब कि दयानन्द के सामने भारतीय जन–समाज के सर्वांगीण विकास का लक्ष्य था।

इस्लाम और ईसाई धर्म की आलोचना उन्होंने प्रासंगिक रूप में की है क्योंकि वे हिन्दुओं को मत परिवर्तन करने के लिए प्रेरित करते थे। उन्होंने सांर के समाने दो महत्वपूर्ण बातें रखीं–

1. मानवीय मूल्यों की सृजनशीलता से प्रेरित एक ही धर्म हैं।
2. यह धर्म संसार के सभी धर्मों के मूल में निहित है।

उनके लिए **आर्य** शब्द किसी साम्प्रदायिक धर्म का पर्याय कभी नहीं बना, यह उनके द्वारा आर्य समाज की स्थापना से भी सिद्ध है। आर्य समाज कभी किसी धर्म का रूप नहीं ले सका, यह उनकी इच्छा और विश्वास का ही परिणाम था।

स्वामी दयानन्द ने समाज में स्त्री के स्थान पर विषेष ध्यान दिया था। वे पुरूष के साथ नारी की समानता का पूर्ण समर्थन करते थे। भारतीय समाज की हीन अवस्था का एक महत्वपूर्ण कारण उनके अनुसार यह भी है कि इस समाज में नारी का सम्मानपूर्ण स्थान नही रह गया है। वे नारी और पुरूषों के अधिकारों की पूर्ण समानता स्वीकार करते हैं, स्त्री अशिक्षा, बाल–विवाह, विधवा प्रथा तथा वेश्या वृत्ति आदि अनेक समस्याओं को दयानन्द ने उठाया और उनका उचित समाधान प्रस्तुत किया था। जिस साहस और दृढ़ता के साथ उन्होंने इन समस्याओं का समाधान समाज के सामने रखा था, उससे उनके व्यक्तित्व की क्रांतिकारिता लक्षित होती है और उनका द्रष्टा रूप भी सामने आता है।

स्वामी दयानन्द ने लौकिक तथा आध्यात्मिक जीवन के मूल्यों के पारस्परिक अंतः संबंध को जितनी स्पष्टता के साथ प्रतिपादित और विवेचित किया है,वह अन्यत्र नहीं मिलता। स्वामी दयानन्द ने संस्कृति के इसी रूप की परिकल्पना की है और उनकी दृष्टि में यही भारतीय संस्कृति का सच्चा स्वरूप है।

स्वामी दयानन्द आधुनिक युग में ऋषि और द्रष्टा उनमें जितनी गहरी यथार्थ की पकड़ थी, उतनी ही व्यापक इतिहास और परम्परा को ग्रहण करने की क्षमता भी। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने समाज की प्रक्रिया को समझा, उसके भविष्य की संभावनाओं को पहचाना और फिर उसको एक स्वस्थ, सप्रमाण और सृजनशील समाज–रचना की ओर उन्मुख करने का प्रयत्न किया।

स्वामी दयानन्द राजा राममोहन राय से लेकर जवाहरलाल नेहरू तक ऐसे भारतीय नेताओं से बिल्कुल अलग थे, जो अपनी समस्त सद्भावनाओं और द्वेष कल्याण की भावनाओं के बावजूद भारतीय आधुनिकीकरण का रास्ता हर प्रकार से पश्चिमीकरण से होकर गुजरता पाते रहे हैं।

16.7 स्वामी दयानन्द सरस्वती का यौगिक दृष्टिकोण

मौलिक रूप से स्वामी दयानन्द सरस्वती वेदान्त के साधक थे। वेदान्त साधना में भी अद्वैतवाद पर विशेष जोर रहा। स्वामी जी भारतीय योग परम्पराओं में समकालीन समय के एक विशिष्ट व्यक्तित्व रहे है। इनके जीवन में प्राचीन योग साधना का नवीनतम प्रयोग देखने को मिलते है। ये ध्यान योग के सिद्धहस्त तथा ध्यान योग के भी साधक थे, किन्तु निराकार ध्यान इनका विषय रहा।

स्वामी जी बाल्यावस्था से ही निराकार उपासना के प्रति आकर्षित थे। निराकार साधना में आगे बढ़ते हुये अन्ततः इन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की। अतः निराकार ब्रह्म ही उनके व्यक्तित्व का केन्द्रिय ध्येय रहा है। इन्होंने ब्रह्मचर्य साधना का जीवन पर्यन्त पूर्ण रूप से पालन किया। जिसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व में प्रखरता, तेजस्विता तथा अद्‌भुत शारीरिक बल में दृष्टिगोचर होता था। निराकार ब्रह्म की शक्ति के सहारे उन्होंने कुछ ऐसे कार्य किये जो सामान्य जन के लिये चमत्कार प्रतीत होता है। स्वामी जी हठयोग की कुछ साधनात्मक क्रियाओं के भी अभ्यासी थे। शरीर में हठयोग सिद्धि के लक्षण प्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्त होते थे।

मुख्यतः स्वामी दयानन्द सरस्वती सन्यास मार्ग के आदर्श अनुयायी थे। सन्यास मार्ग में जाने की सभी विशिष्ट साधनाएं इन्होने सम्पन्न की थी। जिनके फलस्वरूप संन्यास मार्ग के आगामी अनुयाईयों के लिये एक उज्जवल पथ प्रशस्त किया। एक योगी पुरूष के व्यक्तित्व में जो विशिष्ट लक्ष्य परिलक्षित होते है, स्वामी जी का व्यक्तित्व उन सभी विशिष्टताओं से परिपूर्ण था।

16.8 प्रमुख उपदेश एवं महाप्रयाग

स्वामी दयानंद के कुछ उपदेश इस प्रकार हैं–

1. ईश्वर को वही प्रिय है, जो समाज का आचरण करता है, सत्य ही ज्ञान का सबसे बड़ा दर्जा है।
2. न्यायप्रियता को कभी हाथ से न जाने दो। किसी का अनुचित पक्षपात मत करो और न धर्मान्धता को अपने ह्रदय में स्थान दो।
3. मनुष्य मात्र से प्रेम करना चाहिए। प्रेम मनुष्य का जन्मसिद्ध धर्म है।
4. प्राणिमात्र पर दया दिखानी चाहिए।
5. स्त्री जाति पर दया दिखानी चाहिए।
6. गाय की रक्षा और सेवा करनी चाहिए।
7. किसी का मन दुखाना संसार का सबसे बड़ा पाप है।
8. आत्मा नित्य और अविनाशी है। इसको कोई नहीं मार सकता।
9. अनाथों, विधवाओं तथा दीन–दुःखीजनों की सहायता और सामाजिक सुधार करने का प्रयत्न करना चाहिए।

10. भारतवासियों के लिए एक भाषा, एक वेष और एक ही भाव होना चाहिए।

11. आर्य भाषा हिंदी ही भारत की राष्ट्र भाषा है।

जोधपुर में अश्विन चतुर्दशी संवत् 728 वि. 29 सितम्बर 1983 ई. को रात के समय सोने के पूर्व स्वामी जी ने नित्य नियमानुसार जगन्नाथ से गरम दूध मंगवाकर पिया। दूध पीते ही उन्हें पेट में जोर का दर्द उठा और उल्टियाँ आने लगी। वे जान गए कि दूध में जहर था। वे समझ गए कि यह घातक जहर किसी यौगिक क्रिया से निकलने वाला नहीं है। उन्होंने जगन्नाथ से कहा कि उसने विष देकर अच्छा काम नहीं किया, मुझे अभी बहुत से काम करने हैं, मेरे बहुत सारे कार्य अभी अधुरे हैं। अगर तू मुझे विष न देता तो मैं अभी 100 वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रहता। ईश्वर की इच्छा कहकर वे चुप हो गये।

जगन्नाथ को वे कुछ रूपये देकर नेपाल भाग जाने को कह दिये, ताकि उसके प्राण बच जाएँ। जगन्नाथ महर्षि के प्रति कृतज्ञता व्यक्त किया। अगले दिन भी स्वामी जी के हालात में सुधार न हुआ, दशा बिगड़ती जा रही थी।

सभी भक्त जन जोधपुर में आ गए और वहाँ से उन्हें आबू पर्वत ले गये, अंत में वे लोग स्वामी जी को अजमेर ले गये। वहाँ स्वामी जी ने मसूदा जाने की इच्छा व्यक्त की, 30 अक्टूबर सन् 1883, महर्षि के जीवन का अंतिम दिवस था। उन्होंने कहा **आज एक माह के पश्चात मेरा अंतिम विश्राम का दिन है।** उस दिन उन्होंने पवन नाई को बुलवाकर सिर मुंडवाया, नाखून कटवाये फिर तकिये के सहारे पलंग पर लेट गए और भक्तों से बातें करने लगे। एक–एक भक्त को आशीर्वाद स्वरूप द्रव्य, मुद्रा,वस्तु देकर सबसे विदाई ले रहे थे। सभी भक्जनों के ह्रदय टुकड़े–टुकड़े हुए जा रहे थे। स्वामी जी सबको प्रेम पूर्ण नेत्रों से देखकर सबका ढ़ाढ़स बंधा रहे थे। 5:30 बजे स्वामी जी ने चारों ओर के द्वार–खिड़कियाँ खुलवा दिए सभी उपस्थित लोगों को अपने पीछे खड़ा करवाया तथा दिन, तिथि, वार पूछा एक ने बताया कि आज कृष्ण पक्ष का अंत, शुक्ल पक्ष का आदि, अमावस्या **दीपमालिका संवत् 1940 वि.** दिन मंगलवार है। यह सुनकर उन्होंने अपनी दृष्टि चारों ओर घुमाई और फिर गंभीर ध्वनि से वेद पाठ आरंभ किया, उनकी ध्वनि में कोई निर्बलता प्रतीत नहीं हो रही थी। फिर आर्य भाषा में प्रार्थना करके गायत्री मंत्र का जाप करने लगे। जप करते–करते वे मौन हो गए लंबे समय तक वे समाधिस्थ रहे फिर आँखें खोलकर कहने लगे **" हे दयामय हे सर्वशक्तिमान ईश्वर तेरी यही इच्छा है, सचमुच तेरी यही इच्छा है। परमात्म देव! तेरी इच्छा पूर्ण हो! अहा! तूने अच्छी लीला की।"**

फिर करवट लेकर एक गहरा श्वास भीतर लेकर ऊँ कार का उच्चारण करके हमेशा के लिए मौन हो गए।

इस प्रकार आर्त्त भारत के भाग्य का भानु भगवान–दयानन्द कार्तिक अमावस्या संवत् 1940 वि. मंगलवार सायं 6 बजे एकाएक कालकराल रूप अस्ताचल की ओट में हो गया।

अभ्यासार्थ प्रश्न– सत्य/ असत्य

1. स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म पंजाब राज्य में हुआ था।
2. स्वामी दयानंद सरस्वती 19 वीं सदी की दिव्य विभूतियों में से एक थे।
3. स्वामी दयानन्द सरस्वती के गुरू का नाम विरधानंद था
4. स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार किसी का मन दुःखाना सबसे बड़ा पाप है।
5. स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार स्त्री जाति पर दया दिखानी चाहिए।

16.9 सारांश –

जिज्ञासु विद्यार्थियों, उपरोक्त विवरण से आपको स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं, अनेक कृतित्व एवं व्यक्तित्व की जानकारी मिली होगी और कुछ सीमा तक आप उन्हें आत्मसात् करने में भी सक्षम हो पायेंगे। जैसा कि आप जान चुके हैं कि स्वामी जी एक समाज सुधारक भी थे और एक योगी भी थे। वे अद्भुत प्रतिभा के धनी थे। उन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन भारत के पुर्नउत्थान में लगा दिया। उन्होने अपने उपदेशो पर दया दिखाने एवं सद्व्यवहार करने की बात कही। ऐसे सन्तो महापुरूषों के योगदान एवं व्यक्तित्व को शब्दो की सीमाओं में व्यक्त नहीं किया जा सकता। अतः संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती एक ऐसी महान आत्मा के रूप में भारत भू पर अवरित हुये, जिन्होंने अपने ज्ञाान रूप प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व तथा आगामी पीढ़ियों को सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित करने का अथक प्रयास किया।

16.10 शब्दावली –

अद्वैतवाद – दो को न मान कर एक ही रास्ता (ब्रह्म) के अस्तित्व को स्वीकार करने वाली अवधारणा या मत।

द्वैतवाद – दो सप्ताओं के अस्तित्व को स्वीकारना।

अविनाशी – कभी भी नष्ट न होने वाला।

दृष्टा – देखने वाला।

कृतज्ञता – किसी के उपकार एवं सहयोग के प्रति आभार व्यक्त करना

16.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

1. असत्य	2. सत्य	3. असत्य	4. सत्य	5. सत्य

16.12 – संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kumar Kamakhaya, The super science of yoga, standard publication Delhi.

16.13 – निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 – स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन का संक्षिप्त परिचय देते हुये एक समाज सुधारक के रूप में उनकी भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2 – स्वामी दयानन्द सरस्वती के यौगिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हुए उनके प्रमुख उपदेशो का विवेचन कीजिए।

इकाई–17 श्री अरविन्द

इकाई की संरचना

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 श्री अरविन्द : आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा

17.4 युवावस्था एवं क्रांतिकारी जीवन

17.5 श्री अरविन्द का भारत आगमन

17.6 वैवाहिक जीवन

17.7 राजनैतिक जीवन से आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश

17.8 पत्रकारिता के क्षेत्र में योगदान

17.9 यौगिक एवं साधनात्मक जीवन

17.10 श्री अरविन्द की मौन साधना

17.11 श्री मॉ का भारत आगमन

17.12 महाप्रयाग

17.13 सारांश

17.14 शब्दावली

17.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

17.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

17.17 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना –

पिछली इकाई में आपने स्वामी दयानन्द जी के जीवनवृत्त के बारे में अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप महर्षि अरविन्द के बारे में अध्ययन करेगें। श्री अरविन्द का जन्म कलकत्ता में 15 अगस्त 1872 ई. में हुआ, इनकी माता का नाम स्वर्णलता और पिता का नाम श्री कृष्णघन घोष था। पिता एक सिविल सर्जन थे। राष्ट्रीयता के पुरोधा राजनारायण बोस श्री अरविन्द के नाना थे। विदेश से 14 वर्ष के पश्चात् भारत आकर महाराज बडौदा के यहां इन्होंने भूमि व्यवस्था तथा राजस्व विभाग में कार्य किया। इसके बाद बडौदा के ही कालेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक नियुक्त हुए और इसी कालेज के प्रधानाचार्य के पद पर प्रोन्नत हुए। श्री अरविन्द अध्यापन के कार्य के साथ–साथ 'वन्देमातरम्' पत्र के सम्पादकीय भी लिखते थे। श्री अरविन्द की विद्वत्ता के कारण ही वे बड़ौदा के शिक्षित वर्ग के प्रेम–पात्र बन गये, जन–साधारण में श्री अरविन्द की लोकप्रियता इतनी बढ़ चुकी थी कि लोग उन्हें बड़े भैया का सम्मान देने लगे। प्रस्तुत इकाई में आप श्री अरविन्द के जीवन के अन्य पहलुओं के बारे में अध्ययन करेगें।

17.2 उद्देश्य –

- श्री अरविन्द का जीवन परिचय प्राप्त कर सकेगें।
- श्री अरविन्द के यौगिक जीवन को स्पष्ट कर सकेगें।
- एक समाज सुधारक के रूप में श्री अरविन्द जी की भूमिका को स्पष्ट कर सकेगें।

17.3 श्री अरविन्द : आरम्भिक जीवन एवं शिक्षा

श्री अरविन्द, डॉ कृष्णधन घोष एवं श्रीमती स्वर्ण लता देसी के तृतीय पुत्र थे। उनका जन्म 15 अगस्त 1872 को कलकत्ता में उनके पिता के मित्र बैरिस्टर मनमोहन घोष के घर पर हुआ था। श्री अरविन्द की माँ एवं मनमोहन घोष की पत्नी परस्पर अभिन्न मित्र थीं।

श्री कृष्णधन घोष अंग्रजी शिक्षा और रहन–सहन से बहुत ज्यादा प्रभावित थे क्योंकि उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से चिकित्सा की डिग्री प्राप्त की थी और स्काटलैण्ड के एवरडीन विश्वविद्यालय से एम.डी. की डिग्री प्राप्त करने के लिए विदेश यात्रा की। वह 1879 में डिग्री लेकर वापस लौटे। इस यात्रा के बाद उनका अंग्रजी रहन–सहन के प्रति पहले से ही अनुरक्त मन पूर्णतः विलायती हो गया।

श्री राजनारायण बोस ने अपने जमाता कृष्णधन घोष के बच्चों की पढ़ाई को लेकर काफी समझाया कि वह अपने तीनों बच्चों को दार्लिलिंग के लोरेटो कान्वैण्ट स्कूल में प्रवेश न करायें, पर वह न माने। यह स्कूल भारत में नौकरी करने वाले अंग्रेजी अफसरों के बच्चों की शिक्षा के लिए खोला गया था। उस समय श्री अरविन्द की आयु सिर्फ पांच वर्ष की थी। इसी उम्र में श्री अरविन्द को अपने परिवार से अलग रहने का अभ्यास होता गया।

सन् 1879 में जो श्री अरविन्द की आयु 7 वर्ष की थी तभी डॉ कृष्णधन घोष अपनी पत्नी स्वर्णलता एवं 4 बच्चों के साथ इंग्लैण्ड गये, विनयभूषण, मनमोहन, अरविन्द एवं सरोजिनी। अपने तीनों पुत्रों एवं पत्नी को एक अंग्रजी पादरी और पत्नी को इस निर्देश के साथ सौंप दिया कि बच्चे किसी भारतीय से कोई परिचय प्राप्त न कर सके और उन पर किसी प्रकार का कोई भारतीय प्रभाव न पड़ने पाये। इन आदेशों को अक्षरशः पालन हुआ और अरविन्द भारत, उसके निवासियों, उसके धर्म और उसकी संस्कृति से सर्वथा अनभिज्ञ होकर पलते रहे।

श्री अरविन्द छोटे होने के कारण दुएट के घर पर ही रहते। मि. दुएट रंगपुर के मजिस्ट्रट श्री जार्ज ग्लेजियर के सम्बंधी थे। दुएट स्टाकपोर्ट रोड चर्च के पादरी थे, उनकी पत्नी श्री अरविन्द को घर पर ही पढ़ाना–लिखाना शुरू किया। दुएट लैटिन भाषा के अच्छे विद्वान थे। उन्होंने श्री अरविन्द को अंग्रजी एवं लैटिन पढ़ाना शुरू कर दिया। श्रीमती दुएट ने उन्हें इतिहास, भूगोल, गणित एवं फ्रेंच पढ़ाती थीं। श्री अरविन्द ने प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात खाली समय में बायावल तथा शैक्सपियर, शैली, कीट्स आदि की कृतियों का अध्ययन किया।

श्री अरविन्द इंग्लैण्ड में अरविन्दा एक्रायड घोष के नाम से जाने जाते थे। दुएट परिवार को सन् 1885 में आस्ट्रेलिया जाना पड़ा और अरविन्द लन्दन में सैंट पाल में भेज दिये गए। प्रधान अध्यापक डॉ. एफ. डलू वाकर ने अरविन्द को ग्रीक सिखाने का काम स्वयं सम्भाला और जल्दी–जल्दी ऊँची कक्षाओं में चढ़ा दिया। सन् 1884 से 1889 ई. तक पांच वर्ष तक वह सैंटपाल में रहे, जहां उन्होंने प्राचीन भाषाओं में काफी योग्यता प्राप्त की और अनेक पुरस्कार पाये। अपना बहुत सा समय उन्होंने पुस्तकें पढ़ने में बिताया।

डॉ. वाकर की यह स्वभावगत विशेषता थी कि वह प्रतिभाशाली छात्रों को तुरन्त पहचान लेते थे और उन पर अतिरिक्त ध्यान देते रहे। उन्होंने साहित्य में वटरवर्थ तथा इतिहास में वेडफोर्ड पुरस्कार प्राप्त किया। सेन्टपाल साहित्यिक समिति के क्रियाशील सदस्य बन गये। श्री अरविन्द घोष ने 5 नवम्बर 1889 में एक वाद–विवाद प्रतियोगिता में भाग लिया जिसका शीर्षक था 'स्विफ्ट के राजनैतिक विचारों में असंगति' विषय पर हुई वाक प्रतियोगिता में उन्हें बहुत प्रशंसा मिली थी।

तीनों भाईयों को आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था क्योंकि पिता से पैसा पहले अनियमित रूप से आता था और बाद में तो आना बिल्कुल बन्द हो गया था। श्री अरविन्द ने लिखा है– एक साल तक हमारा खाना सुबह को एक या दो सैडविच, दाल रोटी, मक्खन और चाय के प्याले तक सीमित रहा।

सन् 1890 में सैंट पाल का अन्तिम परीक्षा में उन्होंने प्राचीन भाषाओं के लिए 80 पौंड का वजीफा पाया और इससे वह कैम्ब्रिज के किंग्स कालेज में भर्ती हो सके। आई.सी.एस. की तैयारी के दिनों में भी अस्सी पौंड का वजीफा मिलता रहा, पर यह रकम तीनों भाईयों के लिये अपर्याप्त थी। इन कठिनाईयों के बाद भी वह अध्ययन में लगे रहे। साहित्य उनका मनपसन्द विषय था। कैम्ब्रिज में श्री अरविन्द के तीन क्रिया–कलाप थे– ट्राईपोस और आई.

सी.एस. परीक्षाओं की तैयारी, इण्डियन मजलिस नामक संस्था के कार्यों में सक्रिय भाग लेना और कवितायें लिखना।

इस प्रकार श्री अरविन्द के बाल्यकाल एवं प्रारम्भिक शिक्षा पर दृष्टिपात करते हैं तो ऐसा प्रतीति होता है कि उनका बाल्यकाल संघर्षों से पूर्ण था क्योंकि जिन परिस्थितियों में उन्होंने अपनी शिक्षा को चलाया था उसमें एक आम व्यक्ति द्वारा एक साथ चलाया जा सकना असम्भव है। अपने वजीफे के द्वारा सिर्फ वह अपना ही खर्च नहीं चलाते थे बल्कि अपने दोनों भाईयों का भी खर्च चलाते थे।

17.4 युवावस्था एवं क्रांतिकारी जीवन

डॉ. कृष्णधन घोष अपने तीनों पुत्रों को पूर्णतया अभारतीय बनाना चाहते थे, क्योंकि उन पर विदेशी शिक्षा का काफी प्रभाव पड़ा था। इसलिए उन्होंने मि. ड्रिएट को ये निर्देश दे रखे थे कि उनके बच्चें किसी भारतीय से न मिलने पाये। परन्तु शीघ्र ही अंग्रेज कर्मचारियों के व्यवहार से उन्हें यह आभास हो गया कि ब्रिटिश अधिकारी भारतीयों के प्रति वफादार नहीं है। भारत में जो उन्होंने डॉ. के रूप में काम किया था तो उनके मन से अंग्रजो का सारा मोह दूर हो गया। वास्तव में वह अपने पुत्रों को 'द बंगाली' नामक समाचार पत्र की कतरने भेजने लगे। जिनमें वह ऐसे समाचारा पत्रों पर भी निशान लगा देते थे जिनमें अंग्रजों द्वारा भारतीयों के प्रति किये गये व्यवहार और अपमान के विवरण होते थे।

इन प्रत्रों ने ही पहली बार श्री अरविन्द के ध्यान और रूचि को भारत की राजनीति की ओर मोड़ा। इस रूचि ने आगे बढ़कर उनमें अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न करने का विचार पैदा किया, यद्यपि वह अपने देश के विषय में वस्तुतः अनभिज्ञ ही थे। कैम्ब्रिज पहुँचने पर ' इण्डियन मजलिस' नामक एक संस्था से उनका सम्पर्क हुआ, जिसकी स्थापना 1891 में हुई थी। मजलिस के कार्यक्रमों में उन्होंने सक्रियता से भाग लिया और उसके बाद–विवादों में भाग लिया और ऐसा लगता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध उन्होंने अनेक क्रांतिकारी भाषण भी दिये। कैम्ब्रिज के कुछ अधिक जोशीले भारतीय युवकों ने एक गुप्त संस्था बनायी थी, जिसका नाम ' द लोटस एण्ड डैगर' (कमल और कटार) रखा गया था। श्री अरविन्द अपने भाईयों सहित इस संस्था में सम्मिलित हो गये। श्री अरविन्द आई. सी.एस. की परीक्षा में दाखिल हुऐ, जो कि उनके पिता की हार्दिक इच्छा थी। परीक्षा में उन्होनं बिना किसी ट्यूशन के 11 वॉ स्थान प्राप्त किया था प्राचीन भाषाओं में सर्वाधिक अंक प्राप्त किये इन्हें 80 पौंड का छात्रवृत्ति भी मिलने लगी थी। परन्तु ये राशि कैम्ब्रिज में अध्ययन के लिये पर्याप्त नहीं थे।

20 नवम्बर 1892 इंडियन सिविल सर्विसेज में 11 वां स्थान प्राप्त कर उसकी सभी त्रैमासिक परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए लेकिन घुड़सवारी में पास न होने के कारण नौकरी के योग्य नहीं पाये गये। जैसा कि उन्होंने कहा है ' उनका आई.सी.एस. की ओर कोई झुकाव नहीं था और वह इस बन्धन से छुटकारा पाने का उपाय ढूंढ़ रहे थे। अपने आप वह सर्विस

खोना नहीं चाहते थे क्योंकि घर वाले ऐसा करने नहीं देते, अतः उन्होंने इससे मुक्ति पाने की तरकीब निकाली और घुड़सवारी में असफल हो गये।'

17.5 श्री अरविन्द का भारत आगमन

बड़ौदा के महाराजा सायाजी राव गायकवाड़ इंग्लैण्ड गये हुये थे। वह भारत के राजाओं में सर्वाधिक प्रबुद्ध और प्रतिभा सम्पन्न राजा थे और अपने कर्मचारियों का सावधानी और विवेक से चुनाव करने के लिए प्रसिद्ध थे। माहाराजा ने श्री अरविन्द का इन्टरव्यू लिया और परिणामस्वरूप श्री अरविन्द बड़ौदा राजय की सेवा में लिये गये। इस प्रकार भारत आने के पूर्व ही उनकी नियुक्ति हो गयी।

चौदह वर्ष तक विदेश में रहकर 1893 में श्री अरविन्द भारत लौट आये और नौकरी करने बड़ौदा पहुँचे। वह 1907 तक लगातार तेरह वर्ष वहाँ नौकरी करते रहे। जब तक श्री अरविन्द बड़ौदा की नौकरी में रहे, प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में भाग नहीं ले सके थे। यद्यपि बाद के वर्षों में राष्ट्रीय गतिविधियों में भाग लेने के लिये वह लम्बी–लम्बी छुट्टियाँ लेते थे। उन्होंने प्रच्छन्न रूप से राजनीतिक गतिविधियों का संचालन करना उचित समझा ताकि प्रकट रूप से उनका नाम भी मालूम न हो सके।

बड़ौदा में दो–तीन सरकारी पदों पर काम करने के पश्चात् उनको वहाँ के कालेज में फ्रांसीसी भाषा का प्रोफेसर बना दिया गया। कॉलेज में भी वे निरन्तर उन्नति करते गये और सन् 1906 में जब राजनैतिक कार्य करने के लिये उन्होंने कॉलेज को छोड़ा तब वे वाइस प्रिंसिपल के पद पर काम कर रहे थे। उन्हें उस समय 750 रू मासिक वेतन मिल रहा था जो आज के सापेक्ष लगभग 95000 (पंचानवे हजार रूपये) था। बड़ौदा पहुंचते ही अरविन्द भारतीय भाषाओं संस्कृति, इतिहास और धर्म के अध्ययन में मग्न हो गये वह पाश्चात्य परम्परा के प्रकाण्ड थे ही। उन्होंने हिन्दी का भी अध्ययन किया। उन्होंने संस्कृत भाषा के माध्यम से बंगला भाषा ही नहीं सीखी बल्कि अंग्रजी भाषा के माध्यम से संस्कृत सीखी। बड़ौदा में सभी साहित्यों का ऐतिहासिक तुलनात्मक अध्ययन करने के उपरान्त उन्होंने वेदों के महत्व को अनुभव करना आरम्भ कर दिया था। पारस्परिक पाश्चात्य बौद्धिक परम्परा में रंगे श्री अरविन्द के मन पर भारतीय दर्शन के मूल स्त्रोत के अध्ययन का गहरा असर पड़ा।

बड़ौदा रहते हुए भी बंगाल के क्रांतिकारी आन्दोलन के बौद्धिक नेता श्री अरविन्द ही थे। बड़ौदा राज्य की नौकरी 8 फरवरी 1893 को स्वीकार की थी और से वहाँ से 18 जून 1907 को त्यागपत्र देकर वह सेवामुक्त हुये। इस तरह बड़ौदा में उनका कुल आवास काल 13 वर्ष 5 महीने और 18 दिनों का रहा जो सम्भवतः उनके इंग्लैण्ड प्रवास के लगभग ही था।

17.6 वैवाहिक जीवन

सन् 1907 में श्री अरविंद का विवाह राँची, बिहार के निवासी श्री भूपालचन्द्र बोष की कन्या मृणालिनी देवी से हो गया। यद्यपि अपनी पत्नी के साथ श्री अरविन्द का व्यवहार सदैव प्रेम पूर्ण रहा, पर ऐसे असाधारण व्यक्तित्व वाले महापुरूष की सहधर्मिणी होने से उसे सांसारिक दृष्टि से कभी इच्छानुसार सुख की प्राप्ति नहीं हुई। प्रथम तो राजनीतिक जीवन की हलचल के कारण उन्हें पति के साथ रहने का अवसर कम ही मिल सका फिर आर्थिक दृष्टि से भी श्री अरविन्द का जीवन जैसा सीधा–सादा था, उसमें उसे कभी वैभवपूर्ण जीवन के अनुभव करने का अवसर नहीं मिला, केवल जब तक वे बड़ौदा में रहे, वह कभी–कभी उनके साथ सुखपूर्वक रह सकीं। लेकिन जब समय तथा परिस्थितियों की माँग के अनुसार पॉण्डिचेरी जाकर रहने लगे तो उनकी बढ़ी हुई योग–साधना की दृष्टि से पत्नी का साथ निरापद नहीं था तो भी कर्तव्य भावना से उन्होंने पॉण्डिचेरी आने को कह दिया पर उसी अवसर पर इनफ्लुएंजा की महामारी से आक्रमण से उनका देहावसना हो गया।

श्री अरविन्द ने प्रारम्भ में ही मृणालिनी को अपने तीन पागलपन के बारे में बताया था–

1. मुझे जो ईश्वर ने दिया है उसमें से केवल निर्वाह हेतु अपने पास रखकर बाकि सब दुसरों को देना चाहता हूँ यदि ईश्वर का अस्तित्व सत्य है तो।
2. मैं ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहता हूँ।
3. मैं भारत को अपनी माँ मानता हूँ और उसे पूजना चाहता हूँ। मेरे पास जो कुछ भी वह भारत माता का ही है।

ये तीन पागलपन अरविन्द के जीवन में अत्यन्त उल्लेखनी प्रसंग है।

17.7 राजनैतिक जीवन से अध्यात्मिक जीवन में प्रवेश

श्री अरविन्द की जीवन यात्रा में अब राजनैतिक क्रान्ति की अग्नि प्रज्वलित होने लगी। उनके व्यक्तित्व में भरे हुए साहस, कौशल तथा देश प्रेम की भावना इस घटनाओं से मुखरित होते हैं।

30 अप्रैल को एक घोड़ा गाड़ी पर यह समझ कर बम फेंका गया कि उसमें किंग्स फोर्ड बैठे हैं जबकि मुजफ्फरपुर नगर कल्ब से दो महिलायें अपने घर जा रही थीं। मि. फोर्ड तो बच गये पर दोनों महिलाओं की मृत्यु हो गई। इस उपद्रव से क्षुब्ध होकर ब्रिटिश सरकार ने 2 मई को कलकत्ता में उन अनेक स्थानों की तलाश करवायी जिन पर पहले से ही निगरानी की जा रही थी। ये विभिन्न स्थान थे 32 मुरारी पुक्कुर गार्डन, 15 गोपी मोहन दत्ता लेन, 33/4 राजानावाक्रिस्ता स्ट्रीट, 430/2 तथा 134 हैरीसन रोड, 48 ग्रे स्टीट रोड इत्यादि। इन सबमें श्री अरविन्द का कलकत्ता का निवास स्थान सबसे ऊँचा था। बाग में श्री अरविन्द घोष सहित 13 षड्यन्त्रकारियों को पकड़ा गया।

8 मई प्रातः 5 बजे अरविन्द को उसके घर से गिरफ्तार कर लिया गया। जिसका वर्णन उन्होंने कारा–कहानी नामक पत्र में किया था। एक दिन हवालात में रहने के पश्चात

श्री अरविन्द को अलीपुर जेल भेजा गया। अरविन्द को जमानत में भी नहीं छोड़ा गया। 19 अगस्त 1908 मुकदमा सेशन के सुपुर्द किया गया पैसा खत्म होने के कारण अरविन्द के वकील ने पैरवी करनी छोड़ दी। ऐसे में चितरंजन दास नामक वकील ने निःशुल्क मुकदमें की पैरवी की।

इस मुकदमें में 206 साक्षियों के बयान लिये गये 4000 दस्तावेज पेश किये गये बम, बन्दूक, गोला आदि विस्फोटक विशैले अम्ल और अन्य प्रस्फोटक मिलाकर 5000 वस्तुऐ साक्ष्य सामग्री के रूप में प्रस्तुत की गई थी मुकदमा सेशन जज की बीच कम्पाट की अदालत में था जो कि कैम्ब्रिज में अरविन्द के सहपाठी थे ग्रीक की परीक्षा में उनके बाद दूसरा स्थान पा सके थे। 136 दिन तक सुनवाई चली 9 दिन तक चितरंजन दास ने भाषण दिया जो कि अद्वितीय था। 6 मई 1909 को अदाल ने अपना निर्णय दिया जिसमें अरविन्द को बरी कर दिया गया।

श्री अरविन्द के जीवन को भी अलीपुर कारागार के 'आश्रमवास' ने एक नयी दिशा दी। जेल में श्री अरविन्द का योगाभ्यास, दैवी अनुभूतियाँ, आत्मचिन्तन और गीता उपनिषद् पर विचार चलता रहा। वहां ध्यानस्थ मुद्रा में उन्हें विवेकानन्द की वाणी भी सुनाई दी। अपने सब अनुभवों का विवरण श्री अरविन्द ने बाद में पांडिचेरी में साधकों के साथ बातचीत करते हुए समय–समय पर सुनाया था। 14 मई 1909 को उन्होंने देशवासियों के नाम एक पत्र में कृतज्ञता व्यक्त की और लिखा कि जिन लोगों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मेरे प्रवास के दौरान मेरी मदद की हैं, मैं उनका अभारी हूँ। यदि देश के प्रति मेरे प्रेम ने मुझे खतरे में डाला था तो देशवासियों के प्रेम ने मुझे उस खतरे से सुरक्षित निकाल लिया है।

30 मई 1909 को श्री अरविन्द में उत्तरपाड़ा अभिभाषण में एक जनसभा को सम्बोधित किया। उनका यह उत्तरपाड़ा अभिभाषण बहुत प्रसिद्ध है। अपने जेल प्रवास की अनुभूतियों का विवरण और भावी कार्यक्रम की रूपरेखा का संकेत करते हुए श्री अरविन्द ने उत्तरपाड़ा में कहा था– भारत का उठना दूसरे देशों की तरह नहीं है। वह अपने लिये नहीं उठ रहा है कि दुर्बलों को कुचले। वह संसार पर उस शाश्वत प्रकाश को फैलाने के लिए उठ रहा है, जो उसे सौंपा गया है। भारत का अस्तित्व सदा से ही मानवता के लिए रहा है, अपने लिए नहीं, अतः यह आवश्यक है कि वह महान– बने अपने लिए नहीं मानवता के लिए।

बाद में भारत के वायसराय लार्ड मिन्टों के अरविन्द को देश निकाला दिया जाने का प्रस्ताव ठुकरा दिया गया। अरविन्द ने एक दिन की घटना को बताते हुए कहा है कि– मै आगामी घटनाओं के बारे में अपने मित्रों की जोशपूर्ण टिप्पणियाँ सुन रहा था कि मुझे, ऊपर से मेरे सुपरिचित स्वर में एक आज्ञा मिली, केवल तीन शब्दों में 'चन्द्रनगर को जाओं'। बस, कोई 10 मिनट के अन्दर में चन्द्रनगर जाने वाली नाव में सवार था। उसके बाद उसी 'आज्ञा' के अनुसार मैं चन्द्रनगर भी छोड़कर 4 अप्रैल 1910 को पॉडिचेरी जा पहुँचा, पॉडिचेरी पहुँच कर श्री अरविन्द ने राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेना छोड़ दिया। वह पुनः भार आने के उद्देश्य से गये थे परन्तु मानव जाति के लिए 19वीं शताब्दी में होने

वाली भौतिक क्रान्ति के साथ वह बौद्धिक क्रान्ति की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे। उनकी दृष्टि में भारत अब भी अपने गौरवमय अतीत में मानवता के भविष्य में कुंजी लिये हुए था। अतः उन्होंने अपनी शक्ति को राजनीतिक गतिविधियों से हटाकर इस दूसरी दिशा में लगा दिया। 1905 से 1910 तक की अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों के परिणामों पर प्रकाश डालते हुए 1914 में हिन्दू पत्र के संवाददाता को बताते हुए उन्होंने कहा–1905 से 1910 तक की गतिविधयों की उपलब्धि भारत में संपूर्ण मानवता से अलग राष्ट्रीय स्तर को प्राप्त करना था। उस आन्दोलन ने उस कार्य की पूर्ति कर दी। भविष्य के लिए एक अच्छी नींव का निर्माण कर दिया। वास्तव में कहा जा सकता है कि 1910 तक वह संकुचित अर्थवाली राजनीति से ऊपर उठ गये थे। इस तरह श्री अरविन्द के रानीतिक दर्शन की टेक, आध्यात्मिक राष्ट्रवाद–अन्त में उनको यहां तक ले गई कि वह रानीति को ही त्यागकर आध्यात्मिक उन्नति के माध्यम से अन्तिम समाधान की खोज में लग गए केवल अपने लिए नहीं, बंगाल के लिये नहीं, भारत के लिये नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिये। 1910 से 1950 तक उनके जीवन के अन्तिम चालीस वर्ष इस महान और उच्च आदर्श को यथाशीघ्र प्राप्त करने के प्रयत्न में ही बीते। 18 वर्ष की उम्र में श्री अरविन्द ने 'हकोवा' नामक ग्रीक अनुच्छेद का अनुवाद किया था। अक्सर वह ग्रीक और लैटिन भाषा में लिखा करते थे। इंग्लैण्ड में लिखी गयी उनकी प्रारम्भिक कविताओं के संग्रह का नाम 'सांग्स टू मर्टिला' है।

17.8 पत्रकारिता के क्षेत्र में योगदान

श्री अरविन्द ने पत्रकारिता के क्षेत्र में आश्चर्य जनक ख्याति प्राप्त की थी। उनका एक–एक लेख ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि शीघ्र ही ब्रिटिश शासन की नींव भारत से हिलने वाली है।

1886 में लन्दन के स्कूल से ही उन्होंने कविताऐं लिखनी शुरू कर दी थीं, 64 वर्ष की आयु में 1950 में उन्होंने सावित्री महाकाव्य ग्रन्थ का प्रकाशन किया।

अलीपुर केन्द्रीय जेल के अनुभव पर कारा कहानी नामक लेख बंगाली भाषा में लिखा जहाँ पर वे 1908–1909 तक बन्दी रहे थे।

1893–1909 तक समस्त लेख बंगाली में ही होते थे। इसके अतिरिक्त अपने जीवन के 78 वर्ष के दौरान अंग्रेजी भाषा में ही लेख लिखे थे। 1893–94 के दौरान उन्होंने बहुत से लेख एक सामान्य शीर्षक पुरानों के लिये नये दीप के अन्तर्गत इन्दुप्रकाश बम्बई के मराठी पत्र को दिए। 1905 में उन्होंने बंगाल में बन्दे मातरम् पत्र का सम्पादन भी किया। वीरेन्द्र कुमार घोष द्वारा प्रकाशित बंगाल के प्रसिद्ध क्रांतिकारी साप्ताहिक 'युगान्तर' में भी अरविन्द के पत्र छपते थे।

अलीपुर बम केस से मुक्त होने के बाद 9 जून 1909 अरविन्द ने साप्ताहिक पत्रिका 'कर्मयोगिनी' का पहला अंक प्रारम्भ की। 1909 में साप्ताहिक पत्रिका धर्म जो की बंगाली में भी प्रारम्भ थी।

अरविन्द ने 1906–1910 तक 5 वर्ष तक सम्पादन कार्य किया। यत्र–तत्र वह विभिन्न पत्रिकाओं में बिना अपना नाम दिये हुऐ सम्पादकीय देते रहे। अपने लेख और पत्रिकाओं के माध्यम से अरविन्द का स्वरूप सामने आया उसने उन्हें राष्ट्रीय पत्रकारों की प्रथम श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। उनका लोहा अंग्रजी सरकार के पत्र और प्रशासन भी मानने लगे।

श्री अरविन्द एक राष्ट्रीय पत्रकार के रूप में अग्रणी और सर्वमान्य ही नहीं, वह प्रतीक के रूप में है। उन्होंने अपने लेखों और पत्रकारिता के माध्यम से नवचेतना को जाग्रत की ही, नवयुवकों और देश को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। अरविन्द द्वारा लिखित प्रमुख ग्रन्थ के नाम है– दिव्य जीवन, योग समन्वय, वेद रहस्य, गीता प्रबन्धन, केन उपनिषद्, ईषोपनिषद्, योग के आधार, मानव एकता का आदर्श, मानव विकास चक्र, भावी कविता दिसम्बर, द सैसांज इन इण्डिसा, इज इण्डिजा सिविलाइज्ड, भारतीय संस्कृति की तर्क बुद्धि परक समीक्षा, भारतीय संस्कृति के बचाव में आदि।

17.9 यौगिक एवं साधनात्मक जीवन

श्री अरविन्द जब भारत आय तब वे आध्यात्मिक विषयों से बिल्कुल अनजान थे। हिन्दू धर्म संस्कति से उन्हें जरा भी परिचय नहीं था। श्री अरविन्द फरवरी 1893 में भारत लौटे। भारत की धरती पर पांव रखते ही श्री अरविन्द ने अनुभव किया के उन पर एक गंभीर शांति का अवतरण हुआ है और वह शांति उन्हें चारों ओर से लपेटे रहती थी। स्वयं उन्होंने एक चर्चा में बताया था "भारत में आने के बाद से मेरा जीवन और मेरा योग दोनों ही, एक साथ लौकिक और परलौकिक रहे हैं, अपोलो बंदरगाह पर पैर रखते ही मुझे आध्यात्मिक अनुभूतियां होने लगी थीं लेकिन ये संसार से अलग ले जाने वालीं न थीं।" यह 1893 का वर्ष भारतवर्ष के लिए शुभ वर्ष सिद्ध हुआ। क्योंकि इसी वर्ष में श्री अरविन्द ने भारत में पदार्पण किया था, इसी वर्ष में स्वामी विवेकानन्द शिकागों के सर्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने के लिए अमेरिका गये और इसी वर्ष गांधीजी भारतीयों के मामले को हाथ में लेकर दक्षिण अफ्रीका गये और इसी वर्ष भगिनी निवेदिता भारतवर्ष आयी।

एक समय श्री अरविन्द घोड़ा–गाड़ी में बैठकर कहीं जा रहे थे। घोड़ा–गाड़ी कमाटी बाग के पास आई तब उनके अंतर में अचानक ऐसा लगा कि घोड़ा एक कदम आगे बढ़ा तो दुर्घटना हो जायेगी। उनके अंतर में इस दुर्घटना का दृश्य एक क्षण में स्पष्ट हो गया, परंतु उनके आश्चर्य के बीच, उनके अंदर से तेजोमय पुरूष बाहर आया और घोड़े की लगाम हाथ में लेकर खींच ली, घोड़े पर काबू कर लिया और घोड़ा रूक गया। वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सका।

श्री अरविन्द का भारत में आगमन ही आध्यात्मिक अनुभूति से हुआ। इस सपरम शांति के अपने भीतर अवतरण के साथ एक दूसरी अनुभूति भी हुई। दार्जलिंग के स्कूल में जिस तमस ने घेर लिया था और जो पूरे इंग्लैण्ड में निवास के दौरान समया रहा। वह इस शान्ति के आते ही चला गया।

शरीर छोड़कर चली गयी आत्माओं का जगत में से बुलाकर उनके साथ संपर्क हो सकता हैं इसका अनुभव भी श्री अरविन्द को बड़ौदा में हुआ। प्लेन्चेट के प्रयोग द्वारा टेबल पर टकोर करके, उसके द्वारा प्रष्नों के उत्तर प्राप्त करते थे। वे प्लेन्चेट द्वारा आत्माओं को बुलाते थे। एक बार श्रीरामकृष्ण परमहंस की आत्मा को बुलाया गया था। वे कुछ बोले नहीं थे, जाते–जाते उन्होंने मात्र इतना कहा था, 'मंन्दिर बनाओ–मन्दिर बनाओ'। उस समय भवानी मन्दिर की योजना सबके मन में चल रही थी। इसलिए इन शब्दों का अर्थ 'भवानी' मन्दिर का निर्माण करों ऐसा सबने लिया, परंतु वर्ष बाद यौगिक सिद्धियाँ प्राप्त करने के बाद श्री अरविन्द में इन शब्दों का सही अर्थ करते हुए बताया कि 'मन्दिर बनाओ', इसका अर्थ है कि तुम अपने अंदर माँ का मन्दिर बनाओ। अपने आप को ऐसा रूपान्तरिक कर दो कि वह माँ के मन्दिर का रूप बन जाये।

अनन्त ब्रह्म के साक्षात्कार की अनुभूति भी उनके जीवन में अनायास उत्तर आयी थी। उस समय वे महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ के साथ कश्मीर गये थे, तब उन्हें निर्वाण या ब्रह्म के विषय कोई ज्ञान नहीं था। उन्होंने शास्त्रों का ऐसा कोई अध्ययन भी नहीं किया था फिर भी तख्त–ए–सुलेमान की टेकरी, जिसे शंकर आचार्य की टेकरी भी कहते हैं उसी पर अनन्त ब्रह्म का अनुभव हुआ। इस अनुभूति के विषय में उन्होंने शिष्यों से वार्तालाप में कहा था, काश्मीर में तख्त–ए–सुलेमान की टेकरी पर शून्य में सभी वस्तुएँ लोप होने लगीं, मैं स्वयं और समग्र विश्व एक सर्व–व्यापी अगम्य शून्य में विलीन हो रहे हैं, ऐसा मुझे लगा था। इस अनुभव का व्यक्त करते हुए उन्होंने अद्वैत नाम की कविता भी लिखी थी।

इसी प्रकार पत्थर की मूर्ति में भगवान हो सकते हैं, ऐसा पहले श्री अरविन्द को स्वीकार नहीं था। परंतु चांदौर–करनाली में एक छोटे काली मन्दिर में गये वहाँ उन्होंने माँ काली की पाषाण प्रतिमा की ओर देखा तो वह मात्र पाषाण प्रतिमा न थी, अपितु साक्षात माँ काली थीं। इस आध्यात्मिक अनुभव से मूर्तिपुजा के विषय में उनकी शंका निर्मूल हो गई।

तो इस प्रकार अनायास हुए सब आध्यात्मिक अनुभवों ने श्री अरविन्द के यूरोपियन संस्कार संपन्न मानस में आध्यात्मिक जगत के प्रति आकर्षण जगा दिया। उनके अंतर को मोड़ दी जिसने उन्हें योग के मार्ग पर सहज रूप में अतंतः ला ही दिया।

17.10 श्री अरविन्द की मौन साधना

इस आध्यात्मिक अनुभूतियों ने श्री अरविन्द को योग के गहरे आयामों को जानने के लिए प्रेरित किया, जिससे योग में श्री अरविन्द की रूचि जागी। श्री अरविन्द जगत का त्याग करके योग मार्ग पर जाने के बिल्कुल भी इच्छुक न थे। उस समय तो उनका एकमात्र ध्येय भारत की स्वतंत्रता था और इस कार्य के लिए उन्हें आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता महसूस होने लगी थी। इस बात के लिए तब वे और अधिक प्रेरित हुए, जब उनके छोटे भाई वीरेन्द्र, भवानी मन्दिर की स्थापना के लिए विन्ध्य के जंगल गये थे। वहाँ से विशैला बुखार लेकर बड़ौदा आये। यह बुखार किसी भी प्रकार से उतर नहीं रहा था।

उसी समय एक नागा संन्यासी श्री अरविन्द के घर आया। वीरेन्द्र की बिगड़ी स्थिति में वहीं सोये पड़े थे तभी नागा सन्यासी की दृष्टि उन पर पड़ी और श्री अरविन्द से पूछा कौन सोया है। तब श्री अरविन्द ने बताया कि वीरेन्द्र के स्वास्थ्य की स्थिति काफी चिंताजनक है। तब नागा साधु ने एक प्याला भर जल मंगाया तथा उसे मंत्र शंक्ति से अभिमंत्रित किया और उसे वीरेन्द्र को पीने के लिए दे दिया, तत्पश्चात वीरेन्द्र का बुखार उतर गया। इस घटना से श्री अरविंद ने अनुभव किया कि योग शक्ति का व्यवहार में उपयोग कर सकते हैं तो क्यों न इस शक्ति का प्रयोग देश की स्वतंत्रता के लिए किया जाये।

श्री अरविन्द ने विधिवत रूप से योग साधना आरंभ करने का संकल्प लिया उस समय प्राणायाम को विशेष योग पद्धति के रूप में जाना जाता था। तो फिर श्री अरविन्द ने अपनी योग साधना का प्रारंभ प्राणायाम से ही किया। उनके मित्र बाबाजी देवधर इंजीनियर स्वामी ब्रह्मानन्द के शिष्य थे। वे प्राणायाम के सत्त अभ्यासी थे, श्री अरविन्द ने इनसे ही प्राणायाम की विधित पद्धति सीख ली थी। वे प्रतिदिन लगभग पांच घण्टे प्राणायाम करते थे। सुबह तीन घंटे तथा शाम को दो घंटे अभ्यास किया करते थे इस प्राणायाम की शक्ति का अनुभव बताते हुए वे बताये थे– "मेरा अनुभव है कि इससे बुद्धि और मस्तिष्क प्रकाशमय बनते हैं। जब मै बड़ौदा में प्राणायाम का अभ्यास करता था तो प्रतिदिन 5–6 घंटे करता था। तब मन में बहुत प्रकाश और शान्ति छा गई हो ऐसा लगता था। मैं उस समय कविता लिखता था पहले रोग 5–6 पंक्तियाँ और महीनें में दो सौ पंक्तियाँ लिखी जाती थी। प्राणायाम के बाद में दो सौ पक्तियाँ आधे घंटे में लिख सकता था। मेरी स्मरण शक्ति पहले मंद थीं प्राणायाम के अभ्यास के बाद जब प्रेरणा होती तब सभी पंक्तियाँ अनुक्रम के अनुसार याद रख लेता था। साथ ही मुझे मस्तिष्क के चारों ओर विद्युतशक्ति का चक्र अनुभव होता था। प्राणायाम के करने के बाद अथक परिश्रम करने की शक्ति भी आ गई थी। पहले बहुत काम करने पर थकान लगती थी प्राणायाम से शरीर स्वस्थ हो गया। एक बात और प्राणायाम करते समय मच्छर बहुत हो तो भी मेरे पास फटकते भी नहीं थे"। अब अनुभूतियां इतनी प्रगाढ़ होने लगीं कि विश्वास हो गया कि हिन्दू धर्म का मार्ग सत्यान्वेषण का ही मार्ग है तथा उन्होंने माँसाहार का भी त्याग कर दिया तथा एक माह के भीतर ही सूक्ष्म जगत आंखों के सामने प्रकट होने लगा। अर्न्तदृष्टि जाग्रत होने लगी।

30 दिसम्बर 1907 में श्री अरविन्द बड़ौदा आये और यही पर उनकी मुलाकात महाराष्ट्र के सिद्ध योगी श्री विष्णु भास्कर लेले से हुई। गिरनार पर्वत पर उन्होंने कठोर साधना की थी। भगवान दत्तात्रेय की साधना करते हुए उन्हें भगवान दत्तात्रेय के बाल स्वरूप के दर्शन हुए थे तथा योग विद्या भी उनकी कृपा से ही मिली थी। वे वीरेन्द्र को नवसारी में मिले थे। बड़ौदा में खासीराव यादव के घर पर श्री अरविन्द तथा योगी लेले की मुलाकत हुई वहां दोनों ने लगभग आधे धंटे पर बातचीत की तथा श्री अरविन्द को उन्होंने कहा कि साधना में निश्चित परिणाम प्राप्त करने के लिए तुम्हें राजनीतिक प्रवृतियों को छोड़ना पड़ेगा। तब श्री अरविन्द ने कुछ दिनों के लिए राजनीतिक प्रवृत्ति बन्द कर दी, और उनकी योगसाधना

नये आयामों की ओर मुड़ चली । इस विषय में श्री अरविन्द ने स्वयं लिखा है– 'योगी लेले ने मुझसे कहा, बैठ जाओ, देखा और तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारे विचार बाहर से तुम्हारे भीतर आते हैं। उनके घुसने से पहले ही उन्हें दूर फेंक दो, मैं बैठ गया और देखा, यह जानकर चकित रह गया कि सचमुच बात ऐसी ही है, मैंने स्पष्ट रूप से देखा और अनुभव किया कि विचार पास आ रहा है, मानों सिर के भीतर से या ऊपर से घुसना चाहता हो और उसके भीतर आने के पूर्व ही मैं स्पष्ट रूप में उसे पीछे धकेल देने में सफल हुआ। तीन दिन में वस्तुतः एक ही दिन में मेरा मन शाश्वत शांति से परिपूरित हो गया– वह शांति अभी तक विद्यमान है।' इस प्रकार उन्होंने बताया की किस प्रकार अकल्पनीय ढंग से मुझे निर्वाण का अनुभव हो गया, बहुत लम्बे समय तक यह अनुभव मेरे अंदर रहा। मुझे लगा कि अब मैं चाहूँ तो भी उससे छूट नहीं सकता था। दूसरी प्रवृत्तियों में लगा रहने पर भी यह अनुभव मुझमें स्थायी रूप से बना रहा। इस अनुभव से श्री अरविन्द का मानस जगत समाप्त हुआ तथा ब्रह्म जगत अब उद्घटित हो गया। अब उनकी विचार करने की पद्धति ही बदल गयी। तीन ही दिन में चेतना इतनी परिवर्तित हो जायेगी, इसका ध्यान न लेले को था ना ही स्वयं श्री अरविन्द को। इस बारे में श्री अरविन्द ने लिखा है– " प्रथम फल था अत्यंत शक्तिशाली अनुभूतियों की एक श्रृंखला और चेतना में कुछ ऐसे आमूल परिवर्तन, जिनकी लेले ने कल्पना भी न की थी और जो मेरे निजी विचारों के सर्वथा विपरीत थी, क्योंकि उन्होंने मुझे विस्मय जनक तीव्रता सहित स्पष्ट दिखा दिखा दि कि यह संसार परब्रह्म निराकार सर्वव्यापकता में चलचित्रवत् शून्य आकृतियों की लीला के समान है।"

वेदान्त दर्शन की चरमावस्था की साधना का प्रथम सोपान बना परंतु उन्हें एक प्रकार की समस्या का भी अनुभव हुआ क्योंकि ज्योंही वे तीन दिन बाद बाहर आये उन्हें मुम्बई के राष्ट्रीय पक्ष की ओर से भाषण देने का निमंत्रण मिला, परंतु श्री अरविन्द की समग्र चेतना नीरव ब्रह्म के साथ एकाकार थी, वे बोलते भी तो क्या बोलते? यह समस्या श्री अरविन्द ने योगी लेले के समक्ष रखी। उन्होंने कहा कि सभी जाकर श्रोताओं को नारायण मानकर नमस्कार करो और फिर ऊपर से आने वाली प्रेरणा के लिये शांत होकर प्रतीक्षा करों, तुम्हें जो बोलना होगा वह वाणी अपने आप उतर आयेगी। फिर इसके बाद श्री अरविन्द ने जो भी व्याख्यान दिये वे सब इसी प्रकार ऊर्ध्व से उतर आयी। योगी लेले और श्री अरविन्द दोनों में से किसी को यह पता नहीं था कि परमात्मा का महान कार्य करने की पूर्व तैयारी का तो यह प्रथम चरण है। अब श्री अरविन्द चौबीसों घंटे ध्यान की स्थिति में रहते थे और सारे कार्य अंतर्यामी के आदेश से होने लगे। श्री अरविन्द ने अपने इस बदली हुई स्थिति के बारे में एक पत्र में मृणालिनी को बताया था–" तुमसे मिलने के लिये 4 जनवरी का दिन निश्चित था, पर मैं आ नहीं सका, यह मेरी अपनी इच्छा से नहीं हुआ हैं जहाँ भगवान मुझे ले जाना चाहते हैं, वहाँ मुझे जाना पड़ता है, उस समय मैं अपने काम से नहीं गया था, भगवान के काम से गया था, मेरे मन की दशा एकदम बदल गयी है अभी तो इतना ही कह सकता हूँ कि मैं मेरा स्वामी नहीं हूँ। भगवान मुझे जहाँ ले जाएं वहां कठपुतली की

तरह जाना है। भगवान जो कुछ करवाना चाहते हैं मुझे कठपुतली की तरह करना है। अब से मैं बिल्कुल मुक्त नहीं हूँ। अब से जो कुछ कर रहा हूँ उसका आधार मेरे संकल्प से नहीं परंतु यह सब भगवान की आज्ञा से हो रहा है।"

ई.सं. 1910 से 1914 तक का समय श्री अरविन्द की मौन साधना का काल था। श्री अरविन्द ने सन् 1908 में योग में पद्धतिपूर्वक प्रवेश किया था। ई.सं. 1914 तक छः वर्ष के अन्तराल में उनके समझ नई चेतना का अवतरण की साधना का कार्य स्पष्ट हो गया।

उत्कट साधना के लिए श्री अरविन्द 1926 में एकान्त में चले गए थे। 1926 से 1938 तक का बारह वर्ष के उनके जीवन का कालखण्ड अभेद्य था। उनके सेवक श्री चंपकलला और श्री माता जी के सिवाय उस एकांत में किसी का प्रवेश नहीं था। दुर्घटना जिसमें उनके जांघ की हड्डी टूट गई थी, कुछ शिष्यों का उनके करीब जाने का अवसर मिला था। छः माह में वे पूर्ण स्वस्थ हो गए थे किन्तु प्राणपण से सेवा करने वाले शिष्यों को वह विदा नहीं कर सके। 1938 से 1950 दूसरा बारह वर्ष का समय श्री अरविन्द की साधना काल का अनोखा समय था। सुबह नौ, दस बजे तक वे हिन्दू समाचार पत्र पढ़ते थे और फिर दोपहर तीन, चार बजे तक लम्बा विराम होता था, जिसमें वे विशेष योग साधनायें करते थे। वे अक्सर आराम कुर्सी पर या बिस्तर या खुली आँखों से जाग्रत समाधि में करते थे।

17.11 श्री माँ का आगमन

पॉल रिशार फ्रेन्च इण्डिया की काउन्सिल का चुनाव लड़ने के लिए पॉण्डिचेरी आये। उनके साथ उनकी पत्नी थी। स्टीमर जैसे–जैसे पॉण्डिचेरी की ओर गति कर रहा था वैसे–वैसे मीरा के अन्तर से प्रभु की प्रार्थना और अधिक उत्कट होती जा रही थी। उसके ह्रदय में अवर्णनीथ आनन्द और परमशान्ति का अनुभव हो रहा था। स्टीमर अब पॉण्डिचेरी से दस समुद्री मील दूर था, तब मीरा को एक हल्के तेजोमय वातावरण का स्पर्श हुआ। इस अनुभव के विषय में श्री माताजी ने बताया था– 'मैं जब यहां पहली बार आयी थी तब मुझे श्री अरविन्द की साधना का वातावरण का अनुभव स्थूल रूप से दस समुद्री मील दूर से हुआ था।'

वर्षों से जिसकी प्रतीक्षा थी वह धन्य पल आ ही गया। जीवन की इस पुण्य घटना के बारे में बताते हुए श्री माँ ने बताया– 'जैसे ही मैंने श्री अरविन्द को देखा कि तुरन्त वहीं सुपरिचित व्यक्ति कि जिसकों मैं श्री कृष्ण कहती थी, यही है, यह मैं पहचान गई। मेरा स्थान और मेरा कार्य उनके साथ भारत में है, इस बात का मुझे विश्वास हो गया।" वहाँ किसी प्रकार का बह्मचार नहीं हुआ, इस प्रसंग में स्वयं श्री माँ ने बताया, 'मैं उनके चरणों के पास बैठ गई। मेरे आगे छोटा सा स्टूल था, वह मेरे कपाल तक आता था। मुझे थोड़ा ढक देता था। मैं उनके पास बैठी रही, जब खड़ी हुई तो बिना माँगे ही उन्होंने मेरे मनन में नीरसमा स्थापित कर दी।'

17.12 महाप्रयाण

अब श्री अरविन्द का विदाई दिवस निकट ही था, और 5 दिसम्बर 1950 को 1 बजकर 26 मिनट पर उन्होंने शरीर छोड़ दिया तथा उनके शरीर छोड़ने के बाद भी 111 घण्टों तक अपूर्व स्वर्ण आभामय प्रकाश निकलता रहा, इस प्रकाश को डॉ. प्रभात सान्याल तथा नीरोदबरण ने श्री माँ की कृपा से स्पष्ट अपनी आंखों से देखा था। साधारणतः डॉक्टरों ने तो निर्णय दे दिया था कि रूधिर में विषैला द्रव्य पूर्ण रूप से व्याप्त हो चुका है, जिसके प्रभाव से शरीर का रंग थोड़े समय में ही बदलकर काला पड़ने लगता है तथा विकृति के चिन्ह को देखा जा सकता है। परंतु श्री अरविन्द के देहत्याग के पांचवे दिन तक (एक सौ ग्यारह घंटे) अतिमानस का प्रकाश घनीभूत होकर उतर रहा था। अंत में 9 दिसम्बर को शाम को पांच बजे सादगी भरे वातावरण में उनकी देह को समाधि दे दी गयी।

अभ्यासार्थ प्रश्न– सत्य / असत्य

1. श्री अरविन्द का जन्म 15 अगस्त 1875 में हुआ था।
2. श्री अरविन्द का पिता का नाम मनमोहन घोष था।
3. श्री अरविन्द का पिता का नाम कृष्णधन घोष था।
4. सन् 1910 से 1914 तक का समय श्री अरविन्द की मौन साधना का समय था।
5. श्री अरविन्द की पत्नी का नाम मृणालिनी देवी था।

17.13 सारांश

प्रिय पाठकों, उपर्युक्त विवेचन से आप जान गये होगें कि श्री अरविन्द का आरम्भिक जीवन कैसे व्यतीत हुआ तथा किस प्रकार से उन्होंने राजनैतिक जीवन से आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश किया।

पाठकों श्री अरविन्द का योगिक जीवन अत्यन्त कठिन एवं विलक्षण था। उन्होंने अध्यात्म जगत में ऐसे–ऐसे प्रयोग किये हैं जिनकी कल्पना तक नहीं की जा सकती।

अतः संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि हमे भी ऐसे महान योगी के जीवन से कुछ प्रेरणा ग्रहण कर अच्छे मार्ग पर चलने का प्रयास करना चाहिए तभी हमारा उनके जीवन एवं उपलब्धियों के बारे मे अध्ययन करना सार्थक हो सकता है ।

17.14 शब्दावली

त्रैमासिक – तीन मासीय अर्थात तीन महिने के बाद होने वाला।

अद्वैत – एक अर्थात दो नाम एक ही सप्ता के असित्व को मानना।
पार लौकिक– जो सांसारिक न हो अर्थात संसार से परे अलौकिक हो।

समग्र– सम्पूर्ण ।

नीरव – असीम शान्ति।

17.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

17.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 Kumar Kamakhaya, The super science of yoga, standard publication Delhi.

17.17 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– श्री अरविन्द का जीवन परिचय देते हुए उनके साधनात्मक जीवन का विस्तार से वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2– श्री अरविन्द के आध्यात्मिक जीवन का विवेचन कर सकेगें।

इकाई – 18 योग श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय

इकाई की संरचना

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 योगी श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

18.3.1 जन्म एवं आरम्भिक शिक्षा

18.3.2 विवाह एवं गृहस्थ जीवन

18.3.3. गुरू दीक्षा

18.3.4 क्रिया योग की साधना का उपदेश

18.3.5 लाहिड़ी जी का शिष्य समुदाय

18.4 सारांश

18.5 शब्दावली

18.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

18.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

18.8 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठकों, अब तक आप भारत के अनेक अर्वाचीन योगियों के जीवन एवं उनकी योग साधना का अध्ययन कर चुके हैं। इसी क्रम को आगे जारी रखते हुए प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का केन्द्र बिन्दु है – योगी श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय जी के जीवन और उनकी योग साधना के विषय में जानकारी प्राप्त करना। पाठकों, आपके मन में अनेक प्रकार की जिज्ञासायें उत्पन्न हो रही होंगी। जैसे कि लाहिड़ी महाश्य जी का जन्म कहां हुआ था? इनका आरम्भिक जीवन किस प्रकार व्यतीत हुआ? इनके गुरू कौन थे? इन्होंने किस प्रकार से अपनी साधना की? इत्यादि।

आपके इन्हीं प्रश्नों के समाधान के लिये आइये सबसे पहले हम चर्चा करते हैं – लाहिड़ी महाशय जी के जन्म एवं बचपन के बारे में।

18.2 उद्देश्य–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- लाहिड़ी महाशय जी के जन्म एवं आरम्भिक जीवन के बारे में अध्ययन कर सकेंगे।
- लाहिड़ी महाशय जी को किस प्रकार से गुरू दीक्षा प्राप्त हुयी, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- लाहिड़ी महाशय जी के साधनात्मक जीवन का वर्णन कर सकेंगे।

18.3 योगी श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन –

18.3.1 जन्म एवं आरम्भिक शिक्षा –

लाहिड़ी महाशय का जन्म 30 सितम्बर, 1828 ई. में नदिया सिले के धुरणी गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गोरेमोहन लाहिणी था। गोरेमोहन लाहिड़ी ने अपनी पहली पत्नी के निधन के बाद दूसरा विवाह किया था। पहली पत्नी से दो पुत्र एवं एक पुत्री की प्राप्ती हुई थी। दूसरी पत्नी से श्यामाचरण लाहिड़ी का जन्म हुआ।

लाहिड़ी के पैतृक निवास स्थान में जंलगी नामक नदी बहती थी, जिसके अचानक मार्ग बदलने के कारण इनका घर बह गया। अतः इनका परिवार काशी चला गया और वहीं पर बंगाली टोला स्थित एक घर में वे परिवार सहित रहने लगे।

लाहिड़ी जी बचपन से ही अतुलनीय प्रतिभा के धनी थे। महाराजा जयनारायण घोषाल द्वारा स्थापित हाईस्कूल में इन्होंने अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी एवं फारसी भाषा का ज्ञान प्राप्त

किया। इसके बाद इन्होंने संस्कृत भाषा का अध्ययन प्रारम्भ किया। संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान नागोली भट्ट से आपने उपनिषद एवं शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया।

18.3.2 विवाह एवं गृहस्थ जीवन

सन् 1846 में लाहिड़ी जी का विवाह श्री देवनारायण सान्याल की पुत्री काशीमणि देवी के साथ हुआ। लाहिड़ी महाशय जी के दो पुत्र एवं दो पुत्रियां हुई।

सन् 1851 में लाहिड़ी की नियुक्ति ब्रिटिश सरकार के सैनिक इंजीनियरिंग विभाग में एकाउण्टेट के पद पर हुई। अनेक जगह इनका तबादला होता रहा और अन्ततः आपकी बदली दानापुर में हुई।

कुछ समय बाद सम्पर्क को लेकर इनके परिवार में झगड़ा होने लगा। धन के प्रति लाहिड़ी जी को कोई विशेष मोह नहीं था। इन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति सौतेले भाई को दे दी और गरूड़ेश्वर में अपने लिये नया घर ले लिया।

कुछ समय बाद दानापुर से इनकी बदली रानीखेत हो गई। अपना परिवार काशी में ही छोड़कर ये रानीखेत के लिये रवाना हो गये। वहां अपना कार्य संभाल लेने के बाद ये प्रतिदिन हिमालय की आभा को देखने के लिये कई मील पैदल चले जाया करते थे।

18.3.3. गुरूदीक्षा

एक दिन हिमालय दर्शन के दौरान ये पैदल चलते हुए द्रोणगिरि तक जा निकले। जैसे ही लाहिड़ी जी वहां पर पहुंचे तो इनको लगा कि जैसे कोई आवाज देकर इन्हें बुला रहा है। पुकारने वाले व्यक्ति ने शायद एक–दो बार ही उनका नाम पुकारा होगा। किन्तु वह पुकार पहाड़ों से टकराकर बार–बार गूंजने लगी। लाहिड़ी अत्यन्त आश्चर्य से पुकारने वाले व्यक्ति को ढूंढने लगे। सहसा उन्होंने पर्वत के शिखर पर एक युवा व्यक्ति को देखा, जो उन्हें अपने पास आने के लिये संकेत कर रहा था।

उस युवक ने उनसे पूछा कि क्या वह उन्हें पहचान पा रहे हैं तथा साथ ही एक गुफा में उन्हें ले जाकर पूछा कि इस कमण्डल और कंबल को पहचान रहे हो।? लाहिड़ी महाशय जी ने प्रत्ययुत्तर में कहा कि वे न तो उन्हें और न ही इन सामग्रियों को पहचान रहे हैं।

उस युवक ने कहा कि मैंने तुम्हें एक विशेष कार्य से तुम्हें यहां बुलाया है और मैं 40 वर्षो से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। जब वह कार्य पूरा हो जायेगा तो तुम्हें यहां से जाना पड़ेगा।

इतना कहने के बाद उन्होनें लाहिड़ी जी के ललाट को स्पर्श किया। ऐसा करते ही लाहिड़ी जी के शरीर में एक प्रकार की विद्युत दौड़ गई और उन्हें अपने पिछले जन्म की सारी घटनाऐं याद आ गई।

उन्होंने उस युवक को साष्टांग प्रमाण करते हुए कहा कि मैं आपको पहचान गया। आपे मेरे गुरूजी हैं और ये कमंडल और कम्बल मेरी ही है। मैं इसी गुफा में तपस्या करता था।

इसके बाद उनके गुरू ने पूरे विधान से उनके पहले के जन्म के सभी कर्म संस्कारों को हटाते हुए उन्हें क्रिया योग की दीक्षा दी। यह क्रियायोग का अभ्यास कई दिनों तक लगातार चलता रहा।

इसके बाद 8वें दिन उनके गुरू ने कहा कि उनका कार्य समाप्त हो गया है और अब तुम एक सन्यासी के रूप में नहीं वरन् गृहस्थ के रूप में जनकल्याण का कार्य करो तथा उपयुक्त व्यक्तियों को जो ईश्वर के लिये अपना सब कुछ समर्पित कर सकते हैं, उन्हें क्रियायोग में दीक्षित करना।

जब अपने गुरू से अलग होते हुए लाहिड़ी जी रोने लगे तो उन्होंने कहा कि ''तुम चिन्ता मत करो। मैं हमेशा तुम्हारे साथ ही रहूंगा।''

18.3.4 लाहिड़ी महाशय जी द्वारा क्रियायोग की साधना का उपदेश

अपने गुरू से क्रियायोग की दीक्षा लेने के बाद लाहिड़ी महाशय जब ऑफिस पहूंचे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि ऑफिस की गलती के कारण भूलवश उनका तबादला रानीखेत हो गया था उन्हें पुनः दानापुर भेज दिया गया।

अतः वे पुनः दानापुर में आकर अपना कार्य देखने लगे। इसी के साथ नियमित रूप से उनकी साधना भी चलती रही।

लाहिड़ी जी ने सन् 1880 तक सरकार की सेवा में रहने के बाद अवकाश प्राप्त कर लिया था।

अवकाश लेने के बाद लाहिड़ी के सामने धन सम्बन्धी कठिनाई बढ़ गई। पेंशन के रूपयों से उनका घर खर्च ठीक ढंग से नहीं चल पाता था। अतः उन्होंने काशी के राजा ईश्वरीनारायण सिंह के सुपुत्र प्रभुनारायण सिंह को शास्त्रादि का ज्ञान प्रदान करने के लिये तीस रूपये मासिक वेतन के हिसाब से गृह शिक्षक के रूप में पढ़ा प्रारम्भ किया।

लाहिड़ी जी की प्रतिभा और ज्ञान से प्रभावित होकर ईश्वरीनारायण सिंह एवं उनके पुत्र दोनों ने उनसे दीक्षा ली।

इस प्रकार लाहिड़ी जी सत्पात्रों को समायानुसार अपने गुरू द्वारा बताये गये विधान के अनुसार क्रियायोग की दीक्षा देने लगे।

''क्रियायोग वस्तुतः एक विशिष्ट एवं अत्यन्त उच्च स्तरीय योगदाभ्यास है। इसके सन्दर्भ में स्वामी योगानंद का कथन है कि क्रियायोग एक सरल मनःकायिक प्रणाली है जिसके द्वारा मानव रक्त कार्बन से रहित तथा ऑक्सीजन से पूरित हो जाता है। इसके अतिरिक्त ऑक्सीजन के अणु जीवन–प्रवाह में रूपान्तरित होकर मस्तिष्क और मेरूदण्ड के चक्रों को नवशक्ति से पुनः पूरित कर देते हैं''।

लाहिड़ी महाशय के गुरू ने उनसे कहा – ''इस 19वीं सदी में जिस क्रियायोग को मैं तुम्हारे द्वारा विश्व को दे रहा हूँ वह उसी विज्ञान का पुनरू जीवन है जिसे सहस्राब्दियों पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को प्रदान किया था। बाद में जिसका ज्ञान पतंजलि, ईसा मसीह, सेण्ट जान, सैण्ट पाल आदि उनके अनेक शिष्यों को प्राप्त हुआ था''।

धीरे–धीरे लाहिड़ी महाशय की ख्याति चारों ओर फैलने लगी और उनका घर श्रद्धालुओं के लिये एक तीर्थस्थल बन गया।

18.3.5 लाहिड़ी महाशय का शिष्य समुदाय –

लाहिड़ी की अपने शिष्यों एवं भक्तों पर निरन्तर अपने अनुदानों की वर्षा करते ही रहते थे। लाहिड़ी जी के अनेक शिष्य थे, जिनमें से कुछ के नाम उल्लेखनीय हैं। जैसे कि पंचानन बनर्जी, वरदाचरण, रामदयाल मजूमदार इत्यादि।

लाहिड़ी हमेशा अपने शिष्यों को निष्काम भावना कम करते हुए पवित्र जीवन जीवने का उपदेश देते थे। उनका कहना था कि –''ईश्वर की उपस्थिति का विश्वास ध्यान में रखते हुए अपने आनन्ददायक सम्पर्क से उन्हें जीतो। अगर तुम्हारी कोई समस्या हो तो क्रियायोग से हल करो। क्रियायोग के द्वारा तुम मुक्ति पथ पर अनवरत आगे बढ़ते जाओ। इसकी शक्ति इसके अभ्यास पर निर्भर है। मैं, स्वयं यह मानता हूँ कि मनुष्य के स्वतः प्रयास से मुक्ति पाने की सबसे प्रभावोत्पादक विधि यही है जिसकी उत्पत्ति मनुष्य द्वारा ईश्वर प्राप्ति के लिये अब तक पायी जाती है''।

अभ्यासार्थ प्रश्न सत्य/असत्य

1. लाहिड़ी महाशय जी को दानापुर में अपने गुरू से दीक्षा प्राप्त हुयी थी।
2. लाहिड़ी महाशय जी को द्रोणगिरि पर रानीखेत में अपने गुरू के दर्शन हुए थे।
3. लाहिड़ी को उनके गुरू द्वारा क्रियायोग की दीक्षा दी गई थी।
4. लाहिड़ी महाशय जी ने सन् 1885 के बाद अवकाश ग्रहण किया था।
5. लाहिड़ी महाशय की पत्नी का नाम रूक्मिणी देवी था।

18.5 सारांश –

प्रिय पाठकों उपर्युक्त विवेचन से आप जान गये होंगे कि किस प्रकार एक गृहस्थ होते हुए भी लाहिड़ी जी प्रकृति से एक महान योगी थे। उन्हें गृहस्थ धर्म के कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए एक योगमय जीवन व्यतीत किया। जो हम सभी के लिये अत्यन्त प्रेरणादायी है।

पाठकों, लाहिड़ी जी पूरे हृदय से परब्रह्म में लीन होकर परमानंद की स्थिति को प्राप्त हो चुके थे। यह हम भारतवासियों के लिए अत्यधिक गौरव की बात है कि उन जैसी दिव्य आत्मा ने हमारे देश में जन्म लेकर न केवल भारतवासियों वरन् समूची विश्ववसुधा को धन्य कर दिया।

18.6 शब्दावली

दीक्षा : अपनी समस्त इच्छायें अपने गुरू को सौंप देना। पूर्ण गुरू को समर्पित जीवन जिसमें शिष्य का जीवन गुरू की इच्छानुसार संचालित होता है।

क्रियायोग : प्राण के नियमिन द्वारा किया जाने वाला अत्यन्त उच्चस्तरीय योगाभ्यास।

अनवरत : बिना रूके लगातार।

मनःकायिक : मनोशारीरिक अर्थात मन एवं शरीर दोनों से सम्बन्ध रखने वाली।

18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. असत्य

18.8 सन्दर्भ गन्थ सूची

1. भारत के महान योगी–विश्वनाथ मुखर्जी

18.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. लाहिड़ी महाशय जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन कीजिए।

इकाई–19 स्वामी विवेकानन्द

इकाई की संरचना

19.1 प्रस्तावना

19.2 उद्देश्य

19.3 स्वामी विवेकानन्द : जीवन परिचय एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि

19.4 आरम्भिक शैक्षिक जीवन एवं खेल प्रेम

19.5 स्वामी रामकृष्ण परमहंस से भेंट तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश

19.6 स्वामी विवेकानन्द : एक परिव्राजक के रूप में

19.7 लेखन से सम्बन्धित कार्य

19.8 स्वामी विवेकानन्द का महा समाधि में प्रवेश

19.9 योग सम्बन्धी विचारधारा

19.10 विश्व मानवता को योगदान

19.10 सारांश

19.10 शब्दावली

19.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

19.13 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

19.14 निबंधात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना .

प्रिय पाठको, इनसे पूर्व की इकाईयों में आपने अनेक अर्वाचीन योगियों के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में जानकारी प्राप्त की है। जैसे कि श्री अरविन्द, महर्षि दयानन्द, लाहड़ी महाशय। योगियों की चर्चा के इसी क्रम को बढ़ाते हुए प्रस्तुत इकाई में हम युवाओं के नेता के रूप में प्रसिद्ध महान ओजस्वी एवं प्रखर तेजस्वी स्वामी विवेकानन्द के जीवन एवं उनकी उपलब्धियों के विषय में जानने का प्रयास करगें।

पाठकों, स्वामी विवेकानन्द सप्तऋषियों में से एक थे स्वामी जी एक ऐसी दिव्य आत्मा के रूप इस भारत भूमि पर अवरित हुए जिन्होने अपनी 39 वर्ष की अल्पायु में ही ऐसे–ऐसे महान कार्य कर दिये, जिन्होने भारत में ही नहीं वरन् समूचे विश्व को हिलाकर रख दिया तथा इनके कार्यों की एक सामान्य व्यक्ति कल्पना तक नहीं कर सकता। इन महान योगी का जन्म कब एवं कहां हुआ, किस प्रकार से इनका बचपन गुजरा, इनका आरम्भिक शैक्षिक जीवन किस प्रकार का रहा। कैसे इन्होने आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश किया, इत्यादि जिज्ञासाओं के समाधान के लिए आइये चर्चा करते हैं, स्वामी जी के जीवन के बारे में।

19.2 उद्देश्य

प्रिय पाठकों इस ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- स्वामी विवेकानन्द के जीवन एवं पारस्परिक पृष्ठभूमि का वर्णन कर सकेंगे।
- स्वामी जी के शैक्षिक जीवन एवं उनकी अभिरूचियों को स्पष्ट कर सकेगें।
- गुरू शिष्य के रूप में रामकृष्ण परमहसं एवं स्वामी विवेकानन्द जी के पारस्परिक संबधों का विवेचन कर सकेगें।
- स्वामी जी के अध्यात्मिक जीवन का विश्लेषण कर सकेगें।
- विश्व मानवता के कल्याण में स्वामी जी के योगदान को स्पष्ट कर सकेगें।

19.3 स्वामी विवेकानन्द : जीवन परिचय एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि

स्वामी विवेकानंद ने भारत में हिन्दू धर्म का पुनरूद्धार तथा विदेशों में सनातन सत्यों का प्रचार किया। इस कारण वे प्राच्य एवं पाश्चात्य देशो में समान रूप से श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। उनका जन्म 12 जनवरी 1863 ई. सोमवार के दिन प्रातःकाल सूर्योदय के किंचित् काल बाद 6 बजकर 49 मिनट पर हुआ था। मकर संक्रान्ति का वह दिन हिंदू जाति के लिये महान उत्सव का अवसर था और भक्तगण उस दिन लाखों की संख्या में गंगाजी को पूजा अर्पण करने जा रहे थे। स्वामी विवेकानंद के जन्म के पूर्व उनकी माँ ने वाराणसी में वीरेश्वर भगवान की पुत्र प्राप्ति की इच्छा से पूजा की थी। एक रात उन्होंने स्वप्न में महादेव जी को ध्यान करते देखा, फिर उन्होंने नेत्र खोले और उनके

पुत्र के रूप में जन्म लेने का वचन दिया। नींद खुलने के बाद उनके आनन्द की सीमा न रही थी। माता भुवनेश्वरी देवी ने अपने पुत्र को शिवजी का प्रसाद माना और उसे वीरेश्वर नाम दिया। परन्तु परिवार में उनका नाम नरेन्द्रनाथ दत्त और संक्षेप में उन्हें नरेन्द्र तथा दुलार में नरेन कह कर सम्बोधित किया जाता था।

कलकत्ते के जिस दत्त वंश में नरेन्द्रनाथ का जन्म हुआ था वह अपनी समृद्धि सहृदयता, पाण्डित्य एवं स्वाधीन मनोवृत्ति के लिए सुविख्यात था। उनके दादा श्री दुर्गाचरण ने अपने प्रथम पुत्र का मुख देखने के बाद ही ईश्वरप्राप्ति की अभिलाषा से गृहत्याग कर दिया था। उनके पिता श्री विश्वनाथ दत्त कलकत्ता उच्च न्यायालय में अधिवक्ता थे। उन्होंने अंग्रजी तथा फारसी साहित्य का गहन अध्ययन किया था। धर्म के मामले में वे अज्ञेयवादी थे और सामाजिक रीति–रिवाजों के प्रति उपहास का भाव रखने के बावजूद उनका हृदय विशाल था। यहाँ तक कि वे अपने कुछ निर्धन आलसी सम्बन्धियों को अपने घर में रखकर उनकी देखभाल किया करते थे। उनकी माता भुवनेश्वरी देवी देखने में गम्भीर और आचरण में उदार थीं तथा प्राचीन हिन्दू परम्परा का प्रतिनिधित्व करती थीं। वे एक भरे पूरे परिवार की मालकिन थीं और अपने अवकाश का समय सिलाई एवं भजन गाने में बिताती थी। रामायण एवं महाभारत में उनकी विशेष रूचि थी तथा इन ग्रन्थों के अनेक अंश उन्हें कण्ठस्थ भी थे। निर्धनों के लिये वे आश्रय थीं।

19.4 आरम्भिक शैक्षिक जीवन एवं खेल प्रेम

जैसा कि सर्वविदित है कि माँ ही बच्चे की प्रथम गुरू होती है, विवेकानंद जी के जीवन में भी माँ के हाथों उनकी प्रारम्भिक शिक्षा का सूत्रपात हुआ। इस प्रकार उन्होंने बंगला की वर्णमाला, कुछ अंग्रजी शब्द तथा रामायण एवं महाभारत की कथाएँ सीखीं।

छः वर्ष की आयु में विवेकानंद को प्राथमिक विद्यालय में अध्ययन हेतु भेजा गया। परन्तु एक बार सहपाठियों से सीखा हुआ अपशब्दों का उच्चारण करने पर उनके लिये घर पर ही अलग शिक्षक की व्यवस्था कर दी गई। शीघ्र ही सूक्ष्म बुद्धि एवं तीव्र स्मरणशक्ति का विकास दिखने लगा। संस्कृत, व्याकरण, रामायण व महाभारत का काफी बड़ा अंश उन्होंने आसानी से कण्ठस्थ कर लिया। 1870 ई. में सातवर्ष की आयु में उनको ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा स्थापित मेट्रोपोलिटन ट्यूशन में प्रवेश कराया गया। आपकी असाधारण बुद्धि ने शीघ्र ही अध्यापकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

चौदह वर्ष की उम्र में नरेन्द्रनाथ के पेट में रोग होने के कारण उनका शरीर अस्थिचर्म मात्र रह गया था। उनके पिता श्री विश्वनाथ इन्हें अपने साथ रायपुर ले आये। रायपुर में उस समय स्कूल नही थे अतः विश्वनाथ स्वयं पुत्र को शिक्षा देने लगे। पुत्र की प्रतिभा उनसे छिपी न थी, पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त दर्शन, इतिहास तथा साहित्य सम्बंधी अनेक पुस्तके पुत्र को पढ़ाने लगे। घर में प्रतिदिन गुणी, ज्ञानी, व्यक्तियों के वादविवाद को नरेन्द्र ध्यान से सुना करता थे और उम्र में छोटे होने के बावजूद अपनी राय प्रकट करते थे इससे सभी आनन्दित भी होते थे। किताबी विद्या के भार से पुत्र की प्रखर स्मृतिशक्ति

का क्लान्त न कर उसके साथ अनेकानेक विषयों पर तर्क किया करते और उसे स्वाधीन भाव से अपना मत प्रकट करने का अवसर देते थे। दो वर्ष तक पिता के साथ रहकर नरेन्द्र ने केवल ज्ञानलाभ ही नही किया अपितु उनके किशोर चरित्र पर पिता की महानता की गम्भीर छाप भी पड़ी। दो वर्ष बाद नरेन्द्र शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन प्राप्त कर रायपुर से कलकत्ता पहुँचे। 19 वर्ष की अवस्था में उन्हें प्रवेशिका में प्रवेश मिला। दो वर्ष के पाठ्यक्रम को उन्होंने एक ही वर्ष में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया तथा इसके बाद प्रेसीडेन्सी कालेज में प्रवेश लिया। बाद में से स्काट्स मिशनरी बोर्ड द्वारा स्थापित जनरल ऐसेम्बली इस्ट्यूशन में पढ़ने लगे। उनकी प्रतिभा को देखकर कालेज के प्रधानाचार्य डब्लून्ट हेस्टे ने कहा था कि मैने सुदूर देशों का भ्रमण किया है पर अभी तक मुझे कही भी ऐसा लड़का नही मिला जिसमें नरेन्द्र सी प्रतिभा और संभावनाएँ हों। वह जीवन में अवश्य अपनी छाप छोड़ जायेगा।

नरेन्द्रनाथ ने कॉलेज में पाठ्य विषयों के अतिरिक्त साहित्य, दर्शन, धर्म और प्राचीन एवं आधुनिक इतिहास का भी अध्ययन किया। इन्होंने 1884 में बी.ए. पास किया। लेकिन इसी वर्ष इनके पिता का स्वर्गवास हो गया।

नरेन्द्र एक मधुर, प्रफुल्ल एवं चंचल स्वभाव का बालक था। बचपन में नरेन्द्र की अदम्य शक्ति को वश में लाने के लिये दौ नौकरानियों की आवश्यकता होती थी। वह अपनी बहनों को भी चिढ़ा–चिढ़ाकर परेशान किया करता था। उसको शांत करने के लिये माँ उनके ऊपर शिव–शिव कहकर जल डालने लगती थी। पशु–पक्षियों के प्रति उनका प्रेम स्वाभाविक था।

नरेन्द्र और संन्यासी हुए पितामह में काफी साम्यता थी। कई लोगों का विचार था कि उन्होंने नरेन्द्र के रूप में ही पुनः जन्म लिया है। भ्रमण करने वाले सन्यासियों में नरेन्द्र की बड़ी रूचि थी।

माँ के द्वारा सुनाई गई पौराणिक कथाओं से प्रभावित होकर हिन्दु देवी–देवताओं के प्रति उनकी रूचि बढ़ी। वे राम और सीता की मूर्ति लाकर उसकी श्रद्धा से पूजा करने लगे। लेकिन एक बार विवाह को तीव्र बन्धन कहकर उसकी तीव्र निन्दा की तो उन्होंने इनका परित्याग कर दिया।

बचपन से ही नरेन्द्र शिवजी की मूर्ति के आगे बैठकर ध्यान किया करता था। इसी आयु में उनकी कुछ ऐसे लोगों से मित्रता हुई जो आजीवन उनके मित्र बन रहे। अपने स्कूल के बालकों में वे निर्विरोध नेता थे। राज दरबार का खेल उन्हें बड़ा प्रिय था और उनमें वे राजा का अभिनय करते थे। उनका कर्म ही सूचित करता है कि वे जन्म से ही मानव मात्र के नायक थे।

स्कूल की पढ़ाई के साथ–साथ नाटक, तलवार चलाना, कुश्ती लड़ना, नाव–खेना तथा अन्य वीरतापूर्ण खेल उन्होंने सीखे। उन्होंने भोजन पकाने की विद्या सीखने का भी प्रयास किया। वे इतने चंचल थे कि शीघ्र ही एक खेल से आकर दूसरे खेल ढूंढ निकालते थे। वे अपने मित्रों के संग चिड़िया घर, अजायबघर देखने जाया करते थे। खेलों में वे अपने

साथियों का आपसी झगड़ा निपटा देते थे और पड़ोस के लोगों के प्रिय थे। सभी उनके साहस, सच्चाई की सराहना करते थे। यह विलक्षण बालक छोटी उम्र से ही भय अथवा अन्धविश्वास न मानता था। पड़ोस के एक घर में चम्पा के पेड़ पर चढ़कर फूल तोड़ना भी उन्हें प्रिय था। एक दिन पेड़ के मालिक द्वारा पेड़ में भूत है कहकर नरेन्द्र के साथियों को डराने पर नरेन्द्र ने ही उन्हें पुनः विश्वास दिलाया कि भूत नही हैं। उन्होंने कहा कि किसी की बातों में जाँच किये बिना विश्वास नहीं करना चाहिये। ये शब्द जगत के प्रति उनका भावी संकेत था।

नरेन्द्र को शयन के पूर्व एक अद्‌भुत दर्शन हुआ करता था, आँखे मूंदते ही उन्हें अपनी भौहों के बीच निरंतर परिवर्तन शील रंगों का एक ज्योति बिन्दु दीखता था, वह बिन्दु क्रमशः बढ़ता हुआ गोले का आकार लेकर फट जाता था और उससे एक सफेद प्रकाश निकलकर उनके सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता था। इसके प्श्चात वे धीरे–धीरे निद्रा में डूब जाते थे। इस ज्योति के दर्शन उन्हें जीवन के अन्तिम दिनों तक होते रहे। वास्तव में ये आध्यात्मिक क्षमता एवं ध्यान की स्वाभाविक प्रवृत्ति का होना था।

किशोरावस्था में प्रवेश करने के साथ–साथ नरेन्द्र के स्वभाव में भी परिवर्तन आ रहा था। अब बौद्धिक जीवन की ओर उनका झुकाव ज्यादा था वे साहित्य का अध्ययन करने लगे, समाचान पत्र का पढ़ना, सभाओं में जाना उन्हें प्रिय था। संगीत उनके मनोरंजन का प्रमुख साधन था। उनका मानना था कि संगीत के माध्यम से उदत्त भावों की अभिव्यक्ति होनी चाहिये।

19.5 स्वामी रामकृष्ण परमहंस से भेंट तथा आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश

स्वामी विवेकानंद प्रारंभ से ही जिज्ञासु थे। स्वामी जी के ऊपर ब्रह्म समाज का काफी प्रभाव पड़ा था। फलतः वे आध्यात्मिक विकास के लिये एक के बाद दूसरे धार्मिक व्यक्ति से मिलते रहे पर किसी ने उनकी जिज्ञासा शान्त न की। स्वामी विवेकानंद के मन में विचारों का द्वंद्व चल ही रहा था कि उनके जीवन में एक महापुरूष का उदय हो गया जिसे संसार रामकृष्ण परमहंस के नाम से जानता है।

एक बार नरेन्द्र (स्वामी विवेकानंद) के प्रधानाचार्य विलियम हेस्टी कथा में विलियम वड्‌र्डसवर्थ की कविता को पढ़ा रहे थे। कविता के सार बताते हुए मिस्टर हेस्टी ने बताया कि दक्षिणेश्वर में रामकृष्ण ने अपनी साधना, लगन, त्याग और तपस्या से ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है। युवक नरेन्द्र स्वाभाव से जिज्ञासु थे। अतः उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे दक्षिणेश्वर जायेंगे और श्रीरामकृष्ण से साक्षात्कार करेंगे।

1881 में अपने कुछ साथियों के साथ स्वामी जी दक्षिणेश्वर पहुँचे तथा उन्होंने श्री रामकृष्ण के दर्शन किए। यह मिलन उनकी जीवन का संक्रांन्ति काल था। जब वह नरेन्द्र रामकृष्ण से मिले तो राकृष्ण ने अपने ओज, तप तथा साधना के बल से नरेन्द्र की आध्यात्मिक साधना को तुरन्त पहचान लिया और कहा कि मैं जानता हूँ, आप स्वयं

नारायण के अवतार हैं। जिन्होंने मानवता का उद्धार करने के लिए इस पृथ्वी पर जन्म लिया है।"

नरेन्द्र भी श्री रामकृष्ण का व्यवहार को देखकर आश्चर्य चकित रहे क्योंकि उनके चहरे से ऐसा प्रतीत होता था कि वे विक्षिप्त हैं। नरेन्द्र ने श्रीरामकृष्ण जी से पूछा–" क्या आपने ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है।" तब श्रीरामकृष्ण देव ने उतनी ही सहज और सरलता के साथ उत्तर दिया –" God can be realised one can see and talk to him as I am doing with you. But who cares to do so".

इस उत्तर से नरेन्द्र प्रभावित तो हुए पर रामकृष्ण के उन्माद को देखकर उन पर विश्वास नहीं कर सके। कुछ समय बाद जब नरेन्द्र दुबारा दक्षिणेश्वर गए, तब श्रीरामकृष्ण ने उन्हें स्नेह से पुकारा और अपने पास बिठाया। नरेन्द्र को लगा कि परमहंस के स्पर्श–मात्र से उनके भीतर एक नई अनुभूति पैदा हुई है। पिता के देहान्त के बाद घर की सारी जिम्मेदारी नरेन्द्र के ऊपर आ गई लेकिन नरेन्द्र ने अपना धैर्य साहस नहीं छोड़ा। विपत्तियों से जुझते हुए परिवार के दिन बीतने लगे। एक दिन निराश होकर नरेन्द्र श्रीरामकृष्ण से मिलने दक्षिणेश्वर पहुँचे और असीम विश्वास के साथ कहा महाराज–"मेरी माँ और भाई बहिनों को कुछ अन्न खाने को मिल सके इसके लिए आप अपनी काली माता से कुछ अनुरोध कर दीजिए"।

श्रीरामकृष्ण ने कहा अच्छा आज मंगलवार है। आज रात को काली मंदिर में जाकर माँ को प्रणाम करके तू जो कुछ माँगेगा माँ तुझे वही देगी। नरेन्द्र ने सोचा की श्रीरामकृष्ण की जगमाता क्या चीज है? इसकी भी आज परीक्षा कर देखना चाहिए। रात को एक पहर बीत जाने के बाद वे काली मंदिर को ओर चले और उन्होंने अपने मन में सोचा कि आज श्रीरामकृष्ण की कृपा से मेरे परिवार के कष्टों का अन्त होगा। तभी उन्होंने देखा कि जगदम्बा के प्रताप से मंदिर आलोकित है तथा पत्थर की मूर्ति न होकर जगरम्बा माँ अपने वास्तविक रूप में आकर हाथ फैला दया के साथ स्नेह का वरदान दे रही है। यह अद्‌भुत दृश्य देखकर नरेन्द्र सब कुछ भूल गया और भक्ति में विलीन होकर माँ से प्रार्थना करने लगा, माँ विवेक दो, वैराग्य दो, ज्ञान दो, जिससे माता तुम्हारी कृपा से सदा ही तुम्हे देख सकूँ।"

नरेन्द्र मंदिर से लौट आये। श्रीरामकृष्ण के पूछने पर क्या माँगा उन्हें अपने पूर्व संकल्प का स्मरण हो अया वे श्रीरामकृष्ण के आदेश पर पुनः मन्दिर गए। लेकिन दूसरी और तीसरी बार भी वे अपने मुँह से कुछ न बोल, पाए और न ही सांसारिक सुख की प्रार्थना कर सके क्योंकि नरेन्द्र का तो जन्म से वैराग्य की ओर झुकाव था। इसी दिन से नरेन्द्र के जीवन में एक नया अध्याय शुरू हुआ।

एक दिन रामकृष्ण ने अपने जवान शिष्यों को सन्यास देने का संकल्प किया और शुभदिन देखकर गेरूआ वस्त्र प्रदान किया। एक दिन सायंकाल के समय ध्यान करते नरेन्द्र अप्रत्याशित रूप से निर्विकल्प समाधि में डूब गये। काफी देर पर समाधि टूटने पर उन्हें

अनुभव हुआ की उनका मन उस स्थिति में सम्पूर्ण रूप से कामना शून्य था पर एक अलौकिक शक्ति उन्हें उनकी इच्छा के विरूद्ध वाह्य संसार में उतार कर ला रही है। नरेन्द्र ने अनुभव किया कि उन्हें संसार में लोकमंगल के लिए कार्य करना है।

अपने महाप्रयाण से तीन दिन पूर्व रामकृष्ण परमहंस ने नरेन्द्र को स्पर्श करते हुए कहा कि आज मैने अपना सर्वस्व तुझे दे दिया है। मैं फकीर, बन गया हूँ , रामकृष्ण के स्पर्श मात्र से नरेन्द्र को समाधि के आनन्द की अनुभूति हुई। यह वह अनुभूति थी जिसे नरेन्द्र बरसों से प्राप्त करना चाहता था। अब वह नरेन्द्र न होकर विवेकानंद हो गए।

19.6 स्वामी विवेकानन्द : एक परिव्राजक के रूप में

1888 ईसवी में परिव्राजक विवेकानंद जब पहली बार अपनी अस्थाई तीर्थ यात्रा करने के लिए निकले तथा 1890 ईसवीं में वे अपने गुरू भाईयों से विदा लेकर एक अज्ञात परिव्राजक संन्यासी के रूप में भ्रमण करने के लिए निकले तब तक उनके मन में एक विलक्षण परिवर्तन आ गया था।

इस अवधि में एक भारतीय संन्यासी की एकान्तवास की स्वाभाविक इच्छा के स्थान पर इस बात के पूर्वाभास ने उनके मन पर अधिकार कर लिया कि उनका यह जीवन केवल मुक्ति के लिए तपस्यारत किसी साधारण सन्यासी का जीवन नहीं, बल्कि उन्हें एक महान भाग्य का निर्माण करना है। भारत माता का निकट परिचय प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा तथा अपने चतुर्दिक उत्पीड़ित भारत की मौन पुकार सुनकर वे पहले हिन्दुओं के पवित्रम तीर्थ नगरी वाराणसी गये। वहां से संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान प्रमदा दास मित्र से मिले। हिन्दु धर्म और दर्शन की विविध समस्याओं के संबंध में उनसे स्वामी जी का पत्र व्यवहार चला करता था। वाराणसी से लखनऊ, आगरा, वृंदावन, हाथरस तथा ऋषिकेष गये तथा कुछ समय के लिए पुनः वराहनगर लौट आये। अपने प्रथम शिष्य श्री शरतचन्द्र गुप्ता (स्वामी सदानंद) से उनकी हाथरस में भेंट हुयी थी। उन्होंने अपने गुरूद्वारा भारत का सम्पूर्ण विश्व के आध्यात्मिक पुनरूत्थान का दायित्व सौंपे जाने के संबंध में से बताया। शरत जो एक रेलवे कर्मचारी थे ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया तथा इस व्रत में सहायता करने के लिए अपने गुरू के साथ हो लिए।

22 जनवरी सन् 1890 में गाजीपुर के पवाहारी बाबा से भेंट उनके जीवन की इस अवधि की एक महत्वपूर्ण घटना है। उनके मन में पवहारी बाबा की साधुता के प्रति प्रगाढ़ का भाव आजीवन रहा। इस समय उनके मन में परमब्रह्म की शाश्वत शांति में डूबे रहने तथा धर्म जागरण के गुरू आदेश को चरितार्थ करने के कर्तव्य के बीच द्वन्द चल रहा था। उन्हें ऐसी आशा थी कि पवहारी बाबा निर्विकल्प समाधि की उच्चतम अवस्था में विमग्न होने में उनकी सहायता करेंगे। और इसलिए वे उनका शिष्यत्व ग्रहण करने को भी उद्यत थे। इस दुर्दम्य आकर्षण के समक्ष झुकने की बलवती इच्छा उनके मन में 21 दिनों तक बनी रही, किंतु श्रीरामकृष्ण के बार–बार दर्शन तथा पवहारी बाबा की अनिच्छा के कारण उन्होंने अपना यह संकल्प त्याग दिया।

जुलाई 1890 में स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण देव की लीलासहचरी श्री शारदादेवी से जो उनकी महासमाधि के पश्चात युवासन्यासियों की आध्यात्मिक गुरू थी, विदाई ली। हिमालय के एकान्त में जाकर अकेले रहने की अनिवार्यता का अनुभव कर स्वयं का सभी बंधनों से मुक्त करने के लिए उन्होंने गुरू भाइयों से विदा ली। वे एक गोताखोर की तरह भारत महासागर में डूब गये तथा उस महासागर ने उन्हें ढक लिया उस महासागर में तैरते हजारों सन्यासियों के मध्य वे भी मात्र एक गेरूआधारी अनामि सन्यासी के अतिरिक्त और कुछ नहीं थे।

इस भ्रमण काल में उन्होंने उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, हैदराबाद और केरल के अनेक धार्मिक तथा ऐतिहासिक स्थानों की यात्रायें की। सभी जगह प्राचीन भारत का धार्मिक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक गौरव उनके समक्ष प्रत्यक्ष होता रहा। दूर करने का उपाय ढूंढ़ते हुये एक राज्य से दूसरे राज्य में घूमते रहे। इस प्रकार अनेक राज्यों के राजाओं तथा प्रमुख व्यक्तियों से उनकी भेंट हुई। इनमें खेतड़ी के राजा अजीत सिंह इनके घनिष्ठ मित्र तथा शिष्य हो गये। 1891 फरवरी को अलवर पहुँचे वहाँ उन्होंने पतंजलि के माहाभाष्य का अध्ययन किया। 1892 सितम्बर में पूना में महान राष्ट्रीय नेता बाल गंगाधर तिलक से उनकी भेंट हुई पहले तो स्वामी जी के प्रति उनका भाव बहुत आदर पूर्ण नहीं था किन्तु बाद में उनके प्रखर विचारों तथा पाण्डित्य से प्रभावित होकर तिलक ने उन्हें अपने घर अतिथि के रूप में रहने का आग्रह किया। पूना से वे बेलगांव आये तथा कुछदिन वे वहां रहकर मैसूर तथा बैंगलोर चले गये। पाश्चात्य देशो में जाकर भारत के लिए सहायता प्राप्त करने के लिए तथा सनातन धर्म का प्रचार करने के लिए इस कार्य में मैसूर के महाराजा ने उन्हें आर्थिक सहायता देने का आश्वासन दिया। मैसूर से वे त्रिवेन्द्रम तथा कन्याकुमारी गये।

उनकी यात्राओं का विशाल अनुभव चलचित्र की भाँति उनके मानस पटल पर अंकित हो उठा। भारत वर्ष के भूत, भविष्य, वर्तमान, उसके पतन का कारण तथा उत्थान के उपायों पर वे ध्यान करते हैं। तब उन्होंने पाश्चात्य देशों की यात्रा पर जाने का गुरूत्व पूर्ण निर्णय लिया जिससे कि वे भारत के निर्धनों के लिए सहायता प्राप्त कर सके इस प्रकार अपने जीवन लक्ष्य का मूर्त रूप दे सकें।

इस निर्णय के साथ वे रामेश्वरम व मदुरई गये। मदुरई में उनकी भेंट रामनाथ के राजा से हुई। राजा उनके निष्ठावान सहयोगी बन गये तथा उन्हें सहायता देने का आश्वासन दिया उसके बाद वे मद्रास गये जहाँ आलासिंगापेरूमल के नेतृत्व में युवकों का एक दल उनकी प्रतीक्षा कर रहा था उन्होंने इस दल को शिकागों में होने वाले विश्व धर्म महासभा में सम्मिलित होने के लिए अमेंरिका जाने का अपना संकल्प बताया उनके युवा शिष्यों ने उनके इस कार्य के लिए धन संग्रह किया किंतु स्वामी जी को इस संबंध में जगन्माता का निश्चित बोध नही हुआ अतः उन्होंने एकत्रित धनराशि को निर्धनों में बंटवा दिया। ठीक इसी समय स्वामी जी ने एक प्रतिकात्मक स्वप्न देखा उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण समुद्र पर चल रहे हैं तथा स्वामी जी को अपने पीछे आने का संकेत कर रहें

हैं। श्री शारदा देवी को भी ठाकुर ने स्वप्न में इस संबंध में आदेश दिया था। श्रीमाँ की अनुभूति तथा आदेश से स्वामी जी का शंका का निवारण हुआ उनके युवा शिष्यों ने पुनः धन संग्रह किया।

31 मई 1881 भारत के लिए एक स्मरणीय दिन रहा इस दिन विवेकानंद बम्बई से अमेरिका के लिये जहाज पर रवाना हुये।

धर्म महासभा में स्वामी जी बड़ी मुश्किलों के बाद पहुंच पाये और देश–विदेश के कोने–कोने से विद्वान वहाँ इकट्ठे हुये सभी अपने मतों एवं धर्म के अनुकूल बाते बढ़ाचढ़ा कर रहे थे लेकिन स्वामी जी ने सभी धर्मों के विशेषसत्व पर प्रकाश डाला और सर्व धर्म सम्भाव की बात लोगों को सिखाई, समन्वय, सहयोग और सहकारिता आदि मानवीय गुणों का सिखाया।

11 सितम्बर 1893 को स्वामी जी धर्म महासभा में शामिल हुए। आर्ट इंस्टीट्यूट का विशाल सभा भवन लगभग सात हजार लोगों से खचाखच भरा हुआ था। जो उस देश के सर्वश्रेष्ठ संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते थे। स्वामी जी ने इसके पर्व इतनी प्रबुद्ध तथा विशाल सभा को संबोधित नहीं किया था, वे एकदम घबरा गये जब उनकी बारी आयी तो उन्होंने विद्या देवी माँ सरस्वती को सबसे पहले मन ही मन प्रणाम किया तथा 'अमेरिका वासी भाइयों एवं बहनों ' इन शब्दों के साथ अपना भाषण शुरू किया तभी विशाल जनसमूह आनंद और उल्लास से बादल गरजने की भांति लगातार कई मिनट तक तालियाँ बजाते रहे और उनका उत्साह वर्धन करते रहे। उनके सरल एवं ज्वलंत शब्दों, महान व्यक्तित्व तथा उज्जवल मुख मंडल ने श्रोताओं पर ऐसा प्रभाव डाला कि दूसरे दिन समाचार पत्रों ने उन्हें धर्म महासभा का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति घोषित कर दिया। हाथ में भिक्षा पात्र लिए सामान्य सन्यासी आज युग पुरूष हो गया । 18 नवम्बर 1894 को स्वामी विवेकानंद न्यूयार्क गये। 1 अगस्त 1895 में इंग्लैण्ड पहुँचे, वहाँ उन्हें जैसा कठोर परिश्रम करना पड़ा उसका अनुभव करने से ही बड़ा विस्मय होता है।

6 दिसम्बर 1895 में पुनः न्यूयार्क गये तथा 15 अप्रैल 1896 में स्वामी जी पुनः इंग्लैण्ड गये। 19 दिसम्बर 1896 को सेवियर दंपती के साथ स्वामी जी लंदन से रवाना हुए तथा रोम और इटली के अन्य शहरों की यात्रा कर 30 दिसम्बर को नेपल्स से जहाज के द्वारा भारत के लिए प्रस्थान किया। यहाँ गुडविन भी उनके साथ हो गये। 15 जनवरी 1897 को ये लोग कोलम्बो पहुँचे। स्वामी जी के आगमन का समाचार भारत में पहले ही पहुँच चुका था तथा देश भर में सभी स्थानों पर अत्यंत उत्साहपूर्वक तैयारियाँ उनके स्वागत के लिए होने लगी थी। कोलम्बो के सिटी हॉल में उनका स्वागत हुआ श्रीलंका के नागरिकों के अतिशय उत्साह के कारण उन्हें वहां थल मार्ग से पूरे लंका की यात्रा कर मद्रास जाना पड़ा। रोमारोला ने कहा है कि– " स्वामी जी ने हर्षोन्मत भारतवासियों की आशा का रूप अपने संदेश रूपी शंखनाद के द्वारा भगवान राम शिव और कृष्ण की भूमि को जगाकर तथा उसकी अमर आत्मा को संघर्ष का आवाहन किया और कहा कि " मेरे भारत, जागो! तुम्हारी संजीवनी शक्ति कहाँ है? तुम्हारी अमर आत्मा हैं।"

स्वामी जी ने श्री बलराम बोस के निवास पर श्रीरामकृष्ण के सन्यासी तथा ग्रही शिष्यों की सभा बुलाई और इस प्रकार एक मई 1897 को 'रामकृष्ण मिशन' का गठन हुआ। 1898 में कलको में जब प्लेग की महामारी फैली तब मठ के सन्यासियों तथा ग्रही भक्तों को लेकर स्वामी जी ने अपने पाश्चात्य शिष्यों के साथ नैनीताल और अल्मोड़ा के लिए रवाना हुए। इनके पाश्चात्य शिष्यों में मुख्यतः भगिनी निवेदिता के लिए यह समय कठिन प्रशिक्षण और तैयारी का था। 18 अक्टूबर को जब वे कलकत्ता पहुँचे तब वे बहुत दुर्बल और रोग ग्रस्त हो गये थे। फिर भी उन्होंने स्वयं को अनेक कार्यों में लगा दिया। 1899 में सभी सन्यासी बेलूर में आ गये। इस दौरान स्वामी जी सभी सन्यासियों और ब्रह्मचारियों को आध्यात्मिक साधना को तीव्रता मानवता की सेवा के लिए अनवरत् प्रेरित करते रहे जिससे कि **'आत्मनोक्षार्थ जगतहिताय च'** का लक्ष्य सिद्ध हो सके। किंतु स्वामी जी का स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा था अतः इस आशा से कि पश्चिम देशों में जाने पर उनके स्वास्थ्य में सुधार होगा, उनके सन्यासी भाइयों ने उनके पुनः विदेश यात्रा के प्रस्ताव का स्वागत किया। 31 जुलाई 1899 को स्वामी जी लंदन पहुँचे, 19 अगस्त को न्यूर्याक चल दिये, 20 जुलाई 1900 तक वे अमेरिका में रहे। 1 अगस्त 1900 से 24 अक्टूबर 1900 तक वे फ्रांस में रहे। इसके बाद विएना, बल्कान देशों, कुस्तुनतुनिया, युनान और मिश्र होते हुए वे दिसम्बर 1900 के के अंत में भारत आ गये।

सन् 1901 के अंत में जापान से दो बोद्ध भिक्षुओं ने स्वामी जी को जापान में होने वाले धर्म सम्मेलन में भाग लेने के लिए निमंत्रण देने आए। स्वामी जी उनका निमंत्रण स्वीकार तो न कर सके किंतु उनके साथ वे बोध गया, वाराणसी गये। वाराणसी में उन्होंने देखा कि कुछ युवक उनकी प्रेरणा से दरिद्रों की सेवा में जुट गये हैं, यह देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन युवकों द्वारा प्रारम्भ किया गया यही कार्य भविष्य में रामकृष्ण सेवा आश्रम, वाराणसी के रूप में परिवर्तित हुआ। स्वामी जी को अपने महाप्रयाण का आभास हो गया था अंतिम दिनों में उनके विशेष अर्थपूर्ण तथा सोदेश्य थे। वे कहा करते थे कि विशाल वृक्ष के तले छोटे पेड़ों को पनपने का अवसर नहीं मिल पाता।

19.7 लेखन से सम्बन्धित कार्य

स्वामी विवेकानंद ने स्वयं तो ग्रंथ कम लिखे थे। लेकिन उन्होंने भाषण देश और विदेशों में काफी दिये थे। उन भाषणों में भारतीय वेदांत दर्शन की पूर्ण व्याख्या मिलती है। स्वामी जी के भाषणों में भारत की विभिन्न समस्याओं तथा उनके समाधान के लिए विचार मिलते है। उन्होंने देश तथा विदेश से अपने मित्रों को बहुत से पत्र लिखे थे, जिनमें देश के लिए कार्य करने तथा देश को उँचा उठाने के लिए प्रेरणा रहती थी।

स्वामी विवेकानंद जी ने निम्नलिखित ग्रंथ लिखे –

1. **उत्तिष्ठित जागृत।**
2. **मेरे गुरूदेव।**

3. **परिव्राजक।**

उपरोक्त ग्रंथों के अलावा उन्होंने विभिन्न विषयों पर जो भाषण दिये थे वे भी संकलित रूप से प्रस्तुत हैं। इन व्याख्यान मालाओं के अंतर्गत कर्मयोग, भक्तियोग, आधुनिक भारत, पूर्व एवं पश्चिम वेदांत का रहस्य आदि विषयों का समावेश है।

स्वामी विवेकानंद ने जो पत्र लिखे थे तथा उन्हें जो पत्र प्राप्त हुए थे उनका संग्रह भी पत्रावली नामक पुस्तक में है।

19.8 स्वामी विवेकानन्द का महा समाधि में प्रवेश

स्वामी विवेकानंद दिसम्बर 1900 के अंत में भारत लौट आये। लेकिन वहां से आकर अस्वस्थ रहने लगे। फिर भी वे धर्म प्रचार, समाज सेवा और जन कल्याण के कार्यों में अन्त तक लगे रहे और जब तक विश्व के लोग उनको समझ पाते स्वर्ग से उनके पास एक दिव्य शक्ति का आगमन हुआ जो 4 जुलाई 1902 दिन शुक्रवार को स्वामी जी महासमाधि में प्रविष्ट हो गये। महासमाधि से पूर्व स्वामी जी कहा करते थे– " If there were another Vivekananda, He would have understood what Vivekananda has done and yet how many Vivekanada shall be born intime."

19.9 योग सम्बन्धी विचारधारा

ऊपर की ओर देखना और ऊपर उठना तथा पूर्णता की खोज करना इसे ही मोक्ष कहते हैं। जितनी जल्दी कोई मनुष्य ऊपर उठने लगता है उतनी ही जल्दी वह मोक्ष की ओर उन्मुख होता है। वास्तव में मोक्ष का मार्ग सत्य साधना है। योग साधना है।

जीवन का लक्ष्य है मोक्ष की प्राप्ति। लेकिन जब तक मनुष्य स्वयं में ब्रह्म होने की अनुभूति प्राप्त नहीं कर लेता, वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। इस सिद्धि को प्राप्त करने के अनेक मार्ग हैं। योग को चार वर्गों कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग व ज्ञानयोग में विभक्त किया जा सकता है। इसमें से प्रत्येक ब्रह्म सिद्धि का परोक्ष मार्ग है। ये योग विभिन्न स्वभाव के लोगों के अनुकूल होते हैं। अतः योग की सभी प्रणालियों का लक्ष्य मनुष्य के ह्रदय में विद्यमान अविद्या को हटाना और आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप में फिर से स्थापित कर देना है।

कर्मयोग– स्वामी विवेकानंद के अनुसार कर्मयोग का अर्थ है – मौत के मुँह में बिना तर्क–वितर्क किये सबकी सहायता करना भले ही तुम लाख बार ठगे जाओ पर मुँह से एक बात न निकालो और तुम जो कुछ भला कार्य कर रहे हो उसके संबंध में सोचो तक नहीं।

भक्तियोग – योग का दूसरा तत्व भक्ति अथवा पूजा किसी भी रूप में मनुष्य के लिए सबसे अधिक सरल, सुखद और स्वाभाविक मार्ग है। स्वामी जी कहते है कि भक्ति का अवलम्बन ईश्वर हैं।

राजयोग–राजयोग धर्म की पद्धति हैं इसके मुख्य अंग प्राणायाम, धारणा हैं। स्वामी जी कहते हैं जिस प्रकार हर विज्ञान की अनुसंधान करने की अपनी विशिष्ट पद्धति होती है । उसी प्रकार राजयोग धर्म की पद्धति है। राजयोग पर स्वामी जी का विचार अत्यंत विशिष्ट और व्यावहारिक है जिसे राजयोग नामक उनकी पुस्तक में देखा जा सकता है।

ज्ञानयोग –योग का चौथा तत्व ज्ञानयोग हैं। ज्ञानयोग तीन अंगों में विभक्त किया जा सकता हैं।

पहला– इस लक्ष्य का श्रवण कि आत्मा ही एक मात्र वास्तविक हैं और सब माया (सपेक्षता) है।

दूसरा – इसके दर्शन पर सभी दृष्टिकोणों से मनन।

तीसरा– यह अनुभूति इतने प्रकार से होती है। –

1. इसके आगे सारे तर्क वितर्क को वर्जित करके सत्य की अनुभूति प्राप्त की जाती है।
2. इस बात के निश्चय से कि ब्रह्म सत्य है और सब मिथ्या है।

19.10 विश्व मानवता को योगदान

स्वामी विवेकानंद दर्शन, शिक्षा, आध्यात्म एवं योग के क्षेत्र में सबसे ज्वलंत प्रतिभा के रूप में प्रतिष्ठित है, उनके द्वारा जो भी योगदान भारतवर्ष तथा विश्वसमुदाय को मिला है वह पूर्णतः अनुकरणीय है। आज भी देश के युवाजगत के बीच एक आदर्श व्यक्तित्व के रूप में यदि किसी का नाम लिया जाता है तो स्वामी विवेकानंद अग्रपंक्ति में आते हैं। जिस समय भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म, आध्यात्म एवं योग विद्या के क्षेत्र में विभिन्न विकृतियाँ एवं गलत धारणाएँ संव्याप्त थीं उस समय स्वामी जी एक क्रांतिकारी योद्धा के रूप में अवतरित हुए और प्राणपण से उनके निराकरण के लिए पुरूषार्थ किया। उनके जीवन का सार संदेश इस प्रकार है–

योग के क्षेत्र में– स्वामी जी के व्यक्तित्व से मिलने वाली सबसे महत्वपूर्ण जीवन प्रेरणा यह है कि जीवन में शक्ति और सामर्थ्य का जागरण नितांत आवश्यक है। जिसके लिए योग साधना ही सर्वोत्कृष्ट उपाय हैं। भारतीय परम्परा में विकसित विभिन्न योग प्रणालियाँ जैसे ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि को बहुत ही व्यावहारिक ढंग से स्वामीजी ने प्रस्तुत किया।

साहित्यिक योगदान– स्वामी जी के द्वारा सृजित साहित्य एवं ग्रंथ आज के युग में व्याप्त समस्याओं का निर्विवाद समाधान है। उनके सभी सहित्य पाठक तथा साधक में एक क्रांति ज्योति प्रज्जवलित करता है। भारतीय साहित्य जगत में स्वामी जी से संवाद करना चाहते हैं तो उन्हें उनके साहित्य में डुबकी लगानी ही चाहिए।

आदर्श शिष्य–स्वामी जी गुरूशिष्य परम्परा के एक आदर्शतम उदाहरण हैं। किस प्रकार एक शिष्य अपने सद्‌गुरू के मार्गदर्शन के अनुरूप उनके कार्य में समर्पित हो सकता है इसका जीवन्त उदाहरण स्वामी विवेकानंद रहे हैं। यह वास्तविकता हमें यह ज्ञात कराती है कि बिना गुरू चरण में समर्पण के जीवन में सार्थक प्रकाश नहीं मिल सकता।

संस्कृति संवाहक– इतने अनन्त सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक संपदाएँ होते हुए भी भारत देश पश्चिमी दुनिया की दृष्टि में एक जादूगर तथा योगी–सन्यासियों का देश माना जाता था। इसके विपरीत भारत की आध्यात्मिक सांस्कृतिक धरोहर को पश्चिमी देशों तक पहुँचाने में स्वामी विवेकानंद जी का योगदान अत्यंत उल्लेखनीय है। अमेरिका तथा इंग्लैण्ड जैसे देश में परिव्रज्या कर भारत की संस्कृति एवं योग विद्या के संदेश का प्रचार कर उन्होंने एक युग पुरूष का कार्य किया है। आज भी पश्चिमी समाज स्वामी जी से कृतकृत्य है।

युवाओं के परमादर्श– सम्पूर्ण युवा जगत के लिए स्वामी विवेकानंद एक जाज्वल्यमान आदर्श है। युवा के जीवन में लक्ष्य निर्धारण, श्रम, पुरूषार्थ, राष्ट्रप्रेम, आध्यात्म एवं योग के प्रति रूझान एवं संस्कृति के प्रति समर्पण किस प्रकार होना चाहिए आदि के प्रति स्वामी जी के दिशा निर्देश बहुत ही अनुकरणीय हैं। लाखों–करोड़ों युवा ह्रदय आज भी स्वामी विवेकानंद को आदर्श मानते हैं।

योगी व्यक्तित्व– एक संपूर्णतः आदर्श योगी पुरूष का व्यक्तित्व कैसा होता है ये स्वामी जी में साक्षात प्रतिलक्षित होता है। स्वामी जी को जब भी समय मिलता वे ध्यान समाधि की अतल गहराई में जाते और समसामयिक समस्याओं का निराकरण प्राप्त करते थे। स्वामी जी की यह प्रेरणा हमें भी सजग करती है कि जीवन में किसी भी प्रकार के कष्ट तथा समस्याएँ हो, उनका समाधान योग साधना के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। स्वामी जी का ये मानना है कि–बिना योग साधना के मानव जीवन सर्वथा अपूर्ण एवं शक्तिहीन है।

अभ्यास प्रश्न– रिक्त स्थान की पूर्ति किजिए–

1. स्वामी विवेकानन्द का जन्म.................................1863 ई0 में हुआ था।
2. स्वामी विवेकानन्द ने 4 जुलाई.............................में शुक्रवार के दिन महासमाधि में प्रवेश किया।
3. 31 मई 1881 को स्वामी विवेकानन्द बम्बई से..............................के लिए रवाना हुए।

4 ....1993 को स्वामी विवेकानन्द धर्म महासभा में शामिल हुए।

4. स्वामी विवेकानन्द के बचपन का नाम.............................था।

19.10– सारांश

प्रिय पाठको उपरोक्त विवरण से आप जान गये होगें कि किस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने समूची मानव जाति के कल्याण के लिए अपना सर्वस्व सर्मपित कर दिया। वे बहुमुखी प्रतिभा के विलक्षण धनी थे। उनमें एक साथ अनेकों विशेषताऐं देखने को मिलती है। कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिससे वे अछूत रहे। साहित्य, संगीत, लेखन, खेलकूद, अध्ययन के क्षेत्र में तो कहना ही क्या। आध्यात्मिक जीवन एवं योग के सन्दर्भ में स्वामी जी ने जो विचार एवं योगदान दिया है। उसके लिऐ युगों– युगों तक मानवता उनकी ऋणी रहेगी। अतः प्रिय विद्यार्थियों, हमे भी एसे महामानवों के जीवन से प्रेरणा गृहण करके अपने जीवन को सन्मार्ग की दिशा में प्रेरित करने का प्रयास करना चाहिए।

19.11 शब्दावली–

संदेशवाहक– संदेश को ले जाने वाला अथवा संदेश को पहॅूचाने वाला।
पाश्चात्य विचारधारा– पश्चिमी देशों की विचारधारा।
प्राच्य – पूर्वी
पाण्डित्य– विद्वता

19.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 12जनवरी 2. सन् 1902 3. अमेरिका 4. 11 सितम्बर 5. नरेन्द्र

19.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कोहली नरेन्द्र। **2008** तोड़ो कारा तोड़ो। किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली।

2- Kumar Kamakhaya, The super science of yoga, standard publication Delhi.

19.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– स्वामी विवेकानन्द के योग संबंधी विचारों का विवेचना कीजिए।

प्रश्न 2– विश्व मानवता के कल्याण में स्वामी विवेकानन्द के योगदान को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 3– स्वामी विवेकानन्द का जीवन परिचय देते हुए उनके परिव्राजक जीवन पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 20 स्वामी शिवानन्द एवं स्वामी कुवलयानन्द

इकाई की संरचना

20.1 प्रस्तावना

20.2 उद्देश्य

20.3 स्वामी शिवानन्द का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

20.4 स्वामी कुवलयानन्द का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

20.5 सारांश

20.6 शब्दावली

20.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

20.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

20.9 निबंधात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठकों, जैसा कि आप सभी जानते हैं कि भारतभूमि सदा ही ऋषियों, संतों एवं महापुरूषों की जननी रही है। इस धरा ने समय–समय पर ऐसे युगावतारों को जन्म दिया है, जिन्होंने अपने जीवन से समूची मानवजाति में ज्ञान का प्रकाश फैलाया और हमेशा के लिये अमर हो गये।

प्रिय पाठकों, इससे पूर्व की इकाइयों में भी आपने अनेक महान योगियों जैसे कि महर्षि दयानंद सरस्वती, श्री अरविन्द, लाहिड़ी महाशय एवं स्वामी विवेकानन्द के विषय में अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में अवाचीन योगियों की इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए हम स्वामी शिवानंद एवं स्वामी कुवलयानंद जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे।

20.2 उद्देश्य–

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- स्वामी शिवानन्द के आरम्भिक जीवन एवं योग साधना का अध्ययन कर सकेंगे।
- विश्व मानवता को स्वामी शिवानन्द जी द्वारा जो अनुदान प्राप्त हुए, उनका अध्ययन कर सकेंगे।
- स्वामी कुवलयानंद जी के व्यक्तित्व का अध्ययन कर सकेंगे।
- स्वामी कुवलयानंद जी के उल्लेखनीय योगदान का वर्णन कर सकेंगे।

20.3 स्वामी शिवानंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन

जन्म एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि –

स्वामी शिवानंद का जन्म 8 दिसम्बर 1887 ई. में दक्षिण भारत में ताम्रपर्णी नदी के किनारे पट्टामड़ाई नामक गांव में हुआ था। इनके पिताजी श्री पी.एस. गहवर शिव के परमभक्त थे और तहसीलदार थे। पिता के समान ही इनकी माता श्रीमती पार्वती अम्मा के हृदय में भी ईश्वर के प्रति अगाध श्रद्धा एवं समर्पण का भाव था। स्वामी शिवानंद के जन्म से इनके माता–पिता को अत्यधिक प्रसन्नता हुई और इनका बचपन का नाम क्रूप्पू–स्वामी रखा गया।

कुप्प–स्वामी जन्म से आध्यात्मिक प्रकाश से सम्पन्न थे। ये हृदय से बहुत ही दयालु थे। न केवल मनुष्यों के प्रति अपितु पशु–पक्षियों के प्रति भी करूणा इनके मन में अत्यधिक गहरी थी। ये अपने द्वार पर आये कुत्ते, बिल्लियों, गायों तथा अन्य पशु–पक्षियों को अपनी माता से भोजन ले–लेकर उन्हें बहुत ही भाव से खिलाते थे। माता–पिता की आध्यात्मिक

प्रवृत्ति का प्रभाव बालक क्रूप्पू–स्वामी पर भी पड़ रहा था। पिताजी की शिवोपासना के लिये पुष्पा इत्यादि सामग्री ये बहुत ही श्रद्धा भाव से एकत्रित करते थे।

विद्यार्थी जीवन –

बालक कुप्प–स्वामी अत्यधिक कुशाग्र बुद्धि के थे। इन्होंने अपने गांव से ही हाईस्कूल की शिक्षा प्राप्त की। ये हमेशा अपनी कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करते थे।

हाईस्कूल के बाद इन्होंने त्रिचनापल्ली में एस.पी.जी. गहन विद्यालय में प्रवेश प्राप्त किया। पढ़ाई के साथ–साथ ये नारक वाद–विवाद इत्यादि अनेक प्रतियोगिताओं में भी भागीदारी करते रहते थे। लेख पढ़ाई के बाद क्रूप्पू–स्वामी तंजारे में चिकित्साशास्त्र के अध्ययन में संलग्न हो गये। यहां पर भी उन्होंने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया। छुट्टियों में भी वे घर न जाकर कालेज में रहकर ही रोगियों की सेवा और डाक्टर्स का सहयोग करते थे। यहां पर भी क्रूप्पू–स्वामी ने अपने अथक परिश्रम एवं लगन के बलबूते अपने से सीनियर विद्यार्थियों की तुलना में अधिक ज्ञान प्राप्त किया।

चिकित्सा के क्षेत्र में स्नातक की डिग्री लेने के बाद इन्होंने अपना अभ्यास करना प्रारम्भ कर दिया। चिकत्सा के अतिरिक्त इन्होंने चिकित्सा से सम्बन्धित ही एक पत्रिका के प्रकाशन का शुभारम्भ किया। इस पत्रिका को जनहित के लिये वे निःशुल्क ही वितरित करते थे।

चिकित्सक के रूप में मानव जाति की सेवा –

सन् 1913 में परिवार के लोगों के विरोध के बावजूद अपने दृढ़ संकल्प के बलबूते ये मलाया पहुंच गये। मलाया में इन्होंने एक राजकीय अस्पताल में नौकरी करना शुरू किया। अपनी करूणा एवं सेवा भावना के कारण ये मलाया में भी जल्दी ही बहुत प्रसिद्ध हो गये। अस्पताल के बाद कुछ समय निकालकर ये गरीबों, पीड़ितों एवं असहायों की निःस्वार्थ भाव से चिकित्सा करते तथा उन्होंने निःशुल्क औषधियां और यथाशक्ति आहार का भी समुचित प्रबन्ध करते थे। इस प्रकार एक सेवापरायण चिकित्सक के रूप में ये मानव जाति की सेवा करते रहे।

साधनात्मक जीवन –

कुप्पू–स्वामी के चित्त में पहले से ही साधना के संस्कार थे। ये नियमित रूप से शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द एवं स्वामी रामतीर्थ इत्यादि सन्तों के साहित्य का अध्ययन करते रहते थे। ये अपनी नियमित रूप से अपनी साधना भी करते थे और साधु सन्यासियों एवं महापुरूषों के सत्संग का लाभ भी प्राप्त करते रहते थे।

एक बार एक साधु उनके यहां रूका उन्होंने कुप्पू–स्वामी को स्वाध्याय करने के लिए एक पुस्तक दी। कुप्पू–स्वामी ने उस पुस्तक का अत्यधिक एकाग्रता के साथ आरम्भ से लेकर अन्त तक गहन अध्ययन किया और इनके मन में वैराग्य के प्रति प्रबल दृढ़ता की

भावना का उदय हुआ। उन्होंने अपनी नौकरी छोड़कर साधना करने का निर्णय लिया और सन् 1922 में वे मलाया से लौटकर भारत आ गये।

भारत वापस लौटकर इन्होंने घर तक अपना सामान पहुंचा दिया। किन्तु स्वयं घर के अन्दर नहीं गये। अब ये तीर्थ यात्रा के लिये निकल पड़े और सन् 1924 में इस तीर्थ भ्रमण के दौरान ये ऋषिकेश पहुंच गये। वहां पर ये विश्वानंद सरस्वती जी के सम्पर्क में आये और उनको अपना गुरू बनाया तथा सन्यास दीक्षा देने की उनसे प्रार्थना की। स्वामी विश्वानंद जी ने सन्यास दीक्षा प्रदान करने के बाद इनका नाम शिवानंद रखा।

इसके बाद स्वामी शिवानंद ने स्वर्गाश्रम में रहकर अनेक प्रकार की कठोर साधनायें करना प्रारम्भ कर दिया। ये 12–12 घंटे तक ध्यान में बैठे रहते थे और कुटिया में जा–जाकर साधुओं की बिना शतक लिये चिकित्सा करते और उनको औषधियां भी वितरित करते थे।

सन् 1927 में इन्होंने पीड़ित मानवता की सेवा के लिये ऋषिकेश में लक्ष्मण झूला के धर्मार्थ एक चिकित्सालय खोला।

इनकी साधना का क्रम चलता रहा और इन्होंने निर्विकतय समाधि की स्थिति को प्राप्त किया।

इसके बाद ये भारत भ्रमण के लिये निकल गये और इन्होंने सम्पूर्ण भारत में अपने सिद्धान्तों का प्रचार–प्रसार करना प्रारम्भ किया जिससे अनेक लोग इनके शिष्य बन गये।

दिव्य जीवन संघ की स्थापना –

सन् 1936 ई. में इन्होंने ऋषिकेश में ''दिव्य जीवन संघ'' नामक सस्था का गठन किया। इन्होंने अपने आश्रम में ही एक प्रिटिंग प्रेस की स्थापना की, जिससे कि आसानी से जनसामान्य तक ये अपने साहित्य को पहुंचा सके। न केवल भारत के वरन् इनके शिष्यों में अनेक विदेशी लोग भी थे।

महासमाधि – स्वामी शिवानंद ने आजीवन ही अत्यधिक करूणा एवं निःस्वार्थ भाव के साथ दीन–दुःखियों की सेवा की। यह उनकी निःस्वार्थ सेवा और योग साधना का ही परिणाम था कि जो भी व्यक्ति इनके सम्पर्क में आता वह कृतार्थ हुये बिना नहीं जाता था।

अपने इस जन्म के अंतिम दिनों में शारीरिक रूप से कमजोर और थोड़े बीमार रहने लगे। अतः आश्रम में रहकर ही अपने कार्यो को करते थे। 14 जुलाई 1963 में इन्होंने महाप्रयाण किया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वामी शिवानंद ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ ही विश्व मानवता को अनेक अनुदान–वरदान दिय।

20.4 स्वामी कुवलयानंद जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व –

प्रिय पाठकों, स्वामी कुवलयानंद जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है।

जन्म एवं आरम्भिक जीवन –

स्वामी कुवलयानंद जी का जन्म 30 अगस्त सन् 1883 ई. में हुआ था।

स्वामी कुवलयानंद जी अत्यन्त मेधावी छात्र थे तथा संस्कृत में अग्रणी छात्र के रूप में विख्यात थे। मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्हें संस्कृत विषय में छात्रवृत्ति प्राप्त की। मैट्रिक की परीक्षा में भी इन्होंने पूरे राज्य में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। ये लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक एवं श्री अरविन्द के विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे। इनसे प्रभावित होकर इनके मन में विचार आया कि इन्हें भी अपना जीवन मानवता की सेवा में लगाना चाहिये।

मानवता की सेवा हेतु प्रयास –

स्वामी कुवलयानंद जी के प्रथम गुरू राजरत्न प्रोफेसर मालिकराय थे, जिनसे इन्होंने सन् 1907 से 1910 तक शारीरिक शिक्षा का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इनके दूसरे गुरू जिनसे इन्होंने योग के गुप्त रहस्यों को जाना वे थे – माधवदास जी महाराज।

माधवदास जी प्रभावित होकर स्वामी कुवलयानंद जी के मन में विचार आया कि योग का वैज्ञानिक पक्ष सामान्य जन के समक्ष उद्घाटित किया जाना चाहिये, जिससे कि प्रत्येक मनुष्य अपनी छिपी एवं लुप्त क्षमताओं को जागृत एवं सक्रिय करके अपने जीवन को उन्नत बना सके।

इस हेतु इन्होंने शर्कर शास्त्र का गहन अध्ययन किया तथा योगाभ्यासों के शरीर एवं मन पर पड़ने प्रभावों के प्रयोगात्मक ढंग से वैज्ञानिक अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया।

पाठकों, आपको जानकारी के लिये बता दें कि स्वामी कुवलयानंद जी ने योगाभ्यासों में भी प्रमुख रूप से दो यौगिक क्रियाओं उड्डियान बंध और नेति क्रिया के शरीर तथा मन पर पड़ने वाले प्रभावों का विशेष रूप से अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने विविध प्रकार के आसन, प्राणायाम, षट्कर्म, बन्ध एवं मुद्राओं का भी वैज्ञानिक अध्ययन किया।

कैवल्यधाम योग आश्रम तथा अन्य महत्वपूर्ण संस्थाओं की स्थापना –

सन् 1924 में अपनी कुवलयानंद जी के मन में विचार आया कि योग के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य होना चाहिये। इसी विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिये इन्होंने एक्ट 1929 में लोनावला में कैवल्यधाम योग आश्रम की स्थापना की। योग से सम्बद्ध शोध पत्रों के लिये योग मीमांसा नामक शोध पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ हुआ।

कैवल्यधाम में ही एक राजा नटवर सिंह शरीर विकृति विज्ञान प्रयोगशास्त्र की स्थापना भी की गई।

कुछ लोगों के द्वारा अनुरोध किये जाने पर सन् 1932 में लम्बई में कैवल्यधाम आश्रम की एक शाखा खोली गई। इसी क्रम में सन् 1943 में सौराष्ट्र के राजकोट नामक स्थान पर कैवल्यधाम की एक और शाखा खोली गई।

सन् 1993 में कैवल्यधाम में ही श्री माधव योग मन्दिर समिति का गठन किया गया, जिसका उद्देश्य योग साहित्य में नवीन वैज्ञानिक अनुसंधान को बढ़ावा देना था।

प्रथम यौगिक अस्पताल की स्थापना –

सन् 1961 में स्वामी कुवलयानंद ने प्रथम यौगिक अस्पताल की स्थापना की। यह अस्पताल लोनावाला में ही स्थापित किया गया जिसका नाम –श्रीमती अमोलक देवी तीरथराम गुप्ता यौगिक अस्पताल है।

सन् 1963–64 में स्वामी कुवलयानंनद जी ने अस्थमा पर यौगिक चिकित्सा के प्रभाव का वैज्ञानिक अध्ययन किया और इसे जनसामान्य के सम्मुख प्रमाणित भी किया।

गोवर्धनदास कॉलेज की स्थापना –

सन् 1950 में लोनावाला में योग और सांस्कृतिक अध्यापन के उद्देश्य से स्वामी द्वारा गोवर्धनदास कॉलेज की स्थापना की गई। इस कॉलेज की स्थाना का सर्वप्रमुख उद्देश्य था – युवाओं में मानवता एवं आध्यात्मिकता का विकास करना तथा अपने देश एवं संस्कृति के उत्थान की भावना का विकास करना।

स्वामी जी के योग के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान एवं इस विषय के प्रति अटूट श्रद्धा एवं समर्पण को देखकर अनेक राज्य सरकारों ने अपने यहां योग के प्रचार–प्रसार के लिये इन्हें आमंत्रित किया। स्वामीजी ने शिविरों के माध्यम से भी शिक्षकों को योग का प्रशिक्षण प्रदान किया। न केवल भारत वरन् विदेशों में भी कैवल्यधाम लोनावाला से अध्ययन किये हुये व्यक्ति योग शिक्षकों के पदों पर नियुक्त किये गये।

इस प्रकार पाठकों, स्वामी कुवलयानंद जी ने अपना समस्त जीवन भारत की प्राचीनतम एवं महान धरोहर योगविद्या के उत्थान में तथा वैज्ञानिक ढंग से इसे जन सामान्य के सम्मुख लाने में लगा दिया। समस्त मानव जाति उनके इस अमूल्य योगदान के लिये हमेशा कृतज्ञ रहेगी।

अभ्यासार्थ प्रश्न सत्य/असत्य

1. स्वामी शिवानंद का जन्म सन् 1882 में हुआ था। ( )
2. दिव्य जीवन संघ की स्थापना सन् 1935 में हुयी थी। ( )
3. दिव्य जीवन संघ देहरादन में स्थापित है। ( )
4. स्वामी कुवलयानंद जी ने सन् 1961 में प्रथम यौगिक अस्पताल की स्थापना की थी। ( )
5. कैवल्यधाम योग आश्रम की स्थापना सन् 1928 में लोनावाला में हुयी थी।( )

20.5 सारांश –

प्रिय पाठकों उपरोक्त विवरण से आप सभी शिवानंद एवं कुवलयानंद जी के व्यक्तिव एवं विश्व मानवता को उनके द्वारा दिये गये अनुदान–योगदान के विषय में भली–भांति जान गये होंगे। स्वामी शिवनंद जी एवं कुवलयानंद जी दोनों ही महान आत्माओं ने अपना जीवन स्वार्थ के लिये नहीं वरन् परमार्थ के लिये जिया।

पाठकों कोई भी सन्त और महात्मा वस्तुतः ऐसे ही होते हैं, वे इस धरती पर स्वयं के लिये नहीं वरन् पीड़ितों की सेवा और उद्धार के लिये ही आते हैं।

20.6 शब्दावली –

शोध पत्र – जिसमें वैज्ञानिक अध्ययन के निष्कर्षो को संक्षेप में जन सामान्य की जानकारी में वृद्धि के लिये प्रस्तुत किया जाता है।

ध्यान – महर्षि पतंजलि के अनुसार अन्तरंग योग को दूसरा अत्यन्त महत्पूर्ण सोपान, जिसमें साधक की चित्तवृत्ति अपने ध्येय में तल्लीन हो जाती है।

निशुल्क – बिना रूपये लिये कोई कार्य करना।

20.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.	असत्य	2.	असत्य	3.	असत्य
4.	सत्य	5.	असत्य		

20.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. कुमार कामाख्या एवं मूर्ति बी.टी. चिन्दान्नद (2007) योग महाविज्ञान। स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स दिल्ली।

20.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. स्वामी शिवानन्द जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विस्तार से वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2. स्वामी कुवलयानंद जी का जीवन परिचय देते हुए योग के क्षेत्र में उनके योगदान पर प्रकाश डालिये